ISSN : 2278-4632

JUNI KHYAT
जूनी ख्यात

इतिहास, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका

A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List

'जूनी ख्यात' सम्पादक मण्डल

प्रो. हरबंस मुखिया	पूर्व विभागाध्यक्ष	इतिहास विभाग, जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. वसन्त शिंदे	पुरातत्त्व एवं प्राचीन इतिहास	कुलपति दक्कन कॉलेज, पूना
प्रो. एस. इनायत अली ज़ैदी	पूर्व विभागाध्यक्ष	जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. एल.एस. निगम	प्राचीन इतिहास	पूर्व विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर
प्रो. दिलबाग सिंह	आर्थिक इतिहास	इतिहास विभाग, जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा	मध्यकालीन इतिहास	पूर्व कुलपति, कोटा खुला विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)
प्रो. के.एस. गुप्ता	पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग	मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
प्रो. अब्दुल मतीन	पूर्व विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र	अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)
प्रो. आर. आभापाल	आधुनिक इतिहास	स्कूल ऑफ सोशियल साईंसेज, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

(सामाजिक विज्ञान, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका)

वर्ष : 10 • अंक 1

जुलाई-दिसम्बर 2020

A Peer-Reviewed and Listed in UGC CARE List

ISSN 2278-4632

संपादक

डॉ. बी. एल. भादानी

प्रोफेसर

प्रबंध संपादक

श्याम महर्षि

मरुभूमि शोध संस्थान

संस्कृति भवन

एन.एच. 11, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राजस्थान

प्रकाशकीय एवं विज्ञापन कार्यालय :
सचिव, मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़-331803 (बीकानेर) राज.

आजीवन सदस्यता 3000 रु.

सहयोग दर :

(व्यक्तिगत) एक अंक 100 रुपये ❑ प्रति वर्ष 200 रुपये

(संस्था) एक अंक 150 रुपये ❑ प्रति वर्ष 300 रुपये

बाहरी चैक के लिए 25 रुपये अतिरिक्त

आजीवन शुल्क संस्था के निम्न खाते में सीधा ट्रांसफर करके हमें बताने की कृपा करें।

1. **Punjab National Bank**
2. **Sri Dungargarh**
3. **मरुभूमि शोध संस्थान**
4. **खाता सं. 3604000100174114**
5. **IFSC Code - PUNB0360400**

ड्राफ्ट/नकद भुगतान भेजने का पता :

श्याम महर्षि

सचिव :

मरुभूमि शोध संस्थान

(राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति)

श्रीडूँगरगढ़ 331803 (बीकानेर) राज.

फोन - 01565-222670

आलेख सीडी में या निम्न पर ईमेल किया जा सकता है।

सम्पादकीय कार्यालय :

डॉ. बी.एल. भादानी

रांगड़ी चौक, बीकानेर 334001 (राज.) मो. 9950678920

junikhyat.mss@gmail.com

bbhadani.amu@gmail.com • kumaarrajender11@gmail.com

सावधान

जूनी ख्यात (अर्द्धवार्षिक) दिसम्बर 1994 ई. से नियमित Print Form में प्रकाशित हो रही है। जून 2019 में 'UGC Care List' (S.N. 194) में सामाजिक-विज्ञान की श्रेणी में सम्मिलित करली गई है। यह पत्रिका Online प्रकाशित नहीं होती है।

जूनी ख्यात नाम से ही एक फर्जी पत्रिका (Cloned Journal) ऑन लाइन निकाली जा रही है जो हमारे ही ISSN एवं यू.जी.सी. केयर लिस्ट की संख्या को उपयोग में ले रही है। इस सम्बन्ध में **यू.जी.सी.** ने 23-7-2020 को 'Cloned Journal' की एक सूची जारी की है उसमें अन्य पत्रिकाओं के साथ **जूनी ख्यात** का भी नाम है। यह पत्रिका निम्न वेबसाइट पर प्रत्येक विषय के शोध पत्र आमंत्रित करती है।

Juni khyat Journal		
Language	:	English & Hindi
Publisher		NA
ISSNo.		2278-4632
URL http	:	www.junikhyat.com

हमारी पत्रिका **मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़** द्वारा प्रकाशित की जाती है। अब 'नकली पत्रिका' बी.एल. भादानी, संपादक के नाम का भी उपयोग कर रही है जो एक आपराधिक कृत्य है।

इसमें तथाकथित रूप से प्रकाशित आलेख का कोई महत्त्व भी नहीं है। इसलिए शोधार्थियों से सावधान रहने की अपील की जाती है।

बी.एल. भादानी
संपादक

Sl.No.	Journal No.	Title	Publisher	ISSN
203		JUNI KHYAT		2278-4632

UGC Journal Details

Name of the Journal : **JUNI KHYAT (Print Form)**
ISSN Number : 2278-4632
e-ISSN Number : NA
Source : **UGC**
Discipline : **Social Science**
Subject : **Social Sciences (all)**
Focus Subject : Cultural Studies
Publisher : Marubhumi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh (Bikaner)

बीकानेर महाराजा सूरसिंहकालीन (1613-31 ई.) शिलालेख

।।श्री गणेशाय नमः।।
।। अविरल मद जल निवल।।
हात्रमर कुलानेक सेवित
कपोल अभिमत फलदा
तार कामेश गणपति विंदे
।।१।। संवत १६८१ वरषे मा
घ मासे शुक्ल पक्षे द्वाद्श्या ति
थो.....सोमवासरे घटी १३।६
मृगशिर नक्षत्रे घटी १८।
२६ ऐन्द्र नाम्नीयोगे घटी १।२४
अत्र दिने महाराजाधिरा
ज महाराजा श्री श्री ३ सूर
सिंह विजयेराजे सूत्रधा
र ददानी लिखतये हीम
.....शुभं भवंतु ।।

भावार्थ

यह शिलालेख बीकानेर शहर से 20 किमी. की दूरी पर पश्चिम दिशा में स्थित गाँव 'नाल छोटी' में एक जैन मंदिर के अहाते से प्राप्त हुआ है। इस शिलालेख की निर्माण तिथि जनवरी, 1625 ई. है, जो बीकानेर के तत्कालीन महाराजा सूरसिंह के समय में निर्मित किया गया था। यह लेख भी बीकानेर के अधिकांश शिलालेखों की भांति 'श्रीगणेशाय नमः' शब्द एवं गणेश स्तुति मन्त्र के साथ प्रारंभ होता है। यद्यपि लाल पत्थर की बड़ी शिला पर उत्कीर्ण इस लेख का मंतव्य स्पष्ट नहीं है। परन्तु, महाराजा सूरसिंह द्वारा निर्मित होने के कारण अवश्य ही इसके निर्माण का उद्देश्य राजकीय ही रहा होगा। इस लेख के अवाप्ति स्थल के निकट अथवा समकालीन अन्य लेख प्राप्त होने पर ही इसका उद्देश्य स्पष्ट हो सकेगा।

अनुवादक : **डॉ. राजेन्द्र कुमार, बीकानेर**

संपादकीय

जूनी ख्यात (जुलाई-दिसम्बर 2020) के इस अंक में तीस शोध आलेख हैं जिनमें नौ अंग्रेजी एवं इक्कीस हिन्दी माध्यम के हैं। इन आलेखों की विषय-वस्तु अत्यन्त व्यापक है। आंग्ल भाषा में लिखित प्रथम आलेख नीकी चतुर्वेदी का बुद्ध से सम्बद्ध अनुश्रुतियों की उत्पत्ति एवं विकास पर केन्द्रित एक शोधपूर्ण प्रस्तुति है। सुकृति चक्रवर्ती का आलेख मध्ययुग की सती प्रथा एवं उसके प्रति शासकों के दृष्टिकोण पर केन्द्रित है। शोधार्थी द्वारा अनेक उदाहरणों के द्वारा इस प्रथा पर प्रकाश डाला गया है। इस आलेख से मध्ययुगीन नारी के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। राजस्थानी स्रोतों के आलोक में बन्दा सिंह बहादुर पर नवीन प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। डॉ. राजेन्द्र कुमार ने उत्तर भारत में नाथ पीठों के विकास को रेखांकित करने का उल्लेखनीय प्रयास किया है। मारवाड़ एवं राठौड़ राज्य से बाहर मथुरा, उज्जैन एवं बनारस आदि स्थानों पर नाथ पीठों की स्थापना एवं उनकी प्रशासनिक एवं खर्च की व्यवस्था का उत्तरदायित्व मारवाड़ राज्य का था। महाराजा मानसिंह के समय में मारवाड़ में नाथों का अत्यधिक प्रभाव था। उनकी अपना सेना थी जिसके कारण से राज्य के प्रशासन में उनकी मजबूत पकड़ थी। गुरुप्रीत सिंह हरीका एवं डॉ. दलजीत सिंह का आलेख पंजाब विभाजन, स्त्रियों एवं मौखिक इतिहास पर केन्द्रित है। यह आलेख मौखिक इतिहास की विश्वसनीयता स्थापित करने का एक प्रयास है। दीपक सिंह बिस्ट ने इस शोध आलेख में सरकारी एवं प्राइवेट विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य जोखिम उठाने की योग्यता एवं मानसिक स्वास्थ्य के स्तर का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जिसमें उन्होंने जोखिम उठाने के मामले में सरकारी विद्यालय के छात्रों को आगे बताया है। प्रदीप रोय एवं डॉ. चेतन चौधरी ने अपने आलेख में मेरीन फिशर्स (जहाजी मछुआरों) पर लिखित साहित्य की समीक्षा की है। डॉ. प्रगति का बिहार की स्त्रियों के स्वास्थ्य स्तर पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी शोध आलेख है। अन्तिम आलेख में श्वेता बजाज एवं डॉ. अभिषेक वर्मा का आलेख भारत में शिक्षा के द्वारा नारी के सशक्तिकरण पर केन्द्रित है।

डॉ. धर्मराज शिवाजी पंवार का गुप्तयुगीन कृषि विज्ञान एवं सम्बद्ध तकनोलोजी पर मूल स्रोतों पर आधारित आलेख इस क्षेत्र पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। बीकमपुर वास्तव में भाटियों का ठिकाना था। वहां के दुर्ग के पीछे एक लघु देवालय है जिसमें कई मूर्तियां हैं। डॉ. सुखाराम एवं डॉ. कोमलकान्त शर्मा ने उस देवालय को चौहानकालीन माना है एवं देवालय

के मध्य में लगी मूर्ति तद्युगीन मानते हुए उसके शिल्प पर प्रकाश डाला है। इस बात पर और अधिक खोज करने का आवश्यकता है कि भाटियों के दुर्ग परिसर से बाहर बल्कि दीवार के समीप चौहान मंदिर का निर्माण किसने करवाया। डॉ. मधु कुमावत का मारवाड़ के तेल उद्योग एवं सम्बद्ध उत्पादन प्रक्रिया पर आधारित अत्यन्त उपयोगी शोध आलेख है। उन्होंने आलेख में स्केच बना कर आलेख की उपयोगिता को बढ़ा दिया है। डॉ. सीमन्तिनी पालावत ने लोकदेवी 'आवड़' पर तत्कालीन साहित्य के आलोक में उसके ऐतिहासिक योगदान पर प्रकाश डाला है। डॉ. पीयूष भादविया एवं मोहित शंकर सिसोदिया ने श्रीमाल पुराण में उल्लेखित भीनमाल एवं आसपास के गाँवों में शक्तिपीठों और उन देवियों से सम्बद्ध कथाओं एवं उनकी मान्यताओं के बारे में बताने का प्रयास किया है। डॉ. भगवानसिंह शेखावत ने मारवाड़ में स्थापित ठिकानों के वर्णन के साथ राजदरबार में उनके बैठने के स्थान एवं महाराजा के साथ उनके सम्बन्धों की विवेचना की है। दुर्गा सुथार का आलेख अठारहवीं सदी में जैन मुनियों द्वारा लिखित ग़ज़लों एवं आज की हिन्दी ग़ज़ल पर आधारित है।

सूर्यवीर सिंह ने मारवाड़ राजपरिवारों के सदस्यों के दाध स्थलों अर्थात् शमशानों के बारे में लिखा है जहां उनकी स्मृतियों को चिरस्थाई बनाने हेतु छतरियों का निर्माण किया गया है। डॉ. भरत देवड़ा ने शोध आलेख में राव मालदेव द्वारा रजलाणी (जोधपुर) नामक गाँव में निर्मित बावड़ी एवं अन्य धार्मिक स्थापत्य के प्रमुख केन्द्रों की व्याख्या की है। डॉ. कुलवन्तसिंह शेखावत ने राष्ट्रीय आन्दोलन में शेखावाटी के व्यापारिक वर्ग के योगदान को उजागर किया है। अगले आलेख में डॉ. लालाराम जाट ने नाता-प्रथा के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति को रेखांकित किया है। उन्होंने कुछ वास्तविक मामलों के आलोक में पुनर्विवाह की इस सामाजिक व्यवस्था की बुराइयों एवं कुछ अच्छाइयों के साथ इसे एक प्रकार से खरीद फरोख्त की व्यवस्था की संज्ञा दी है। अन्तिम आलेख सुश्री कुसुम लता का डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल के शैक्षिक विचारों से सम्बद्ध है।

इतिहासकारों एवं शोधार्थियों से विशेष आग्रह है कि अपने आलेख के सन्दर्भ हमारी पत्रिका के पैटर्न के अनुसार भेजने का कष्ट करें। पत्रिका में आलेख हमारे विषय विशेषज्ञों के द्वारा परखने के पश्चात ही प्रकाशित किये जाते हैं।

विशेष : **जो लेखक अपनी पत्रिका रजिस्टर्ड डाक से मंगवाना चाहते हैं वे प्रत्येक अंक के हिसाब से चार अंक के 120 रुपये भिजवाने का कष्ट करें।**

सम्पादक

डॉ. बी. एल. भादानी

अनुक्रम

Narrative-Ballads of *Suttanipâta*: Origin and Evolution of Some Buddhist Legends — 11-26
Neekee Chaturvedi

SATI : The Immolating Wife — 27-34
Sukriti Chakraborty and *Dr. Abha R. Pal*

Banda Singh Bahadur as reflected from Rajasthani Sources — 35-43
Dr. Daljit Singh

The Evolvement of *Nath Peeths* of Northern India and Maharaja Man Singh of Marwar — 44-51
Dr. Rajender Kumar

Oral History, Women and Partition of Punjab — 52-61
Gurpreet Singh Harika and *Dr. Daljit Singh*

Risk Taking Ability and Mental Health between Government & Private School Students : A Comparative Analysis — 62-69
Deepak Singh Bisht

Review of Literature for a study on Marine Fishers in India 70-78
Pradip Roy and *Dr. Chetan Chaudhari*

Health Status of Women in Bihar : A Study 79-86
Dr. Pragati

Empowering Women Through Education in India 87-92
Shweta Bajaj and *Abhishek Verma*

गुप्तयुग में कृषि विज्ञान एवं तकनीकी : एक अध्ययन 93-107
डॉ. धर्मराज शिवाजी पंवार

विष्णु मंदिर : चौहानकालीन मूर्तिशिल्प का नवीन अन्वेषित केन्द्र : बीकमपुर (बीकानेर, राजस्थान) 108-112
डॉ. सुखाराम एवं डॉ. कोमलकान्त शर्मा

मारवाड़ में तेल उद्योग में प्रयुक्त उत्पादन पद्धति : 17वीं-18वीं शताब्दी के विशेष सन्दर्भ में 113-120
डॉ. मधु कुमावत

लोक देवी 'आवड़' का ऐतिहासिक योगदान 121-130
डॉ. सीमन्तिनी पालावत

श्रीमाल पुराण के आधार पर भीनमाल क्षेत्र के शक्तिपीठ एवं उनकी कथाएं 131-143
डॉ. पीयूष भादविया एवं मोहित शंकर सिसोदिया

मारवाड़ के ताजीमी ठिकानों का विश्लेषणात्मक अध्ययन 144-150
डॉ. भगवान सिंह शेखावत

अठारहवीं सदी बीकानेर में राजस्थानी एवं बीसवीं सदी में हिन्दी ग़ज़ल लेखन की परम्परा 151-160
दुर्गा सुथार

मारवाड़ राजघराने के प्रमुख दग्ध स्थल 161-167
सूर्यवीर सिंह

रजलानी गांव (जोधपुर) में धार्मिक स्थापत्य के प्रमुख केन्द्र : एक ऐतिहासिक अध्ययन 168-177
डॉ. भरत देवड़ा

शेखावाटी के व्यापारिक वर्ग का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान 178-183
डॉ. कुलवन्त सिंह शेखावत

नाता प्रथा : एक पुनर्विवाह या खरीद फरोख्त की व्यवस्था? 184-195
डॉ. लालाराम जाट

बस्तर में 1824 ई. का परलकोट विद्रोह एवं गेंदसिंह 196-205
डॉ. डिश्वरनाथ खुटे

झालावाड़ नरेश राजेन्द्र सिंह सुधाकर और सामाजिक जागरण 206-222
डॉ.(श्रीमती) सज्जन पोसवाल

महात्मा गाँधी और नेताजी सुभाष चंद्र बोस के वैचारिक संघर्ष के विविध आयाम 223-234
पूजा शर्मा एवं डॉ. डी.एन. खुटे

महात्मा गाँधी का नारी विमर्श 235-242
डॉ. पुष्पा कुमारी

छत्तीसगढ़ में बी.एन.सी. मिल तथा उससे संबंधित समस्याओं व परिवर्तनों का एक ऐतिहासिक पुनरावलोकन 243-254
खेमलता साहू एवं प्रो. आभा रूपेन्द्र पाल

किन्नरों के लोक जीवन का सांस्कृतिक विश्लेषण 255-272
डॉ. विजय कुमार पटीर

गरियाबंद की कमार जनजाति का बदलता आर्थिक जीवन 273-288
प्रो. आभा रूपेन्द्र पाल

उदयपुर शहर की 'प्रोळों' का एक अवलोकन 289-297
नारायण पालीवाल

अनुसूचित जातियों में सामाजिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता 298-307
डॉ. आनन्द श्रीवास्तव

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचार 308-320
कुसुम लता

Narrative-Ballads of *Suttanipāta*: Origin and Evolution of Some Buddhist Legends

• **Neekee Chaturvedi**

Narratives are one of the major characteristics of world literature, representing various folk tales, stories, legends, and heroic deeds of historical personalities. The narratives in Indian literature are found as early as part of the Vedic *ākhyāna* hymns. Indian literature in Vedic, middle Indic, non-Aryan, classical Sanskrit, and modern Indo-Aryan languages, possesses treasures of ancient narratives. They have been transmitted to other countries and were retained through oral transmission followed by textual continuity. The narrative tradition, therefore, owes a lot to story-telling. Story-telling was an art as well as a profession. Professional story-tellers of ancient times would recite the verses, narrate the stories, and enact the legends. The storytellers and poets were instrumental in preserving the age-old stories in the form of ballads, songs and tales and also influenced sculptures and paintings. Like the followers of Vedic and Hindu tradition, the Jains and the Buddhists too made significant contribution to the narrative literature of India.

The Buddhist narratives date back to the time of the Buddha, followed by the written record of the second or the first century BCE in the Pāli canon. This paper traces the journey of the narratives from the *Suttanipāta* that evolved into well-known Buddhist legends later. The narratives on birth, life and personality of the Buddha are uniquely significant due to the primitive bearings of the text. Chalmers describes them as "unvarnished presentiments against the ornate legends and wonders"[1]. They seem to have formed the germinating grounds for later narrative legends. In due course, the biographies of the Buddha became independent works, veering towards hagiography, but even the early Pāli canonical scriptures had begun to glorify and deify the Buddha.

The legends surrounding the Buddha, as contained in the *Suttanipāta,* are conspicuous due to the relative simplicity in their approach to the Buddha's divinity. They gain a special significance in the light of the great antiquity accorded to the *Suttanipāta* in many text-critical studies.

The *Nālakasutta,* the *Pabajjāsutta,* and the *Padhānasutta* of the *Suttanipāta* deal respectively with the birth of the Buddha, the Great Departure and the struggle with the *Māra.* Jayawickrama categorized them as narrative-ballads with occasional dialogue.[2] These three *suttas* represent the earliest beginnings of the narration of life of the Buddha[3]. These three *suttas* are placed together in the *Mahāvagga* of the *Suttanipāta*, and though they do not form a continuous narrative, they are certainly of an early stratum and thus, presenting the Buddha legends in their origins. These ballads alternate dialogue stanzas with narrative stanzas like Sanskrit *ākhyānas*. Discussing these *suttas*, Winternitz remarks that "they are precious remnants of *that sacred ballad poetry* from which the later epic version of the life of Buddha grew, in the same way as the heroic epic grew out of the secular ballad literature or *ākhyānas.*"[4]

While deducing early Buddhist legends, an attempt has been made to extrapolate these early descriptions gleaned from the *Suttanipāta* to mostly later texts. The additions and omissions found in the commentary of the *Suttanipāta* might be helpful in understanding the evolution of the legends. The *Suttanipāta* Commentary replenishes some accounts with miracles to attend the hitherto mortal personage of the Buddha. In the Commentary, the rounds of alms-seeking made by the Buddha are embellished with the purported appearance of the clouds to create shade and protect him from the harsh rays of the sun. The *Suttanipāta* and associated literary narratives, even though fragmentary in nature, represent a clear exposition and indicate some evolution of the Buddhist legends. The range of literary narratives became far more extensively developed when they become the subject-matter of artists. The canonical tradition of transmission was authenticated by the phrase *evam me suttam* or "Thus have I heard". The oral transmission and the process of carrying forward a legend might have had greater significance in terms of transference. The paper is an attempt to do some groundwork for tracing the antiquity through the narratives of the *Suttanipāta.*

The *Suttanipāta* and its Antiquity

The *Suttanipāta* is fifth book of the *Khuddaka Nikāya,* the fifth collection of the *Sutta Pimaka.* It is a collection of discourses of the Buddha. As a compiled version, it may not have been as early as some

of its portions. The authorship could have preceded editorial compilation. Even then it is a part of an early corpus of the Buddhist tradition. The text is quoted by name, for the first time, in the *Milindapañha* (Questions of the King Milinda). It cites various references to the *Suttanipāta*[5]. Lord Chalmers, who translated the *Suttanipāta,* writes that "there is no older book in Buddhist literature" and "no earlier corpus of Buddhist doctrine than it contains" even though its materials "are by no means all of equal antiquity."[6] Davids[7], Nakumara[8], and many other scholars point to its antiquity[9]. It is largely regarded that many of the discourses of the *Suttanipāta* might date back to the beginnings of Buddhism and might have at least originated in the circles of earliest disciples not long after his death. Many of the discourses were accorded a very high position in the *dhamma* discussions. The Bhabru inscription of Asoka cites at least three of its *suttas* as the *dhamma pāliyāya.* It is also established beyond doubt that *Nālakasutta* is the same as *Moneya-sute* of Asoka's Bhabru inscription[10].

Biographical Episodes and Narrative Intents

Within the Buddhist tradition, there was a distinct inclination to recount the life story of the Master. "Sacred biographies inspire imagination, belief, and practice in many religious traditions. The popular penchant for the life-stories of popular religious figures persists without concern for the historicity accorded to the times, place, and facts, related to the individuals whose life they recount.[11]" The intention of the narratives was oral rendition before an audience to establish the authenticity of the sermon by invoking the life of the founder. *Suttanipāta* (v. 81) testifies itself to the singing of these ballads with the mention of *gāthābhigitam* – what is obtained by singing verses[12]. They were captivating narratives for believers and easy on the ear for novices. Therefore, some biographical details, though sketchy at best, emerge early in the canon as evidenced by the *Suttanipāta.*

The tradition of systematic writing of sacred biography of the Buddha was to emerge later but many of the *suttas* in the *Suttanipāta* also throw considerable light on his life and personality. While the *Nālakasutta (Suttanipāta*, III.11*),* the *Pabajjāsutta (Suttanipāta,* III.1*),* and the *Padhānasutta (Suttanipāta*, III.2) elaborately narrate the birth story, the going forth, and the struggle with *Māra* respectively, there are other secondary references as preludes or embedded citations that shed light on the Buddha's descent, his way of living, his compassion and many other qualities[13]. Although Winternitz senses that these legends

presuppose a biography, they can definitely be called to present an account that is "simple and factual[14]". Pande remarks, "It seems that the earlier disciples of the Buddha paid much less attention to his life than to his teachings and were much more inclined to regard him as essentially a human being, a Sākya, a Gotama , who through his own efforts became awakened, and finally, at his death, entered a mysterious state beyond comprehension[15]." Although not much attention was paid to the compilation of historical biography, extraordinary qualities of the Buddha were emphasized with a hint of divinity at this early stage. On one hand, the narratives were intended to provide the early Buddhist communities with a role model of high moral stature and on the other, the exemplary circumstances of the leader's life inspired awe. The overlay of miracles and fantasy was yet to come but perhaps, "the main features of the later Buddha legends are prepared here.[16]" These narratives also provided a foundational platform for didactic communication. In this light, the paper now attempts a detailed examination of the biographical narrative pieces in the *Suttanipāta* - the *Nālakasutta,* the *Pabajjāsutta,* and the *Padhānasutta.*

Divine Birth, Human World

The *Nālakasutta* recounts how the sage Asita first meets the new-born infant Siddhattha Gotama in Kapilavatthu in northern India. This *sutta* is the original canonical location of the Asita episode of the traditional Buddha narrative. It comprises two sections: an introduction, the *Vatthugāthā* (*Suttanipāta,* verses 679-698), which contains the Asita story, and the *Nālaka Gāthā*, a record of the Buddha's instruction to Asita's nephew, *Nālaka* (*Suttanipāta,* verses 699-723). *Nālakasutta* is both a narrative and a teaching, all given in verses. The narrative section gives the introductory story, while the teaching section is a dialogue between *Nālaka* and the Buddha, dealing with sagehood.

The theological trend of apotheosis of the Buddha and the miracles attending his birth are generally considered a late characteristic, however, the *Nālakasutta* refers to divine beings heralding his birth. The *Nālakasutta* of the *Suttanipāta* narrates that Asita, the seer, in his mid-day meditation, saw the deities dressed in pure white, honouring Indra, holding up banners, jubilant and ecstatic.

So bodhi,satto ratana,varo atulyo
manussa,loke hita,sukhatāya jâto
sakyāna gāme janapade lumbineyye
tenamha tuṭṭhā atiriva kalya,rūpā

(*Suttanipāta,* v. 683)

(The Bodhisattva, incomparable, noble jewel, is born in the human

world for its good and joy in Lumbinî village, in the country of the Sâkyas. Hence, we rejoice exceedingly in festive form.)

Asita foresees in him the marks of a great man and laments the fact that he shall not live to see the glory of his greatness. He instructs Nâlaka, his nephew, to follow the path of the Buddha. The visit of Asita has been a significant and recurrent theme, which at this stage, is surrounded by little mythical paraphernalia. In cross-cultural comparison, Asita is presented as the Buddhist counterpart of the Christian Simeon[17], though scholars like Malalasekera do not find the comparison apt.[18] Jayawickrama also writes that this story was incorporated in the traditional accounts of Buddhism in the pre-Christian era and the greater probability is that both the stories developed independent of each other[19].

The commentary of the *Suttanipāta* narrates that Asita went to Suddhodana's palace to see the infant. When the child was brought to him, to everyone's surprise, the child's feet found themselves on Asita's head. The custom was for his devotees to place their heads at the sage's feet. However, it is said that if Asita had placed his feet on the Bodhisattva's head, Asita's head would have split into pieces. So, he rose from his seat and saluted the auspicious child[20]. Asita went on to examine the child and discovered that he was endowed with the 32 marks of the great man *mahāpurisa lakkhana*. (*Suttanipāta, v.* 690) He was sure that the child would become the fully self-awakened Buddha in due course, and jubilated at this fact. Despite his joy, however, Asita was also sad to realize that he had reached the age of ninety, and would not live long enough to witness the great awakening. Upon dying, he would be reborn in a formless realm, and so would not be able to listen to the Buddha's teaching. Hence, he wept. This is the famous "smiling/ weeping" Asita episode[21]. Asita then went to his sister's house and urged his nephew, Nālaka, to renounce the world in anticipation of the future Buddha's awakening. Nālaka complied and, in due course, renounced as the Buddha's disciple. Following the teaching given to him by the Buddha, as recorded in the *Nālakasutta*, he became an *arhat*[22]. In the Pāli sources, Asita was also known as Kāḷadevala[23], Kanhasiri[24] and Sirikanha[25] . These names attest to the fact that he was of dark complexion (*kanhā*). The Sanskrit parallels of the *vatthugāthā*, especially the *Mahāvastu*[26] and the *Lalitavistara*[27], agree in the main details with the Pāli version. However, the *Mahāvastu* says that Asita was the son of a brahmin from Ujjenî and he lived in the Vindhya mountains, and then he was said to live on Mt Kailāsa, a range in the Himalayas. There seems to be confusion between Asita of *Suttanipāta* and Asita Devala, who was a different person. The *Lalitavistara* gives the name of Asita's nephew as Nāradatta, but the rest of its account

agrees somewhat closely with that of the *Mahāvastu.* Both works are more developed than the *Nālakasutta*, hence of a later date. However, both the *Nālaka Gâthâ* and the *Mahāvastu* parallel contain old materials that go back to probably an older common source whose earliest manifestation we find in the *Suttanipāta.*

Even the *Suttanipāta* itself indicates chronological layers in the same *sutta.* The *Nālaka Gātha* or *sutta* proper significantly differs in style from the *vatthugāthā* or – the narrative introduction. The *vatthugāthā* is full of the miraculous and supernatural. Its narrative parts are highly ornate, filled with similes and metaphors. The child Siddhattha Gotama (the Bodhisattva) is described to be "blazing just like gold, fashioned so skillfully at the furnace's mouth" (*Suttanipāta,* v. 686). The style of the *Nālaka Gāthā,* is simpler wherein such miracle-laden, exaggerative imageries are not used. The main reason for this is clearly the predominantly instructive purpose of *Nālaka Gāthā.* Whatever figurative language we find has been used only to clarify the teaching. Such figures are powerful in drawing our attention and are very effective in presenting the Buddha's intention behind his teaching.

In the commentary, Buddhaghosa adds a biographical sketch of Asita that establishes his spiritual credentials. Asita was a sage, chaplain, who had been the teacher of both Suddodhana and his father and Suddodhana revered him greatly[28]. According to Buddhaghosa, Asita was so-called because of his dark complexion. This illustrates how the oral narratives are made more vivid through the invocation of visual imagination. It was designed to be a harbinger of the arrival of a great being on earth and became a recurrent theme in many visual narratives. The *Lalitavistara* has two versions of Asita's prophecy, one in prose and one in verse, which, in their chief details, differ but slightly from the Pāli version as Asita is described as a sage residing in the Himalayas, unknown to Suddodhana[29]. The *Mahāvastu*[30] depicts his hometown as Ujjeni and his present abode as the Vindhya mountains. The *Jātaka*[31] regards him as *tāpasa,* one who practices austerities. It is also narrated here that the baby Bodhisatta's feet turned and touched the ascetic's head for had they put the Bodhisatta's head on his feet, the sage's head would have broken into pieces. Thus, there was a lot of growth around the legend of Asita. It became well-known as a symbol of the birth story of the Buddha later although in *Suttanipāta* the birth narrative served as a background to the sermon on the attributes of a *muni.*

Sambodhi-y-aggaṁphusissat'āyaṁkumāro
dhamma,cakkaṁparama,visuddha,dassī
vattessat'āyaṁbahu,jana,hitānukampī
(Suttanipāta, v.693)

To All-Enlightenment this child shall grow;
In Utter Holiness, by pity moved,
Truth's Wheel a-rolling he shall set, and spread
His Saving Rule abroad both far and wide[32].

With these words, Asita foretold the assembly gathered on the occasion of the birth of the prince Gotama about the Wheel of the incomparable *Dhamma* that the newborn shall turn. The *Suttanipâta* depicts the background to the rise of Buddhism through two different types of narratives. Some narratives like the *Brāhmanadhammikasutta* foreground the negative practices indicating that the old practices were not capable of offering comfort and relief to people. Much has been written about the ascetics, their life and institution but the *Suttanipāta* presents a very early stage, "the growth of institutional structure had still to wait".[33] The rise of Buddhism is marked by a period of remarkable spiritual shifts. "It is natural to see in this age of change, a certain common context and to surmise that social change and religious change were not wholly unconnected".[34] The environment saw an upsurge in asceticism which was both representative of disenchantment with existing social order and embracing of a new mode of thinking. At the age of twenty-nine, Gotama himself 'went forth' into the homeless state.

Finding Home in Homelessness

It is made clear by the Buddha in his teachings that solitary, spiritual exertion unfettered by worldly ties is the path to tread on. The adoption of an ascetic life required a firm faith in spiritual happiness and a firm despair of material life. Ascetic ideas represented the search for purity and truth, transcending the sphere of bodily appetites and egoism to enter a state beyond life and death. The ascetics belonged to a spiritual fraternity existing outside the bondages of secular society. The *Suttanipāta* urges to fare in homelessness by severing the fetters of family and worldly attachments. It states :

Vaṁso visālo va yathā visatto
puttesu dāresu ca yā apekhā;
vaṁsakālīro va asajjamāno
eko care khaggavisā Gakappo
(Suttanipāta , v. 38)

Alone! A man absorbed
In wife and child is like
A tree with boughs.
Copy the bamboo-shoot
which grows up straight and free.[35]

The *Pabbajjāsutta* is the first text of the *Mahāvagga*, third *vagga* of the *Suttanipāta* (verses 405-424). The *Pabajjāsutta* accounts Gotama's embarking into homelessness as well as the factors that urged him. Later conditions suggest that the crisis came rather suddenly and was caused by the first sight of old age, sickness, death, and an ascetic. Similar references are found in the *Nidānakathā,* the *Lalitavistara,* and the *Buddhacarita*[36]. The *Suttanipāta* is silent over the story, though admittedly it is not meant to be a coherent biographical narrative. The references to renunciation conspicuously show ignorance of the legendary "four signs". This narrative may not be of great biographical significance in its details but is prominent in the omission of the picturesque story of legendary four sightings and in terms of the factors that could have featured in its contemplation. The conversion is depicted in general terms.

It is an early discourse recording Gotama's first meeting with king Bimbisara of Magadha during his spiritual quest of homeless wandering. The Commentary tells us that Gotama was then still a Bodhisattva seeking buddhahood. Hence, it is appropriately called the "Meeting with Bimbisara" (*bimbisāra pratyudgama*) in the Sanskrit sources[37]. When Gotama entered Rājagrha for alms, king Bimbisâra saw him and sent messengers to discover his whereabouts. They reported that he was taking his meal under the shadow of the Pāṃḍava.

Parvata. Bimbisāra visited him there and requested him to share his kingdom. Gotama told Bimbisāra of his antecedents and that he had renounced all pleasures seeing ill in them.

sambādho' yam gharāvaso, rajas 'āyatanam iti,
abbhakāso ca pabajjā – iti disvāna pabajji

(*Suttanipāta,* v. 406)

Because I saw 'a hole and corner life'
Was all a house and home could give, the Lord[38].

The narrative of the renunciation also provides a basis for bringing to light the futility of worldly pursuits. Many other *sutta*s reiterate the futility of the world that the Buddha foresaw. (*Suttanipāta, Attadandasutta.* verses 935-938) The meeting between king Bimbisāra and the Bodhisattva recorded in the *Pabajjāsutta* is clearly very soon after the great renunciation. It is also probably before the Bodhisattva goes for tutelage under the two teachers—Āḷara Kālāma and Uddaka Râmaputta—and certainly before the seven years of self-mortification, as recorded in the *Ariya Pariyesanāsutta*[39]. This conclusion is based

on the fact that the *Pabbajjāsutta* gives other details beyond the Bodhisattva's intention behind his renunciation. A clear hint of the timing is given in the last two lines of the last verse, where the Bodhisattva declares to Bimbisāra, that having seen the perils of pleasures he deems it fit to follow the path of renunciation. Thus, he will go on with striving as his heart delights in it.

Kāmesv-ādīnavaṁ disvā
nekkhammaṁ daṭṭhu khemato
padhānāya gamissāmi
ettha me rañjatī mano'ti

(*Suttanipāta,* v. 424)

Buddhaghosa explains that the *sutta* was recited by Ananda in Jetavana, outside Savatthi, because he wanted to give an account of the Gotama's renunciation, similar to that of Sāriputta and others[40]. The Commentary adds that at the end of the talk with the Bodhisattva, Bimbisāra asked him to visit Rajagaha as soon as he attained buddhahood (*buddhattā*)[41]. The word *pabbajjā* is used in this *sutta* in its simpler, older meaning, which is, leaving the crowdedness and restrictions of the household life for the open spaciousness of renunciation. However, as Buddhism became more institutionalized and settled, the word *pabbajjā* came to mean formal admission to the level of a novice (*sāmaṇera*).

Although most of the *Pabbajjāsutta* closely parallels the version of the *Mahāvastu*, there are a few significant differences. The first divergence between the *Pabbajjāsutta* and its *Mahāvastu*[42] parallel is the omission of the term Buddha used in *Suttanipāta* (v. 408). At the time of early Buddhism, 'buddha' seemed to be a common noun, simply meaning one who has understood true reality, and was commonly used to refer to any religious teacher. The sense of "Buddha" evolved as its usage was lost to the other traditions, but was retained by the Buddhists. Instances of the plural use of buddha in the S*uttanipāta* occur, and it is likely that what was in Buddhism at first a title open to all monks of highest comprehension (cf. v. 386), came later to be confined to the Founder[43].

Another difference emerges when the *Mahāvastu* curiously sandwiches the Bodhisattva's visit to Rājagaha between the accounts of the two teachers, Alāra Kālāma and Uddaka Rāmaputta. The *Jātaka Nidānakathā*, however, states that he leaves Rājagaha only after his meeting with Bimbisārā making a promise to come and see the king first

after his awakening. He then goes to Alāra Kālāma, and after that, to Uddaka Rāmaputta. After all this, the Bodhisattva goes on to Uruvelā to undergo six years of self-mortification[44]. In the *Suttanipāta* he is simply a well-born Sākyan, who left his house for the higher life and nearly starved himself to death by the implacable rigours of his self-mortifications, a tale that soon gathered lavish marvels even within the canon[45]. But one miraculous and mythical character does appear in *Suttanipāta* in the form of Māra, temptation incarnate, who tries fervently to hinder the path of the seeker. The narrative following soon after the renunciation story is the story of struggle.

Temptation and Deliverance

The *Padhānasutta* appears to be foreshadowed in the last stanza of *Pabbajjāsutta – padhānāya gamissāmi. (Suttanipāta,* v. 424) These two *suttas* are closely connected with each other. According to the Commentary, when Ânanda had finished teaching the *Pabbajjāsutta*, the Buddha, seated in his fragrant chamber, thought of letting the monks know about his arduous striving (*padhāna*) that lasted six full years. Accordingly, the Buddha taught this discourse narrating how Māra met him and tried to dissuade him from striving. Failing to do so, Māra later attacked him with his army. Then the Buddha told of his final victory and the disappointment of the evil force.

Keeping in mind the oral presentation of these narratives, it is easy to surmise that depicting the struggle of the good and the evil must have been a popular theme. The story invokes a visual imagination while making a case for spirituality over worldliness. In the *Padhānasutta,* the Buddha describes that during his meditation by the river Nerañjarā, how Māra came to tempt him with his eightfold army of lust, discontent, hunger and thirst, craving, cowardice, doubt, hypocrisy, and stupor. But Gotama, the Buddha was firm and Mâra retired discomfited (*Suttanipāta*, verses 425-449). The army of Mâra is described as being tenfold and each division of the army is described with a great wealth of details in later accounts such as the *Nidānakathā,* the commentary on the *Jātaka*, and the commentary on the *Buddhavamsa*[46].

Māra is also called Namucī (*Suttanipāta*, v. 426), for none could escape him as the temptations seem very attractive. Besides evil temptation, Māra is identified with *maccu* or death also in the *Suttanipāta*. (verses 166, 357–358, 581, 587 etc.). Pande suggests, "These two meanings are closely connected in the Buddhist thought, for it is the forces of worldly desires which confine man to the realm of

the mortal.[47]" Nakumara surmises that Māra allegorises the struggle in Gotama's mind[48]. "There is no doubt that the Māra legend had its origin in the *Padhānasutta*…Here we have practically all the elements found in the later elaborated versions"[49].The account in the *Suttanipāta* is stark and austere but has legend-like features around which many myths emerged later. The animosity of the evil forces is shown to originate at the time of the birth in later accounts, when all rejoiced, Māra alone grieved[50]. The second part of the *Padhānasutta* (*Suttanipāta*, 446 ff) is more concerned with later events in the life of Gotama which is more clearly depicted in the commentary which states that after Māra had retired discomfited, he followed the Buddha for seven years, watching any transgression on his part. But his quest produced no result like "a crow attacking a rock" and he leaves Gotama[51]. The Buddha gives the essence of his victory and the crushing defeat of the army of Māra.

yam te tam nappasahati senam loko sadevako,
tam te paññaya vecchāmi, āmam pattam va asmanā.
(*Suttanipāta* ,v. 443)

Thy hosts – which neither men nor gods can rout –
With Lore I'll crush, as pebbles smash a bowl[52].

The *Padhānasutta* is unique on account of its battle imagery (verses 436-437, 439), while depicting the Buddha's final struggle with Māra for self-awakening. Mental cultivation is depicted as a battle against what is evil in the world (verses 433-434). The narrator seems to have made use of metaphors and images familiar to the Buddha's audience of the central Gangetic plain in the 6th century BCE. This was the time when this region was undergoing territorial expansion by kingdoms through battles and conflicts. That said, the mythology is minimal regarding the myth of Māra who is also simply referred to by an ancient word, *yakkha* or nature spirit (v. 449). This may well be one of the earliest references or one of the first references to the Māra myth. This is a "spiritual myth," which attempts to darmatise and personify truth and reality for a more effective transmission of the teaching. In the Sutta, Māra is merely a foil to the spiritual determination, courage and vision of the Buddha. These *suttas* are an attempt to record Buddha's early sojourn as an ascetic, yet, the "wholesome austerity" as pointed out by Chalmers gives them precedence over all extant accounts[53].

Conclusions

The character and the personality of the spiritual leaders may not

always be of critical interest to the followers of their doctrines. For Buddhists, however, character and personality are vitally important. The concepts of Buddhism are not transmitted from divine sources to humans. The themes of Buddhism emanate from the thoughts and experiences of the Buddha himself. This makes the biographical narratives very significant and to trace their early origins and consequent evolution helps the historical context and spiritual foundations of religious development. The *Nālakasutta*, the *Pabbajjāsutta*, and the *Padhānasutta* form an ancient triad of sequential early narrative of the Bodhisattva leading to his buddhahood. These *suttas* are the ancestors from which evolved the Buddha's biography as we know it today.

"Narrative elements played a vital role rather than doctrinal aspects of the teachings, since they emphasized the value of virtuous living, as they still may do even at this date[54]" This is the reason that we find that some of the legends of the *Suttanipâta* are quite popular in the Buddhist art. The visit of Asita is the most popular theme among artists in India and outside. For example, a sculpture at Amravati shows Asita holding the infant Buddha, represented by a piece of cloth with footmarks, in the palace of Suddhodana. His nephew is also present in the scene while another sculpture at Nagarjunakonda depicts the casting of Gotama's horoscope by Asita. Another recurrent theme is Gotama's struggle with Mâra as illustrated at the northern gate of the Sāncî stûpa among many other places. The middle architrave tells the story of how the Buddha overcame temptation in the final moments of his penance when the evil Māra, in his desperation, sent his own daughters to tempt the ascetic. These stories remind one of the oral tradition and how it is manifested in art[55]. Although it requires further study, one can also assume the role of collective memory and cultural conditioning in artistic expression, especially when the purpose is mostly didactic. It becomes difficult to convey the essence of Buddhist narratives without navigating their historical consciousness in modern pedagogy and scholarship[56]. Therefore, the historical arch of literary evolution sets the paradigm of historical context of religious teachings.

The *Suttanipâta* is a significant text not only because of its antiquity but also due to its great regard in the canonical literature. The narrative intents and historical contexts can provide a framework to create a coherent thread for their comprehension. The early days of Buddhism gave rise to stories that highlight the decadence of the social and religious order against which an alternative was being formulated. The narratives of the early dissemination of a new ideology also

reflected everyday resistance by common people – householders and peasants. They also manifested the persuasive methodology of the Buddha through the efficacy of his teachings. The biographical narratives created an ideal image of the leader, but mostly as a human, where the followers drew inspiration through his spiritual struggles. The growth of mythical paraphernalia did little to change the core, and hence the didactic value of the stories remained. The early efforts to make the narratives more vivid got burdened with a quest for divinity in later trends. This could also be a consequence of literary evolution and literacy. Nevertheless the remnants of oral tradition continued to echo in literary compositions as well as in visual representation. The narratives may not always be portraying things that can happen empirically but successfully transmitted profound messages. Therefore, it is a fruitful historical exercise to decode those messages with their changing as well as unchanging connotations.

References

1. Lord Chalmers, *Buddha's Teachings – Being the Suttanipāta or Discourse Collection*, Vol. 37, Harvard University Press, Harvard, Cambridge, 1932, p. xix. All verses of *Suttanipāta* have been cited from this compilation and translation unless otherwise stated.
2. N. A. Jayawickrama, "The Vaggas of the Sutta Nipāta", *Pāli Buddhist Review*, Vol. 1.3., pp. 136-163, 1976, p. 161
3. N. A. Jayawickrama, "A Critical Analysis of the Pāli Suttanipâta illustrating its Gradual Growth: General Observations and Conclusions." *University of Ceylon Review*, Vol. IX, April no. 2 , pp,.113-124, 1951
4. Winternitz, Maurice, *History of Indian Literature*, Reprint, Translated by Srinivasa V. Sama, Vol. II., Motilal Banarasidass, Delhi, 1988, p. 96
5. Rhys Davids, T. W., *Questions of the King Milinda*, Reprint, Vols. XXXV, XXXVI, Sacred Books of the East Series, Varanasi,1965, pp. 503-506
6. Chalmers, op. cit., Introduction, p. viii
7. Davids, op. cit., 1965, p. 90
8. H. Nakumara, *Indian Buddhism*, *A Survey with Bibliographical Notes*, Motilal Banarasidass, Delhi, 1987, pp.44-46

9. V. Fausböll, *The Suttanipāta*. Revised edition. Vol. X., Oxford University Press, London, 1898, pp. xi-xii; Oldenberg, H., "Zu Suttanipāta." *Zeitschrift der Deutschen Morgenländischen Gesellschaft*, 62 (3), pp. 593-594, 1908; G. C. Pande, *Studies in the Origins of Buddhism.* Third Edition, Motilal Banarasidass, Delhi, 1983, pp. 35-44; Jayawickrama, op. cit., 1951, pp. 113-124

10. Hultzch, "Inscriptions of Asoka." *In Corpus Inscripionum Indicarum 1*, The Clarendon Press, Oxford, 1925, p. 174

11. Juliane Schober, *Sacred Biography in the Buddhist Tradition of South and Southeast Asia*. Motilal Banrsidass, Delhi, 2002, p. I

12. N. A. Jayawickrama, "Criteria for the Analysis of the Sutta Nipāta The Sutta Nipāta: Its Title and Form" *Pāli Buddhist Review,* Vol. 1.2, 1976a, pp. 75-90, p. 90

13. Neekee Chaturvedi, "Life and Personality of the Buddha as Depicted in the Suttanipāta." In *The Ocean of Buddhist Wisdom*, edited by Sharma, S. P. and Labh, B., New Bharatiya Book Corporation, New Delhi, 2012, pp. 15-24

14. Winternitz, op. cit., pp. 93-95

15. Pande, op. cit., p. 370

16. Winternitz, op. cit., p. 95

17. Arthur Lillie, *Influence of Buddhism on Primitive Christianity*, Swan Schonnensien, London, 1893, p. 26; H. Nakumara, *A Comparative History of Ideas*, Motilal Banarasidass, Delhi, 1992, p. 197

18. G. P. Malalasekera, *Dictionary of Pāli Proper Names*.Vol. I, A-DH; Vol. II, N-H, Reprint, Motilal Banarasidass, New Delhi , 2007, p. 208

19. N. A. Jayawickrama, "The Narrative Ballads", *Pāli Buddhist Review*, Vol. 3.1. 3-19, 1978, p. 17

20. *Paramammhajotikā, Suttanipāta-ammhakathā*, Edited by H. Smith, Pāli Text Society, London, 1916-1918 , II. 3.1

21. Ibid., II., v.488

22. Ibid., II.500

23. The Jātaka together with its Commentary, Edited by V. Fausböll, Vols. I-VI., Pāli Text Society, London , 1962, Vol. I, No.54

24. Suttanipāta, Jayawickrama, N. A. Suttanipâta – Pâli text with Translation into English and Notes, University of Kelaniya, Kelaniya, 2001, verse, 689
25. Paramammhajotikā, op. cit., II. 487
26. Mahāvastu, Translated From the Buddhist Sanskrit, by J.J. Jones, Luzac, London, 1949-1956, II.30-45
27. Mitra Lalitavistara, Raja Rājendralāla, 1824-1891, The Lalita-vistara: Memoirs of the Early Life of Sakya Sinha (Chs. 1-15), Sri Satguru Publications, Delhi, 1998, 76 ff
28. *Paramatthajotikā*, op. cit., II.483
29. Malalsekara, op.cit., pp. 208-209
30. *Mahāvastu avadānam*, Edited by E. Senart., Vols. I-III. A L'Impremerie Nationale., Paris, 1882-1897, II.30ff
31. *Jātaka*, Vol. I., Nos. 54-55
32. Chalmers, op. cit., p.167
33. Nakumara, op. cit., 1987, p. 58
34. G. S. P. Misra, *The Age of Vinaya*, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1972, p. 35
35. Chalmers, op. cit., p. 11
36. Pande, op. cit., p. 373, footnote 34; Cf. *Buddhacarita*, edited by E. H. Johnston. 2 vols., Baptist Mission Press, Calcutta, 1935-1936
37. N. A. Jayawickrama, op, cit,. 1976, p. 160
38. Chalmers, op. cit., p. 99
39. *Majjhima Nikāya*, Bhikku Nanamoli and Bhikku Bodhi (Trans.) *The Middle Length Discourses of the Buddha: A Translation of the Majjhima Nikāya.* Wisdom Publications, Somerville, 1995, 26, 1.1.2-3
40. *Paramammhajotikā*, op. cit., II: 381
41. *Paramammhajotikā*, op. cit., II: 386
42. *Mahāvastu*, 2, 198-200
43. Chalmers, op. cit., p. xix
44. *Jātaka* , Vol. I, No. 66
45. *Majjhima Nikāya*, verse 123
46. R. Otto Franke, "Die Suttanipata-Gathas mit ihren Parallallen." *Zeitschrift der Deutschen Morgenländischen Gesellschaft* 63, pp. 551-586, 1847
47. Pande, op. cit., p. 382
48. Nakumara, op. cit., 1992, p. 200

49. Malalasekara, op. cit., II. 615

50. Paul Carus, *The Gospel of Buddha*, Publications Division, Delhi, 1990, p.11

51. *Paramtthajotikā*, II.391

52. Chalmers, op. cit., p. 103

53. *Ibid*., p. xix

54. Nath, Amarendra, "Buddhist Narrative in closely similar Anecdotes: A Case Study of Yava-*Majhakiya Jātaka* and *Mahā-Ummaga Jātaka*", *Artibus Asiae*, Vol. 50, No. 1/12, pp. 143-147, 1990, p. 143

55. Cf. Dehejia, Vidya, "On Modes of Visual Narration in Early Buddhist Art", *The Art Bulletin* 72 (3), 1990, pp. 374-392

56. Rita M. Gross, 2013. "Historical Consciousness and Traditional Buddhist Narratives." *International Journal of Dharma Studies* **1,** 5. https://doi.org/10.1186/2196-8802-1-5

Associate Professor
Department of History and Indian Culture
University of Rajasthan, Jaipur

❑❑❑

SATI : The Immolating Wife

Sukriti Chakraborty • Dr. Abha R. Pal

Sati, which in Sanskrit means a "good woman" or "chaste wife", the word is derived from the Sanskrit word "*asti*', which means "She is pure or true".

It is the Indian custom of a wife immolating herself on the funeral pyre of her dead husband soon after his death. *Sati*, was the ideal, of womanly devotion held by certain Brahmins and royal castes. It is sometimes linked to the myth of the Hindu goddess Sati, who burned herself to death in a fire that she created through her Yogic powers after her father insulted her husband, the God Shiva—but in this myth Shiva remains alive and avenges Sati's death.

The first explicit reference to the practice in Sanskrit appears in the great epic *Mahabharata* (compiled in its present form about 400 CE). Numerous Sati stones, memorials of the wives who died in this way, are found all over India, the earliest dated 510 CE. Women sometimes suffered immolation before their husbands' expected death in battle, in which case the burning was called *jauhar*. In the Muslim and Mughal period (12^{th}-16^{th} century), the Rajputs practiced *jauhar*, to save women from rape and humiliation, which they considered worse than death, at the hands of conquering enemies. The hardships encountered by widows in traditional Hindu society may have contributed to the spread of *Sati*.

The larger incidence of *Sati* among the Brahmins of Bengal was indirectly due to the *Dayabhaga* system of law (*c.* 1100), which prevailed in Bengal and which gave inheritance to widows; such women were encouraged to commit *Sati*, in order to make their inheritance available to other relatives. In the 16th century, steps to prohibit *Sati* were taken by the Mughal rulers Humayun and his son Akbar. *Sati* became a central issue under the British Raj, which first tolerated it, then inadvertently legalized it by legislating conditions under which it could be done, and then finally, in 1829, outlawed it—using the condemnation as one of its justifications for continuing British rule of India.

The Mahabharata and the Ramayana both recognised the custom of *Sati*, but only the former (and probably not an early part) gives a case of a Royal widow burning herself with her husband. It is perhaps extension of a royal custom, as in the epic, which has made the rule general, so the later law and practise recommends *Sati* for all. A parallel would be the self- choice (*swayamvara)* or election of her husband by a Princess, afterwards regarded as an election rule in the case of other maidens.[1]

The Ramayana does not mention the practise of *Sati* : the three wives of Dasaratha did not perform self-immolation after their husband's death, nor the wives of Bali and Ravana, as we have observed before. It is only in the Mahabharata that the first instance of the practise occur : Madri burnt herself alive with her deceased husband Pandu.[2]

Although the word *Sati* dates back to the Matsya Purana, where devi *Sati*, an incarnation of Goddess Durga, immolated herself for the dignity of her husband, Lord Shiva. Some traces from Matsya Purana can clarify what *Sati* exactly did and how it is different from the evil practise of *Sati* which we have seen.

Sati said that when Daksha invited all the Devas was to take part in the great sacrifice that he performed, *Sati* asked him the reason for having excluded her husband Shiva. Daksha answered that Shiva was not invited, because he was not considered worthy, since he always remained besmeared with the ashes of the funeral pyre and armed with his Trident. He, being the destroyer of the universe also, it would have been utterly inauspicious to invite Shiva on the occasion of that big sacrifice. Hearing those words of Daksha, *Sati* was enraged, and said she would give up the body begotten of him. *Sati* continuing added that in the course of the performance of his sacrifice, Daksha would be killed by her Lord- Mahadeva and he would again have to take birth as a son of the ten Prajapatis. After that, *Sati* produce a blazing fire by her Yogic powers in the sacrificial pool, and began to consume herself into it, seeing which all the Devas, Asuras, Kinnaras and Gandharvas present there, asked what was it due to?[3]

Daksha became very sad and saluting, said— "Devi! Thou art the mother of the universe and the giver of happiness to all. Only through sheer kindness though took birth as my daughter. None of the moveable and immoveable can thrive in the universe without thee, be pleased, do not forsake me, O pious one!" Hearing the above words of Daksha, Sati said, "I shall accomplish what I wish. Hear! you should practise

penances after your sacrifice is destroyed by Shiva, and then you will be born of the ten Prajapatis; you shall then have sixty daughters, and I shall give you yoga after becoming pleased with your austerities.[4]

It is quite evident that Devi Sati was neither a widow, nor she was forced to immolate herself. So orthodox Hindus who quoted Devi Sati to justify the evil practise are completely baseless. Moreover, we also know that when Devi Sati died, her body parts fell on earth which in turn became holy places, popularly known as SHAKTI PEETH. One such place is the temple of Kalighat, in Kolkata.

The temple of Kalighat was the place of pilgrimage for orthodox people in those days as it is even now. The place is mentioned as early as 1495 by Vipradasa in Manasa Mangal. The mythology would tell us that when Siva was roaming all over the world with the body of the dead Sati unmindful of everything else Vishnu with his discus cut the body of the Sati into 51 pieces each of which fell in a particular place. All these places came to be held sacred to the Hindus *(pitha-sthana)*. Kalighat commemorates the place where the toe of the right foot of Sati fell. Whatever the significance of the myth may be Kalighat is still sacred to the Hindus all over India and the Hindi invocation *Bam Kali Kalkattawali* points out how widely the Goddess of Kalighat is esteemed.[5]

But in spite the fact that we worship women Goddesses as "Maa" and "Devi", the rules for women are quite derogatory. They are subjected to many atrocities.

The laws regarding women are the most self contradictory. As the position of woman is more or less indicative of the state of civilization, it is important to notice that the high regard paid to women is confined to her function as a mother of sons. The bride must be a virgin (not a widow, Manu, IX, 65) and the remarriage of widows is generally not in countenanced, but the codes of Manu did not sanction the custom of *Sati* till late and the provision of widows show that, though they probably lived miserably and without honour, they were not expected to die with their husbands.[6]

But the saddest of all India's women are widows. The last census enumerated thirty-five thousand widows of less than 15 years, and Eighteen thousand of less than five years old. No widow may re-marry. She is forced to shave her head and become the dishonoured drudge of the family. Her widowhood is richly deserved, for surely is a penalty of former sins. What despair! Calcutta has more prostitutes for its population than any European city, and they are mainly recruited from

the widows. These widow- prostitutes are to be found in every larger Bengal village. From such a fate the agony of Sati was for many a merciful escape. Sati, however was a mark, not only of the sanctity of marriage but also of women's inferiority. No faithful Hindu husband ever leapt upon his wife's funeral pyre.[7]

The evil practises evolved with time and became more and more cruel. With every foreign invasion, safety of women became a great concern and more customs like child marriage and *purdah*, were forced upon them, to protect them from the eyeing enemy.

It was believed that, it was important to keep the woman safe from the enemy invading their territory, for example Mughals invading the Rajput territory. It is said that when a soldier of the Rajput army was killed in the battle, his wife would immolate herself on his funeral pyre to prevent herself from falling into the hands of the Mughals.[8]

In India only the people of Rajput clan living in Rajasthan perform mass performed *Jauhar* when defeated in battles. For example, Padmini and her womenfolk jumped into fire enmass to prevent the Muslim Sultan of Delhi, Allaudin Khilji from capturing them. Because of this incident, many believe that *Sati* came into existence just to avoid women from being captured by Muslims who invaded India. Among Princes and people from the higher caste, widow burning as a collective act started. For example, in 1724, 66 women were burned alive at the funeral of Ajit Singh of Marwar Jodhpur, and 84 women were sacrificed at the funeral of Budh Singh, a king of Bundi. There is a resemblance in *Sati* and *Jauhar* and the only difference is *Jauhar* was done by Rajput widow at the end of a defeated battle, while *Sati* by a normal Hindu widow in a religious context. Widows gain dignity and power if she decides to die alongside her husband, and by doing that, she brings honour to her husband's family. Therefore, by her dignified sacrifice the widow can avoid being despised and procure glory for herself and her family.[9]

But it would be completely wrong to blame a community for the wrongs of other. Not every Muslim invader or ruler, supported or committed such harm to women.

Akbarnama mentions that *Sati* is an ancient custom of India, in which women immolates herself; however, unwilling she may be. Even Biruni says that the King's wives were immolated with or without their consent. We can conclude that *Sati* was compulsory in some parts of India and voluntary in others. Delhi sultans, when they first entered India, they did not interfere with the Indian customs and specially *Sati* practice. However, Mohammed Bin Tughlak was the first Muslim King

who opposed *Sati* and raised his voice against it. He made it compulsory to obtain a license to burn the widow, and this was to discourage *Sati* and put a stop to forcefully immolating a widow. But he didn't go beyond this to completely stop the *Sati* practice. After him, Mughal emperor Humayun was the one who took the big step and tried to end it altogether. He prohibited this practice even if a woman is willing to perform it. The Hindus did not oppose this law; however the God-fearing King retracted his orders because he feared that the wrath of God would bring his Kingdom down. But the system of obtaining license continued to prevent effective *Sati* practices. After him, Akbar stopped forceful *Sati* practice in his Kingdom and said if a Hindu woman wish to perform *Sati*, they should stop her but not force her against her will. He even appointed men to stop this practice if performed forcefully. In some of the cases he intervened personally to stop a woman for performing *Sati*.[10]

After him, Jehangir officially prohibited *Sati* and infanticide. But some say that the prohibition was only in the paper and not very strictly enforced. After him, Shah Jahan stopped women with children to practice *Sati* and allow the children of widows to get an education. The people should get permission from the governor if they want to practice *Sati*, but the governor would not give it easily. After him, Auranzeb banned the practice of *Sati* in his empire. But could not abolish it permanently, there were cases reported where *Sati* was performed even after his provision. One can say that by different means, many Muslims emperors tried to save the widow and have succeeded in many of their attempts, if not all, thus many widows were saved by them.[11]

During the British rul, the Sati Regulation Act, XVII of 1829 was enacted after much consultation within and without the government. It was called: "A Regulation for declaring the practice of *suttee* or burning or burying alive of the widows of Hindus, illegal and punishable by the criminal courts."[12]

Thus the Act was a major departure from the previous policy on *Sati*. It was intended to punish all *Sati* as a criminal act. There was no longer any distinction between legal and illegal *Sati*. Section 1 of this Act was more like a preamble. It stated: "The practice of *suttee* or of burning or burying alive the widows of Hindus is revolting to the feelings of human nature: it is nowhere enjoined by the religion of the Hindus as an imperative duty…."[13]

In unequivocal terms Section 2 declared *Sati* to be illegal and punishable by criminal courts.

It was 1829 that Lord William Bentinck with the help of Raja Rammohan Roy introduced a formal law prohibiting *Sati*, called "Indian

Sati Regulation Act, 1829", which had immense impact. Aiding and abetting a sacrifice whether voluntary or not was deemed to be a culpable homicide and the Court had the discretion to decide the punishment after referring to the nature and circumstances of the case. The drafters of the Indian Penal code in 1860, under the East India Company watered down the severity of the penal provision on *Sati* when *Sati*, as a voluntary act got included in the general provision on suicide and such suicides were put outside the pale of legal definition of murder by inserting an exception number 5 to 300, which says that: "Culpable homicide is not a murder when the person whose death is caused, being above the age of 18 years, suffers death or takes the risk of death with his own consent."[14]

Sati, for the said section, is an offence only if the act appears to be involuntary. However, the act of committing *Sati* can be punished for culpable homicide and abetment to commit suicide. This act can also be punished under other provisions relating to offences affecting life covered under Chapter XVI of the code such has attempt to murder and attempt to culpable homicide.[15]

Rammohun Roy's first pamphlet on *sati* was published in 1818, five years after the colonial administration had authorized a particular version of the practice and three years after systematic data collection on *sati* had begun. By this time the main features of official discourse on *sati* had already taken shape. Between 1818 and his death in 1832, Rammohun wrote a great deal on *sati*. He also published a paper in 1830, a year after the abolition of *sati*, entitled "Abstract of the Arguments Regarding the Burning of Widows Considered as a Religious Rite." In Rammohun's own view this pamphlet summarizes his main arguments over the years.[16]

As the title might imply, Rammohun's discussion of *sati* is grounded from the beginning in a discussion of scripture. As he puts it, "The first point to be ascertained is, whether or not the practice of burning widows alive on the pile and with the corpse of their husbands, is imperatively enjoined by the Hindu religion?". Rammohun suggests in answer to his own rhetorical question that "even the staunch advocates for Concremation must reluctantly give a negative reply," and offers Manu as evidence: *Manu in plain terms enjoins a widow to continue till death forgiving all injuries, performing austere duties, avoiding every sensual pleasure, and cheerfully practicing the incomparable rules of virtue which have been followed by such women as were devoted to only one husband.*[17]

In January 1830, Rammohun joined with three hundred Calcutta residents in presenting a petition to Governor-General William Bentinck

in support of the regulation prohibiting *sati* that had been enacted on December 4, 1829. The petition offers further evidence that *Sati* is not legitimized by scripture. Rammohun and the petitioners argue that *Sati* originated in the jealousy of certain Hindu princes who, to ensure the faithfulness of their widows, "availed themselves of their arbitrary power, and under the cloak of religion, introduced the practice of burning widows alive."[18]

Interpretations of religious texts helped *sati* to spread vastly into Indian culture. During British rule, *Sati* was increasingly widespread in India. By performing *sati*, one woman is forgiven off her sins and her husband's as well. Another thing is according to religious texts if she performs *sati*, she shall live in heaven in the afterlife. People idolized the women who performed *sati* and made a temple of her on the place she immolated herself. *sati* is still being practiced- even though rarely- by many Indians despite the severe laws imposed by the British and by the Indian government.

Now with the widespread education and awakening among the women *sati* has got the blow. No custom, however had been stopped by law unless awakening is created amongst the sufferers, unless the suffering party stands against it. Centuries of oppression that Indian women had been enduring made them feel and believe that it was right, more so because it had a religious sanction (?) too. Religion was interpreted for oppression and therefore socio-religious reforms came for their rescue. Right to live is the first right not only for a human being but for every living being and poor Indian woman was deprived of it for many centuries!

References :

1. *"The Cambridge History of India:1 Ancient India"*, Rapson, E.J. (Ed.), Cambridge University Press, London, 1922, p 293.
2. Nundolal Dey, *"Civilization in Ancient India"*, Kanti publications, Calcutta, 1986, p. 164
3. *"The Sacred Books of the Hindus: The Matysa Puranam"*, Basu, B.D.(Ed.), Cosmo Publication, New Delhi, 2007, p 40
4. Ibid., p 41
5. P.C.Bagchi, *"Calcutta and the Suburbs"*, Calcutta, 1935, p 46
6. Rapson, op. cit., p 292.
7. W.E.S Holland, *"The Indian Outlook: A Study in the way of Service"*, Edinburg House Press, 1927, p 180-181

8. M. Jennifer Bushaw, *"Suicide or Sacrifice? An examination of the Sati Ritual in India"*, The University of Chicago, 2007, p 5
9. Mohammed Shamsuddin, *"A Brief Historical Background of Sati Tradition In India"*, Religion and Philosophical Research, 3:5, June 2020, p 49
10. Sushil Chaudhuri, *"Sati as Social Institution and the Mughals"*, Proceedings of the Indian History Congress, 1976, p 219
11. Ibid., p 220
12. P.K. Rana, *"Critical Analysis on Criminalisation against burning of widows"*, International Journal of Law, 3:1, January 2017, p 19
13. Ibid.
14. Ibid.
15. Ibid.
16. Lata Mani, *"Contentious Traditions: The Debate on Sati in Colonial India"*, University of Minnesota Press, 2015, p 135
17. Ibid., 136
18. Ibid., 138

Sukriti Chakraborty
Research Scholar,
SoS in History, Pt. Ravishankar Shukla University,
Raipur, Chhattisgarh

Dr. Abha R. Pal
Professor and Head,
SoS in History, Pt. Ravishankar Shukla University,
Raipur, Chhattisgarh

❑❑❑

Banda Singh Bahadur as reflected from Rajasthani Sources

• Dr. Daljit Singh

Sacrifice and martyrdom of Banda Singh Bahadur had simply added one more chapter in the tradition of the Sikh history and it is simply unparalleled in the history of mankind. Never in the history, any disciple had fulfilled the ideas and aspirations of his master as was the case with Banda Singh Bahadur, who in a true spirit, had carried out the *farmans* of tenth Sikh Guru, Guru Gobind Singh. It goes to his credit that he gave a foretaste of political authority to the Sikhs who later succeeded in establishing sovereign Sikh rule in the North-West of India. Despite his extra-ordinary achievements, some aspects of his life and personality are still shrouded in mystery. It is a pity that we know extraordinarily little about his childhood and early life. In this paper, an initiative is taken to explore the eyewitness accounts and a lot of contemporary evidence in the form of accounts written in Rajasthani chronicles and are compared with other Gurumukhi and Persian sources to get significant insight into the most active phase of his life. (1708-1716)

Baba Banda Singh Bahadur is one of the greatest personalities in the history of Punjab. He indeed practised the ideals and philosophy of Guru Nanak Dev and Guru Gobind Singh. He devoted and sacrificed his entire life for the cause of the upliftment of Sikh values, traditions, and its doctrines. It was for the first time in the history of Punjab, that we have seen a person like Banda Singh Bahadur who has raised himself from the lowest position to the sovereign of a State. His military genius, skillful commandership, heroic war activities, liberal attitude towards the non-Sikh population, social and agrarian reformist zeal and his ideas about the sovereignty of the people i.e. sovereignty of the *Khalsa* are some of the commendable aspects of his personality that have profoundly influenced the history of his times and also shaped the future course of events of the Sikh history. It is a common belief that the

French Revolution has initiated the Declaration of Human Rights that was later followed by entire world. But it is worthwhile to mention here that Banda Singh Bahadur introduced peasant proprietorship in 1709-10, almost eighty years before the French Revolution. The struggle of Banda Singh Bahadur by no account is considered as a fanatical religious war against the Islam but on the other hand his struggle was against those who were perpetuating massive oppressions in the name of the religion. Though he was a great hero for the Sikhs, yet he was an enigma to the Mughals whose scorn is well reflected in the contemporary Mughal chronicles.

The emergence of the Sikhs as a political power in the Punjab during the 18th century has received wide scholarly attention. Yet, the question arises as to how to visualize this entire phenomenon, particularly in view of the varying perceptions that we witness in the historical writings representing Mughal, Sikh, and European perspectives. This issue becomes more complicated given the fact that contemporary historical accounts were written by the Mughal court historians and officials (news writers) and the biasness in their narratives in the context of the Mughal-Sikh relations is obvious. The Mughals had their own agenda to portray the history of their times in a particular hue. Their own concerns indisputably influenced their perception of the role of different sets of the people who dared and challenged the Mughal authority or questioned the legitimacy of their rule. The result is that often the image that we get in the Mughal accounts of all forms of resistance to the Mughal authority is negative. Protest is taken as rebellion; rebelliousness and their synonyms are the most damaging language of abuse in Mughal court literature. To begin with, there were the contemporary Court historians and chroniclers who recorded the events related to the life and times of Banda Singh Bahadur which is generally termed as Persian historiography of the 18th century India. However, these historians were to a large extent biased against Banda Singh Bahadur and they have depicted his struggle in the form of religious war. These historians have presented Banda Singh Bahadur in an awfully bad shape by attributing his rule as rebellion against Mughal authority and in the concluding parts of their works these historians have charged Banda Singh Bahadur with all kind of cruelty, barbarism and inhumanness. Prominent among these historians are Khafi Khan, Ghulam Hussain Khan, Ghulam Mohy-ud-din, Muhammad Qasim, Mirza Muhammad Harsi, Muhammad Hadi Kamwar Khan, Muhammad Shafi Warid, and Muhammad Qalandar Yar. Khafi Khan said that in 1709-10 Banda was able to put into the field in Sarkar Sarhind, an army of innumerable man like ants and locusts belonging to the low castes of Hindus who were ready to die for him.[1] Muhammad

Hadi Kamwar Khan wrote that a large number of scavengers, tanners, a class of banjaras and other lowly persons and cheats became his disciples and gathered under him.[2] Muhammad Shafi Warid admitted that letters were sent to all the zamindars who owed allegiance to the deceased Guru, to join Banda Singh Bahadur. But insisted that scavengers and tanners joined his service and received appointments in the Government of their own places.[3] These Mughal courts historians refused to see a much wider social base of Banda Singh Bahadur movement and its true character. However, in the near absence of any other contemporary sources, the factual parts of these Persian sources are of much significance for the reconstruction of the history of Banda Singh Bahadur. One must very carefully scrutinize the accounts presented by these Persian historians.

The Sikh historians of the 19th century, knowingly or unknowingly, depicted Banda Singh Bahadur as a villain against the Islam and as a 'Villain against the Sikhism'. These scholars have not been able to penetrate beyond the crust of the then prevalent accounts. Prominent among these scholars are Kesar Singh Chibbar, Bhai Santokh Singh, Giani Gian Singh, Rattan Singh Bhangu and Sarup Das Bhalla. These Sikh historians have reconstructed the life and activities of Banda Singh Bahadur in such a poetical composition that provides much space only to imagination and exaggeration. Based on hearsay and rumours, these scholars have presented much unreliable accounts relating to Banda Singh Bahadur and their somewhat sectarian approach have further caused a loss to the scientific historiography. A vigilant examination of these works is required to present the true side of the story. Syed Muhammad Latif,[4] another prominent 19th century historian, had also painted Banda Singh Bahadur as anti-Muslim, fanatical, and singularly pursuing plundering and massacre with a mission to avenge the death of the father and sons of Guru Gobind Singh.

The British historians of the 19th century and early 20th century have added a significant chapter on the historiography of Banda Singh Bahadur and his times. Prominent among these historians are C.H. Payne, T. Wheeler, James Browne, George Forster, John Malcolm, James Rennel, W.L. McGregor, Mountstuart Elphinstone, E. Thorton, J.D. Cunningham and William Irvine. The British historiography has discussed at length the military expeditions of Banda Singh Bahadur against the Mughal State, civil aspects of his sovereign Sikh State as well as the martyrdom of this great hero.

The British historians had their own political agenda while writing on Banda Singh Bahadur which was essentially developed on the

imperialist ideology of dividing the Indian society based on different religions, regions, and cultures. The member of the British Army in 1805 Lieutenant-Colonel Malcolm remarked about Banda Singh Bahadur that, "every excess that the most wanton barbarity could commit, every cruelty that an unappeased appetite of revenge could suggest, was inflicted upon the miserable inhabitants of the provinces through which they passed".[5] These British historians had justified the establishment of British rule in India by projecting the early 18 century India as a period of total political chiaos, anarchy, lawlessness, and oppressive state system. Still, by highlighting the deeds of Banda Singh Bahadur, the British historiography had defined the political framework in India at that time. However, the much needed debate is required on the hitherto neglected aspects of this great martyr such as his courageous struggle against the oppressive State, his military genius, formation of the first sovereign Sikh State, his agenda of civil agrarian reforms, his heroic act of martyrdom and the legacy of his activities and rule. Thus, the account presented by the British historians on Banda Singh Bahadur is valuable from the historical point of view and these accounts need further elaboration and clarification.

The most distinguished aspect of the Rajasthani documents in comparison to contemporary Mughal accounts is that we do not find in it any ethnic inclination towards any religion. They were not written as having one-sided approach; rather these documents depict the exact picture covering all the prevailing circumstances of those times. Banda Singh Bahadur was not portrayed as the staunch enemy of the Muslims. We also do not find any reference as to demolition of religious places of the Muslims by the Sikhs or particularly by the forces of Banda Singh Bahadur. He had recruited Muslims in his army bestowing full confidence upon them. The Muslims were given freedom to adhere to their own religious doctrines. There were no such restrictions on *nimaz* or *Khutba*. The Muslims were offered due wages. *Akhbar-i-Darbar-i-Mulla* reveals that 5000 Mohamadans enlisted themselves in Banda Singh's army and according to another report this number went on increasing daily.[6] We came across numerous reports that rather show that the large number of Muslims have joined the rank and file of Banda Singh Bahadur against the Mughal tyranny in Punjab.[7] Significantly, the authors of these documents do not address the Sikhs in a disdainful and uncultivated manner and do not use any disparaging language to vilipend them.

The Rajasthani documents, with which we are presently concerned, are basically found in archival form in Rajasthan State Archives, Bikaner. These documents owe their origin to different factors

and have come to us in various forms and categories. The authors of these documents belonged to a rare breed of *Vakils* (representatives), who like the present-day diplomats, represented the Rajput chiefs at the Mughal court. Besides putting up the petitions of their masters, they used to keep a vigil on the events taking place at the royal court. These documents under study predominantly deal with the early eighteenth-century Sikh struggle against the Mughal empire. These sources or documents bring into focus the Rajasthani perspective on the Sikh struggle against the Mughal Empire under the stewardship of Banda Singh Bahadur. Most of these documents focus upon the military exploits of Banda Singh Bahadur and the measures taken by the Mughal authorities to suppress the Sikh uprising. These documents also refer to the parties and politics at the Mughal court and inform us about the events that took place between December 1710 and May 1715. They do not cover the whole period of Banda Singh Bahadur, but it is worth noting that these are the reports that have been filed by the persons who were eyewitness to events. Besides offering contemporary evidence on the leadership and statesmanship of Banda Singh Bahadur, they provide significant insights into the strategy and measures taken by the Mughal authorities to suppress the Sikh struggle. Evidence offered by them is unique as it does not carry the sectarian bias which is the hallmark of contemporary Mughal chronicles. It not only supplements our earlier information but also throws fresh light on some of the lesser-known facets of the history and personality of Banda Singh Bahadur. Alike the Persian chronicles, the authors of these documents also have mistakenly addressed Banda Singh Bahadur as the 'Guru'. Interestingly, in none of the reports the name Banda Singh Bahadur is mentioned, all reports uniformly use the term 'Guru' for him, which indicates that neither the Amber *Vakil* nor any authority at the Mughal court were aware of the abolition of Guruship by Guru Gobind Singh. Majority of the documents begin with an invocation such as '*Sidhi'*, '*Shri Gopal Ji Sahay'* and '*Shri Shri Ram Ji'*. The author resorts to customary salutation to the Maharaja, eulogizes him in superlative terms and then to prove his fidelity and faithfulness pays him his obeisance in a most submissive and humble manner. In many cases, author refers to the date on which earlier report had been submitted. The author also takes a broad variety of issues and places them according to their significance and priority. These issues may deal with military campaigns, revolts, battle-promotions, assignments, confirmation of jagirs, and parties and politics at the Mughal court. All the documents carry date at the end. In case, the issue undertaken by the author requires more details then the dates of events mentioned in it are recorded in a chronological order. Dates have been recorded in

accordance with *Vikrami Samvat* (Lunar Calendar). In this regard the authors were very particular because along with the date, month and year, day of the week also finds mention. Even in some cases, particular place of recording of event and the time of dispatch were also mentioned. The date on which these dispatches were received in Jaipur, has been marked on the reverse side of the last page of the document. Based on our experience, we can say that accuracy of these dates is beyond any doubt.

An examination of Rajasthani documents reveal that Banda Singh Bahadur was not only a military commander but also an astute statesman. To overthrow the Mughal Empire, which had vast resources, was not an easy task. He knew his ability and limitations as well. Exhibiting the qualities of a true statesman, Banda Singh Bahadur worked out a strategy to get together all the forces that were reeling under the atrocities and unjust rule of the Mughals. In the immediate neighborhood of Punjab, Banda Singh Bahadur had entered into an understanding with the hill chiefs who were somewhat dissatisfied with the Mughals. "It was his tactfulness and statesmanship and the demonstration of use of force that Banda Singh Bahadur made the hill chiefs his allies. It provided him easy access to the hills.[8]

The Rajput chieftains serving the Mughals as *mansabdars* used to appoint their *Vakil* (representative) at the Court. The *Vakil* regularly followed the proceedings of the court. These proceeding were recorded, and the edited version of the recorded proceedings was made public. The *Vakil* was required to prepare *Arzdashts* (reports) for his master that contained the relevant part of the proceedings that could be of interest to him. At times, additional information was furnished in these reports which included observation of the *Vakil* on a particular event that was reported to the Mughal emperor.

The reports covering the movements of Banda Singh Bahadur and the Mughal counterattack to suppress the 'Sikh Challenge' were sent by *Vakils* Bhikhari Das, Pancholi Jagjivan Das, Bhandari Khivsi and Chaube Jethmal. The reports show us that from the very beginning Mughal emperor Bahadur Shah desired that Sawai Raja Jai Singh II and Raja Ajit Singh should join the Mughal expedition against the Sikhs.

The largest number of reports were dispatched by Bhikhari Das who kept Sawai Raja Jai Singh II well informed about the events involving the Mughals and the Sikhs. He reported the march of emperor Bahadur Shah to Sadhura to suppress the Guru (Banda Singh Bahadur) who managed to escape from the Mughals, but his disciple Shyam Singh Khatri, the Diwan of Nahan ruler has been arrested and humiliated at the imperial court. The Mughals coerced him into giving an

undertaking that he would produce the Guru (Banda Singh Bahadur). The emperor even threatened to ravage the territory of Nahan ruler. The emperor instructed the Mughal nobles to encamp at Ropar and also both at Delhi and Lahore so that the Guru will not be able to escape towards the hills. The *Vakil* also refers to the petition of the mother of the Raja of Nahan to the emperor requesting him not to ill-treat her son. She promised to deploy her army to locate the Guru and arrest him as soon as weather conditions improve. The Mughals believed that the Raja of Nahan might be hand in glove with Banda Singh Bahadur. The Mughals feared that in case the Raja was not punished, then many more hill-chiefs would join the Sikhs.[9]

The Mughal emperor was so alarmed at the intensity of the 'Sikh-movement' and its spectacular success that he made all possible efforts to mobilize all the resources of the empire to crush Banda Singh Bahadur and his Sikh followers who on the other hand, desperately needed the support of the Rajputs who were acting as the sword-arms of the Mughal Empire. The full-scale rebellion against the Mughal authority by Banda Singh Bahadur gave recognition to the Sikhs as a regional power which proved to be a serious threat to the Mughal dominance.

The Rajput Chiefs of Udaipur, Amber and Jodhpur formed a triple alliance to fight against the Mughals.[10] After a brief tussle, Bahadur Shah had reconciled with the Rajputs, but this fragile situation gave Banda Singh Bahadur an opportunity to change the allegiance of Rajputana in his favour. In such a situation, Banda Singh Bahadur made efforts to create the Sikh-Rajput alliance, which was of great political significance and can yield positive results for the Sikhs. It was beneficial to both the Sikhs and the Rajputs. Banda Singh Bahadur desired to take advantage of the discontentment that was simmering in the Rajputana. Raja Sawai Jai Singh II of Amber and Raja Ajit Singh of Jodhpur were still concerned about the future outcomes of their alliance with Bahadur Shah. After the conquest of Sirhind on May 28, 1770, Banda Singh Bahadur started negotiations[11] with the Rajput Chiefs of Amber and Jodhpur. According to *Akhbar-i-Darbar-i-Mulla*, "It was brought to the notice of the Emperor that Raja Jai Singh and Raja Ajit Singh had got the letters of Guru Banda Singh Bahadur and their replies had been dispatched to him".[12] We can clearly anticipate the intentions of Banda Singh Bahadur that he was eager to have an alliance with the Rajputs so that he could enhance his armory and could give befitting reply to the Mughals.

The Mughal emperor Bahadur Shah was desperate to crush the rising tide of the Sikhs under the leadership of Banda Singh Bahadur

and for this purpose Bahadur Shah took a large force along with him and encamped near Sadhaura.[13] At that time, Banda Singh Bahadur was in the Bari Doab region and was contemplating to take control over Lahore. This had prompted the Mughal emperor to march towards Lahore so that he could save the capital of the Punjab province from the clutches of the Sikhs.[14] Bahadur Shah had sent numerous dispatches towards Raja Sawai Jai Singh II of Amber and Raja Ajit Singh of Jodhpur to join the Mughal forces against the Sikhs. It has been observed that the Rajas pursued the dilly-dallying process in responding to the calls of Mughal emperor. The chief reason behind such an approach of the Rajas was that they were also being approached by Banda Singh Bahadur for an alliance and they were considering both the propositions. The entire communication that took place among the Rajas and the Mughal courts was done through the *Vakils* and it has been noticed that on June 4, 1711 the *Vakil* of Raja Sawai Jai Singh II of Amber was called upon by the Mughal court to explain for the delay that was taking place.[15] This kind of attitude of delaying the negotiations with the Mughals was continued by the Rajput Rajas as they were also in contact on the other side with the Sikhs. This trend proved beneficial for Banda Singh Bahadur to sustain himself against the might of the Mughal forces. Meanwhile, it has been observed that Bahadur Shah died in February 1712 and his mission to subjugate Banda Singh Bahadur was not fulfilled. The Rajasthani records provide immense light upon all these developments and confirmed that Raja Sawai Jai Singh II of Amber and Raja Ajit Singh of Jodhpur returned to their native lands without fulfilling the purpose for which they have been called upon by Bahadur Shah, the Mughal emperor.[16]

It is worth noting that these are the reports that were submitted by the *Vakils* of Jaipur who were either present at the battlefield or were witness to the developments taking at the Mughal courts. These documents present a fine example of communication and information-gathering apparatus through which we can peep into the functioning of the medieval Indian bureaucracy. These documents also offer contemporary evidence on the eighteenth-century Sikh-Rajput and Sikh-Jat relationships.

References

1. Khafi Khan, *Muntakhab-ul-Lubab*, Translated and edited in English by John Dowson, *The History of India by its own Historians: The Muhammadan Period. The Posthumous Papers of the Late Sir H.M. Elliot,* Vol. VII, London, 1877, pp. 413-14.

2. Muhammad Hadi Kamwar Khan, *Tazkirat Salateen Chugtaaien*, ed. Balwant Singh Dhillon, *Baba Banda Singh Bahadur, Persian Sources*, Amritsar, 2011, p. 155.
3. Muhammad Shafi Warid, *Mirrat-Wardatt 1734 A.D.*, ed. Balwant Singh Dhillon, *Baba Banda Singh Bahadur, Persian Sources*, pp. 212-13.
4 S.M. Latif, *History of the Punjab*, Delhi, 1964, pp. 274-75.
5 Lt. Col. Malcolm, *Sketch of the Sikhs,* London, 1812, p. 78.
6 Akhbar-i-Darbar-i-Mualla, 28 August 1711 Saturday, Mughal Court Newsletters relating to the Punjab, A.D. 1710-1718, Eng. Trans. & ed. Bhagat Singh, *The Panjab: Past and Present*, Patiala, Vol. XVIII-II, October 1984, p. 63.
7. *Vakil Reports,* No. 260 dated 9 May 1711*, Jyesth Sudi 3,* V.S.1768, Rajasthan State Archives, Bikaner.
8. Muzaffar Alam, *The Crisis of Empire in Mughal North India*, Delhi, 1986, p. 161.
9. *Vakil Reports Rajasthani,* Nos. 21, 23, 27, 29, Rajasthan State Archives, Bikaner.
10. William Irvine, *Later Mughals,* Vols. 1 & 2, New Delhi, 1991, p. 67.
11. Muzaffar Alam, *The Crisis of Empire in Mughal North India*, p. 161.
12. Akhbar-i-Darbar-i-Mulla, *The Panjab Past and Present*, Punjabi University, Patiala, Vol. XVIII-II, Oct. 1984, p. 27.
13. *Arzdasht Rajasthani* No. 195, Rajasthan State Archives, Bikaner.
14. *Vakil Reports Rajasthani,* No. 46, 48, 311, Rajasthan State Archives, Bikaner.
15. *Vakil Reports Rajasthani,* No. 60, 61, Rajasthan State Archives, Bikaner.
16. *Vakil Reports Rajasthani,* No. 121, Rajasthan State Archives, Bikaner.

Associate Professor and Head,
Department of Punjab Historical Studies,
and
Sri Guru Tegh Bahadur National Integration Chair,
Punjabi University, Patiala

❑❑❑

The Evolvement of *Nath Peeths* of Northern India and Maharaja Man Singh of Marwar

• **Dr. Rajender Kumar**

Rajasthan's life has been full of different religious beliefs. Its culture has been inspired by religious and philosophical beliefs from the Vedic period to the medieval period. That is why, along with the *Puranic* culture, the medieval *Bhakti* movement has a profound influence on the religious life however, many sects of saints also emerged and developed as a result of influence of the *gyan shakha* of *Nirguna* and *Saguna Bhakti* movement in Rajasthan. Consequently, the 'Nath' sect, the follower of *Shaiv-Shakti* tradition gained ground here.[1]

The entry of the Nath sect into Marwar is believed to be from the period of Yogi Jalandharnath. Literary writings suggest that the Yogi performed spiritual meditation on the Kalashanchal mountain of Jalore, but the growth of the Nath sect in Marwar and Northern India is seen in the 19th century during the reign of Maharaja Man Singh. The ruler was highly impressed by the Nath Guru Ayas Devnath and he became a lifetime disciple of the Nath sect. He gave the royal patronage to the sect; consequently, numerous 'Nath Peeths' were established not only in Marwar but also in various places in Northern India. A couplet testifies in this regard–

Jodh Basayo Jodhpur, Braj kino Brajapal
Lucknow Kashi Delhi, Maan Kiyo Nepal

It is clear from this couplet that the sect developed not only in Marwar but also in Lucknow, Kashi, Delhi and Nepal. This is also corroborated by the archival documents of Marwar, which are preserved in the Rajasthan State Archives, Bikaner. The *Sanad Parwana Bahis, Haqiqat Bahis* and *Port Folio Records* of the Marwar contain valuable

information about the sect. Though, the *Sanad Parwana Bahis* furnish lesser evidences than the *Port Folio Record.* The latter records contain enormous evidence about the sect. In this series, a total number of 36 card boards have a collection of correspondence. The *Rukkas, Kharitas* and *Tehrirs* of Marwar state belonging to 18-19th century and beyond are available. The file no. 32 contains correspondence between the saints or religious leaders of the Nath sect and the state of Jodhpur. It possesses hundreds of letters written to the rulers of the Marwar state by 85 the saints of the Nath sect, whose content is very extensive.[2]

This year 1803 proved extremely favorable for the Nath sect when Man singh took the reign of Marwar into his hands. The construction of temples was started in Jodhpur and other towns of the state. Most of the temples were of Jalandharnathji, Santnathji and other rominent saints.[3]

A perusal of collected papers shows that these Nath Gurus had a deep influence on Maharaja and were always ready to serve him. The Rathore ruler not only supported temple construction in Marwar but also in far-flung areas such as Kashi, Haridwar, Vrindavan and Garhwal-Uttarakhand. This is confirmed by the letter dated V.S.1885/1828A.D. written by Ganeshnathji of 'Jogeshwar Peeth' to Maharaja Man Singh, regarding for his blessings for the construction and arrangement of temples of Jalandharnathji and Santnathji in Garhwal, Uttarakhand.[4]

Moreover, it is confirmed from these letters that expenses of the construction of the temple of Nath Saint Devinathji by Maharaja Man Singh were made from the state fund.[5]

The Rathore ruler provided a wide range of facilities not only to the Naths of Marwar but also extended his help for the Nath monasteries outside Marwar. For example, a large number of Naths lived in Jogeshwar Kashi and worshiped Gorakhnathji and Jalandharnathji. Maharaja built *Gorakshtila* (*Gorakhtila*) in the period of Shivnathji, the *Ayas* of Kashi's *Peeth* during 1893-95 A.D.[6]

Numerous Nath *Yogis* used to rest and serve in *Gorakhtila* located in Kashi from far-flung areas of the country. The expenses of these establishments of borne out by the Rathore state. These letters highlight frequent complaints about the chaotic conditions in the *math* and against the servants prosecuting the saints there. Moreover, the state was also appointed a *Potedar* at Kashi to look after the arrangements and followed the instructions of the Marwar ruler and *Jogeshwars* during the time of Ayas Gyananathji.[7] Yogeshwar Ganganathji informed Maharaja through a letter that Motiram had removed him and his disciples from the Gorakh Tila *Math* and the *samadhi* located there was also dug up. Therefore, Maharaja was requested to intervene in the matter and do justice.[8]

A similar case is found in the time of Ayas Ladunathji. An employee named Shambhu used to fight with the workers working in the temple and did not listen to the request of the workers even at the behest of Ayas Ladunathji. As a result, Ladunathji requested to the Maharaja through a letter to take action against him. Some parts of the said letter are quoted as follows-

हमार फतेराज फोजराज रा असरचा बाबत दोय दिन ताई दोढी रो आदमी आयो नै श्रीहजुर सूं विशेष फुरमायो जरे म्हे तो पैहला अरज कराई थी संभु फतेराज रो थको पैले पार जवाब करे वाजबी कैता बाथा पडसी नै काम री लाचारी रे मुदे संभु री करी मंजूर हुसी इण जवाब में म्हाने घात कूं फीटा पड़ावे जदे श्री हजूर सूं साफ फुरमायो निसाफ हुसी वाजबी केता किसे लेखे झोड़ करे जदे इण जाब में उभो रेनो हुवो सूं वाजबी केता अरु बरु हलको उतरतो बोलियो सूं बारे तो इण रो परमाण ही नही सूं किसी किसी लिखा इण हलका बोलण सूं कामदारा रो आबरू काई गयो लोकाक मे तो आबरू म्हारो ही गयो।[9]

It is clear from this that Maharaja Man Singh was always concerned about the safety of these saints and strived for their wellness. The *Barahpanthi* Saints of the Nath *Maths* located outside Marwar were dependent on the grace of Maharaja Man Singh, details of which are available in these letters.

A commendation letter by Ayas Ratinathji in appreciation of Maharaja Man Singh[10]

Source: File no. 36, Port Folio Record, Jodhpur Records, R.S.A. Bikaner

The saints of a *math* at Kashi and those who came here for pilgrimage were given one ser flour by the Marwar state.[11] Besides flour, sometimes special sweet dish (*Malpua*) on special occasions, and order was given to provide ration regularly so the saints can devote their time in worshiping at Kashi.[12]

The Port Folio Records contain the letters written by the *Jogeshwars* of the Nath *Maths* located outside Rajputana provide a thorough insight into the daily life of the saints living there and the system of the *Maths*. Maharaja Man Singh commanded highest popularity among the saints of the *maths* located outside Rajputana. The Nath *maths* of Kashi, Haridwar, and Kurukshetra were fully managed by the Rathore ruler of Jodhpur. This is confirmed from following letter—

महाराजा श्री मानसिंह जी साहबा रे नावे तथा खलीता राज रा आया बांचियां सूं खुशी हुई बादलनाथ अठा रो नाम लेय आयो आप रो पुन छै नाव लारे ही टुकड़ो खावे है अर अतरी रकमा राज मेली सो आई तिण री विगत कड़ा जोड़ी २ सेली नाद सुधी २ दरसणी जोड़ी २ दुसाला २ न. २)) इण माफक आया। राज री भावना श्रीनाथजी पुरसी सं. १८६९ चैत वदी १४[13]

Similarly, many temples and monasteries were also constructed by Maharaja Man Singh from time to time. For example, rupees 1000 were spent by Jogeshwar Hoshiyaranathji of Haridwar for the construction of the *math*, which were to be reimbursed by the Marwar ruler.[16] Shrinathji's temple was being built in the year 1897/1840 AD. Hence, Jogeshwar showed his distraction by writing a letter to Maharaja Man Singh about the need of finance for idol installation and daily expenses.[17]

This shows that Maharaja Man Singh was willing to serve the Naths not only in his native land but also in many remote states outside Marwar for spreading of the Nath sect. Many villages were given in religious grants to these *maths* by the state to meet the expenses of various kinds. For example, in the reign of Maharaja Man Singh, Pirji Jwalanathji-Yogeshwarnathji of Kashi was given a village in grant for their livelihood. For the collection of revenue income of the village Chela Bhaktinath was deputed in V.S. 1899/1842 A.D.[18]

Similarly, 400–500 *Jogeshwars* resided in the *math* of the Aasann Bohor, so they were given a large grant in the form of a village named, Kheda Bada with an income of Rs. 2000 by Maharaja Man Singh for arranging this *math*.[19]

It is also known from these letters that some Nath *maths* used to get a large amount of grant from the rulers, which made them economically prosperous and this collected money was lent to the *Mahajans* on interest. It is confirmed by several letters written by Nath saints to Maharaja Man Singh. It becomes clear from a letter that sixty thousand rupees were given on interest at the rate of eight *ana* per hundred rupees to Saah Juharmal and Multanmal by Nath Pirji and Shri Prathamnathji. Mode of repayment in installments and amount is mentioned in the letter.[20]

It appears that some of the *maths* was indeed very prosperous and large numbers of saints were permanently residing there. It can also inferred from the letters that conspiracies hatched by the saints to obtain financial rights over the *math*'s fund. According to the information received from a letter, during the time of Pirji Hoshiranathji Maharaj of Jogiwada *Math* located in Haridwar, Mehtab Singh and Sukhkaran were trying to grab the funds of the *Math*.[21]

An interesting case related to the *math* of Kashi comes to light when Kushyali Ram, Bhavani Nath and Kashi Nath together prepared fake letters in the name of *Panch* and sought the right to interfere in the internal affairs of the *Math*. It is Confirmed from the quotation of the following letter —

A letter was written by Ayas Ratinathji to Maharaja Man Singh[22]

Source: Port Folio Record, Jodhpur Records, R.S.A. Bikaner

The importance of these letters is not limited only to the information related to the managements of monasteries and Nath saints, but also explains the role of *Nath Jogeshwar* and *Ayas* (Nath chiefs) in the political power exercised emanating from their military strength.

For example, in V.S. 1873/1816 A.D., when the commanders of Ahmednagar and Modasa, Karan Singh and Pratap Singh respectively, requested to Ayas Shri Bhimnathji to send an army against Thakur Gambhir Singh of Eder to take over, but Gambhir Singh ignored Ayas Bhimnathji and set up his *thana* (police station) in Modasa by giving Rupees one lac and twelve thousand to the Vadodara state's authority. Then Pratap Singh sent his men and requested Ayas Bhimnath to extend military help with 4-5 thousand soldiers in removing the police station established at Modasa by Gambhir Singh and establish authority over there.

As a result, Bhimnathji intervened in this issue by promising help to Pratap Singh and started efforts at a high level to get Modasa back. Pratap Singh knew that Ayas Bhimnathji had a great influence over Maharaja Man Singh. On advice of Bhimanathji, the Rathore ruler would give military help to settle the matter.[23] This political event shows the influence of the saint *Ayas* of Nath sect over Marwar politics subtly in this perspective by this letter.

It is clear from the above description that if the reign of Maharaja Man Singh is called the golden period of evolvement of Nath sect, then there will be no exaggeration. During the reign of Maharaja Man Singh, the Nath sect was touching the highest peak of its influence. Not only in the state of Marwar, but in many pilgrimage sites of India like Kashi, Haridwar, Kurukshetra, Vrindavan, and Garhwal-Uttarakhand, the condition of the saints of the Nath sect and their *maths* were better than before, that is, the development of the this sect can be seen in this period.

References

1. The Nath sect was a worshiper of *Shiva*, but Lord *Rama* was also revered to the *Nathpanthi yogis*, he was adorable to them. In the *Nath Panth*, the name of Lord *Rama* was not just given importance, but two separate cults were established in the name of *Rama* and his devotee *Hanuman*, namely 'Ramapanth' and 'Dhvajapanth' respectively. The present Gorakhnath Temple of Guru Gorakhnath belongs to the 'Rampanth' of the Nath sect and its deity is *Vishnu*. In fact, *Vishnu* is also a form of *Shiva* - Seminar Proceeding, *Nath Sampraday aur Bhakti Aandolan*, Gorakhpur, October 2010, p. 2

2. Girija Shankar Sharma, *Sources on Socio and Economic History of Rajasthan*, Vikas Prakashan, Bikaner, 2005, p. 219
3. *Haqiqat Bahi*, no. 9, V.S. 1861–70 / 1804–1813 A.D., p. 4f-2; *Sanad Parwana Bahi*, no. 62, V.S. 1867/1810 A.D., *miti shravan vadi* 11, Jodhpur Records, Rajasthan State Archives, Bikaner
4. File no. 32, Letter no. 32, Dastari Records, Port Folio Records, Jodhpur Records
5. *Letter of Ayas Amritnathji*, File no. 32/31/1, Port Folio Records, Jodhpur Records
6. *Shivnathji's letter to Maharaja Man Singh*, File no. 32/5/1, V.S. 1893-98/1836-41 A.D., Port Folio Records
7. *Gyannathji's letter from Kashi to Maharaja Man Singh*, File No. 32, Letter no. 2, *miti ashadhi vadi* 11, V. 1895/1838 A.D., File no. 32, Letter no.-3, *miti posh vadi* 1, V.S. 1898/1841 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records
8. File No. 32, Letter no. 33, Port Folio Records, Jodhpur Records
9. File No. 32/2, Letter no. 1, *miti posh sudi* 2, V.S. 1842/1785 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records
10. *Letter of Ayas Ratinathji*, File no. 32/27/3, Letter no. 34, Port Folio Records, Jodhpur Records
11. File no. 32, Letter no. 34, Port Folio Records, Jodhpur Records
12. *Letters of Bhawaninathji and Indranathji*, File no. 32/28, Letter no. 1, Port Folio Records, Jodhpur Records
13. *Letter of Peerji Ichchanathji*, File no. 32/35, Letter no. 1, *miti chaitra vadi* 14, V.S. 1869/1812 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records
14. *Papers of Pirji Raghunathji etc.*, File no. 32/30/3, *miti shravan sudi* 15, V.S. 1874/1817 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records
15. File no. 32, Letter no. 3, *miti posh vadi* 1, V.S. 1898/1841 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records
16. *Letter of Jogeshwar Hoshiyarnathji from Haridwar*, V.S. 1886-90, File no. 32/5, *miti jyeshtha sudi* 9, V.S. 1886/1829 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records
17. File no. 32, Letter no. 4, *miti margashirsha sudi* 12, V.S. 1897/1840 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records.
18. *Pirji Jwalanathji Yogeshwar ji's Letter to Maharaja Man Singh*, File no. 32/7, Letter no. 5, *miti vaishakh sudi* 2, V.S. 1899/1842 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records.

19. *Letter of Pirji Shri Meghnathji's to Maharaja Man Singh*, File no. 32/62/4, Letter no. 1, V.S. 1894/1837 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records.

20. *Letter of Pirji Prathamnathji to Maharaja Man Singh*, File no. 32/8, Letter no. 2, Port Folio Records, Jodhpur Records.

21. File 32/4, Letter no. 3, Port Folio Records, Jodhpur Records.

22. *Letter of Ayas Ratinathji to Maharaja Man Singh*, File no. 32/27 (3), Letter no. 1, Port Folio Records, Jodhpur Records.

23. *Letter of Karan Singh Pratapsingh in the name of Ayas Bhimnathji, Pratap Singh Re Khola Babat*, File no. 32, Letter no. 7, *miti phalgun sudi* 9, V.S. 1873/1816 A.D., Port Folio Records, Jodhpur Records.

Dr. Rajender Kumar

Bikaner

❑❑❑

Oral History, Women and Partition of Punjab

Gurpreet Singh Harika • Dr. Daljit Singh

"Lying is done with words, and also with silence".

—Adrienne Rich.

In 1947, India ushered into a new era of complete freedom from the British clutches, but this independence came at a ridiculously huge cost in the shape of partition of the country on religious lines. The country was divided into Hindu dominated India and Muslim dominated Pakistan due to numerous social, political, cultural, and ideological differences. There must be some other factors of "class compulsions, the politics of power (both in the provinces and at the centre), and the pressure on the British to arrive at a negotiated settlement"[1] that may have added to this decision of the division of the country. The province of Punjab was severely affected at the time of partition due to the mass violence that erupted in the name of 'ethnic cleansing' when the population started shifting from 'unsafe and vulnerable places to safer havens'.[2] Almost every section of the society in Punjab was badly influenced with the decision of the Partition but the extreme pain and misery befell upon the women who were treated, in the name of nationalism, like a territory to be won in egocentric communal strife. It was emphasized by noted feminist historian Urvashi Butalia that "nearly seventy-five thousand women are said to have been abducted and raped"[3] during this turmoil.

The vague conceptions of 'honour' and 'immaculacy' were connected with the women's bodies among the communities and the families that instigated the caprice among masses in which the hurting of women was perceived as the symbolic violation of ethnic claims over the national territories on both sides of the border. It has been observed that the plight of women and ordinary folks was ignored and completely over-

shadowed by the constitutional advancements and political achievements of big names like Gandhi, Jinnah and Nehru in official records and historical accounts pertaining to the partition. It is quite true that "very few scholars have studied the role of this essentially constitutive ethnic and gendered violence in colonial and postcolonial history"[4] and the names like Ritu Menon, Kamla Bhasin, Urvashi Butalia came to the forefront when we consider the feminist study of the partition. One of the chief exponents of feminist studies, Daphne Patai categorically remarked about the significance of women studies in these words:

> " Is it not feminism itself that teaches us how difficult and also dangerous it is to try to keep dirty linen within the household precisely because the boundary between private and public is so porous?....Where did things go wrong? And why? Answering these questions is hard enough; it is even more difficult to suggest solutions….it matters today that attention be paid to the harm done to contemporary feminism by the ideological policing and intolerance."[5]

It is noticeable that the history, in previous times, was mostly written by men giving privileged position to men as history makers whereas completely ignoring the feminine contribution to history. The women have been portrayed in history as "objects of study, rather than as subjects."The official history fails to perceive "the myths about shame and honour, blood and belonging…For that one must turn to women histories which interrogate not only the history we know, but how we know it."[6]The horror and brutality of the atrocities inflicted upon women can better be understood by getting into the stories narrated by the partition survivors in the shape of oral histories.

The oral history was introduced as the new technique for historical documentation by the historian and journalist Joseph Allan Nevins who in 1948 founded the Columbia Center for Oral History in the Columbia University, United States. Louis M. Starr (1917-1980 A.D.) who worked with Allan Nevins and subsequently succeeded him in 1958 as Director of the Oral History Project in the Columbia University has defined Oral History in the *Encyclopedia of Library and Information Science*, United States, as the "Primary source material obtained by recording the spoken words–generally by means of planned tape recorded interviews of persons deemed to harbor hitherto available information worth preserving, it is more than a tool and less than a discipline."[7]The essence of oral history has been very beautifully explained by Alessandro Portelli in these words:

> "the task and theme of oral history–an art dealing with the individual in social and historical context–is to explore this

> distance and this bond [between 'history' and personal experience], to search out the memories in the private, enclosed space of houses and – without violating that space, without cracking the uniqueness of each spore with an arrogant need to scrutinize – to connect them with 'history' – and in turn force history to listen to them."[8]

The oral histories related to the partition of Punjab give us an opportunity to deeply analyze the 'human dimensions' of this phase of the Indian freedom movement which nearly converted the rich province of Punjab into a 'graveyard of destruction'.[9] The oral histories fetch such experiences and stances that would otherwise remain 'hidden from history'.[10]The communal confrontations are usually devised by men and it is also true that the greatest impact of such communal violence is always borne by the women whether it is in the form of some sort of sexual assault or the loss of family. Women never demand such kind of barbarism in the name of religion and always have desire to avoid it.[11]The feminist historians Ritu Menon and Kamla Bhasin in their book *Borders and Boundaries* presented an oral history interview of Durga Rani who narrated the incidents of communal violence upon women during partition in these words:

> "The Muslims used to announce that they would take away our daughters… Ten or twenty of them would enter, tie up the men folk and take the women. We saw many who had been raped and disfigured, their faces and breasts scarred, and then abandoned. They had tooth-marks all over them. Their families said, 'How can we keep them now? Better that they are dead.' Their character was now spoilt. One had been raped by ten or more men…her father burnt her, refused to take her back".[12]

There were many more such instances where the men killed their own women because the honour and dignity of the women was linked to entire race and nation. The incidence of such 'honour-killings' was provided by Urvashi Butalia in her book *The Other Side of Silence* in an interview conducted with Mangal Singh in which he compared such 'honour-killings' with martyrdom in these words:

> "After leaving home we had to cross the surrounding boundary of water. And we were many family members, several women and children who would not have been able to cross the water… So, we killed…they became martyrs…seventeen of our family members…our hearts were heavy with grief for them… So we travelled laden with sorrow, not a paisa to call

> our own, not a bite of food to eat… but we had to leave. Had we not done so, we would have been killed, the times were such…"[13]

In fact, even before getting independence from the British, the communal violence started much earlier in March 1947. One of such incident of violence erupted in Rawalpindi district where almost ninety women of the small Sikh village of Thoa Khalsa drowned themselves by jumping into a well to avoid coming into the hands of adversaries.[14] The fear of abduction and rape of women and inscribing of the religious symbols on their bodies was the chief reason that prompted 'honour-killings' on such a large scale. Urvashi Butalia categorically remarked that such instances were common in almost every village and narrated another such incident of Gurmeet Singh of village Thamali, in Rawalpindi district of Punjab as follows:

> "On the night of the 12th of March we left at 4 a.m., in the early hours of the morning. Our own family, all the people, we collected them in the gurudwara and got some men to guard them. We gave them orders to kill all the young girls, and as for the gurudwara, to pour oil on it and set it on fire….we decided this among ourselves. We felt totally helpless…first we killed all the young girls with our own hands; kerosene was poured over them inside gurudwara and the place was set on fire…women and children, where could they go?"[15]

The concept of 'honour killings' has shown its tentacles during the partition of Punjab due to the fear of rape or forcible conversion to other religion, but we cannot say that the tendency of 'honour-killings' has completely vanished after this holocaust. Even today, the 'honour killings' are quite prevalent in certain communities in India as well as in Pakistan. In Sindh (southeast province of Pakistan), in the name of honour-killings, a *kari*(literally a 'black woman') and a *karo* (literally a 'black man') are hacked to pieces by axe often in connivance with the locales. The Special Task Force for Sindh of the non-governmental Human Rights Commission of Pakistan reported 196 such cases of *karo-kari* killings in 1998.[16] The distress of women due to such kind of *karo-kari* killings has been very emphatically shown in these lines:

> "What is there to my body? ... Is it studded with diamonds or pearls?... My father's gaze guards me all the time, stern, angry…. Then, why do they make me labour in the fields? We, the women, work in the fields all day long…. not knowing who may cast a look upon us. We stand accused and condemned as *kari* and murdered."[17]

The shameful acts of violence upon women during the partition of Punjab can be attributed to such times when "communal passions swept the whole Punjabi community clean of all decency, morality, and sense of human values".[18]It has been observed that a very large number of women were being abducted during the partition. A mere glimpse of such abductions can be taken from the report of Sardar Sampuran Singh, Deputy High Commissioner of India in Pakistan that he sent to Sardar Patel in which he said that, "the story of the abduction of girls and women is very painful, in some cases they have been forcible taken away in the presence of their helpless relatives. The Sargodha convoy was attacked near Lyallpur and ninety girls were abducted."[19]

The collective mission to recover the abducted women was initiated by both the governments of India and Pakistan in September 1947 and the Prime Ministers of both the countries issued the joint statement as follows:

> "Both the Central Governments and the Governments of East and West Punjab wish to make it clear that forced conversions and marriages will not be recognized. Further, that women and girls who have been abducted must be restored to their families, and every effort must be made by the government and their officers concerned to trace and recover such women and girls".[20]

The process of recovery and rehabilitation remained active for almost nine years after the partition. Initially, the recovery was good but in later years it slowed down. It was estimated that nearly 22,000 Muslim women were recovered from India in comparison to about 8,000 recovered Hindu and Sikh women from Pakistan side.[21] The Ordinance related to Abducted Persons Recovery and Restoration was passed on January 31, 1949 that later was converted into Abducted Persons (Recover and Restoration) Act, 1949. It was declared by the government of India that the 'conversion' that took place after March 1st 1947 would be treated as forced and the concerned women would be sent to their respective Dominions.[22] Under this provision, the abducted women would have to be sent back whether she wanted to go back or not. There were certain instances when the abducted women wanted to stay with their abductors as they feared that their families would not accept them. One such case was reported in the newspaper where the father of abducted girl from Pakistan wanted to bring back her daughter but 'the woman did not wish to leave her husband.'[23]This problem of not accepting the abducted girls back into the family fold aggravated so

much that Jawaharlal Nehru made public statement on the issue and said that, "I am told that sometimes there is unwillingness on the part of their relatives to accept those girls and women in their homes. This is the most objectionable and wrong attitude to take up. These girls and women require our tender and loving care, and their relatives should be proud to take them back and give them every help".[24]Anis Kidwai, an activist and a politician from the state of Uttar Pradesh had worked in relief and rehabilitation camps at Delhi along with Sushila Nayyar and was at the fore-front in the recovery of such abducted girls and elderly women. She had narrated one such incident of finding an abducted woman in her book *Azadi ki Chaon Mein* (Hindi) in the following words:

> "Among the refugees who were leaving [from Delhi] there was a young man who had been married only a year and a half and whose young wife and two-month old child had been lost. One day, someone told him that they had heard that she was in the custody of a Jat in Bhogal (an area near Delhi)… The young man told me that his wife had even asked for his photo which he had sent her… Mithan, her abductor, made her work in the fields. One day Sushila Nayyar had come to the camp. She said, come on, I'll come with you, where are these fields? Night is falling as we reached Okhla… we met many other women but not the one we were seeking… Ausaf, the husband, was calling out his wife's name, Jaan bi, Jaan bi, all the time… but there was no sign of the girl… and at nine we came back, dejected and unsuccessful".[25]

Later, it was found that the woman (Jaan bi) was locked up in some house by her abductor who also fled towards Uttar Pradesh to avoid arrest. However, Jaan bi, the abducted woman managed to release herself and came back to her husband who also accepted her back in his family fold.[26]It has been observed that many women protested the forcible recovery and evacuation as they did not want to go back to their families. There were numerous reasons behind such an attitude of those abducted women. The most prominent reason was that initially they stayed with their abductors because at that moment, they simply have no idea about their lost families and later, it was found in certain cases that some of them were kept in good manner by their abductors, in fact they married them and they started living a stable life afterwards. Bibi Jangir Kaur who lived in *Landran* (now in Rupnagar district, Punjab) narrated that she was a Muslim, and her previous name was Pakeez. She refused to go back to Pakistan because she was living a

contended life with the person who abducted her and later married her.[27] The noted historian Kirpal Singh had provided in his work the narrations of such women who argued with the District Liaison Officer, Gujranwala in these words:

> "How can I believe that your military strength of two sepoys could safely take me across to India when a hundred sepoys had failed to protect us and our people who were massacred. Another said, I have lost my husband and have now gone in for another. You want me to go to India where I have got nobody and of course, you do not expect me to change husbands every day. The third one said why are you particular to take me to India? What is left in me now religion or chastity?".[28]

A different kind of situation erupted when during the rehabilitation process; it has been found that many abducted young women were pregnant. At some instances, such expecting women were told to abort the child and in certain cases, women refused to leave behind their new-borns. This kind of situation made the governments on both sides to rethink and as such the governments of India and Pakistan made an amendment in 1954 that the abducted women could not be sent forcefully without their consent to other country. It was estimated that approximately 83,000 women were forcefully taken away from their families during partition turmoil.[29] Nearly 20,728 abducted Muslims and 9,032 non-Muslims were recovered and restored from India and Pakistan till 15th August 1955.[30]

To sum up, it can be said that the official records related to partition of Punjab cannot truly justify with the deep agony and pain that the innocent women had faced at that time, as it could be, otherwise, quiet possible to come closer to their experiences with the use of oral histories. Aanchal Malhotra said that, "there is still so much we do not know about Partition… its heaviness continues to weigh down – sometimes only subconsciously – both those who lived through it personally as well as those who have inherited fragmented stories and memories of it".[31] Oral histories has the tendency to "sensualize the past"[32] by taking historians outside the text and into the lives of people. The knowledge of the past helps us "to refute myths, half-truths, fabrications and faulty perspectives and validates the story of the lived experiences."[33] The oral histories give a new meaning to the past that often is missing in other historical records. The oral histories

have the potential to increase social awareness and can become an effective tool in bringing positive changes to the society at large. The silent zone pertaining to the forcible abductions during the partition of Punjab and the fear among the families can see the vent through the recourse of oral histories. Many untold aspects can come to forefront. The oral histories can rightly be said as to bring forward the psychosocial trauma of gender-based violence during the partition of Punjab.

References

1. Ritu Menon and Kamla Bhasin, *Borders & Boundaries: Women in India's Partition,* Kali, New Delhi, 1998, p. 6.
2. Ishtiaq Ahmed, *Punjab Bloodied, Partitioned and Cleansed: Unravelling the 1947 Tragedy through Secret British Reports and First-Person Accounts*, New Delhi, 2012 (digital edition), p. 160.
3. Urvashi Butalia, *The Other Side of Silence: Voices from the Partition of India,* Kali, New Delhi, 1998, p. 3.
4. Kavita Daiya, *Violent Belongings: Partition, Gender, and National Culture in Postcolonial India,* USA, 2008, p. 9.
5. Daphne Patai and Noretta Koertge, *Professing Feminism: Cautionary Tales from the Strange World of Women's Studies,* New York, 1994, p. ix.
6. Ritu Menon and Kamla Bhasin, *Borders and Boundaries :* op. cit., pp.11, 21.
7. Rock Feller, *Illustrated Encyclopaedia,* Vol III, New York, May 1977.
8. N. Mackay, *Curating Oral Histories: From Interview to Archive,* California, 2007, p. 20.
9. Maulana Abul Kalam Azad, *India Wins Freedom,* Madras, 1988, p. 228.
10. Robert Perks, Alistair Thomson, *The Oral History Reader,* Routledge, USA, 1998, p. ix.
11. Gabriele Dietrich, *Some reflections on the Women's Movement in India: Religion, Ecology, Development,* Delhi, 1992, pp. 20-21.
12. Ritu Menon and Kamla Bhasin, *Borders & Boundaries :* op. cit., p. 32.
13. Urvashi Butalia, *The Other Side of Silence :* op. cit., pp. 194-95.

14. *The Statesman,* April 15, 1947.
15. Urvashi Butalia, *The Other Side of Silence:* op. cit., p. 205.
16. Doga Demir, 'Honour killings of girls and women in Pakistan', in *Amnesty International,* September 1999, pp. 3-4.
17. Attiya Dawood, 'Karo kari: A Question of Honour, but Whose Honour?', in *Feminista 2(3/4),* April 1999. See also, Rabia Ali and ShirkatGah, *The Dark Side of 'Honour': Women victims in Pakistan,* Lahore, 2001, p. 7.
18. Satya M. Rai, *Partition of the Punjab: A Study of its effects on the Politics and Administration of the Punjab (I) 1947-56,* Asia Publishing House, Bombay, 1965, p. 257.
19. Private Papers Sardar Patel, *Disturbances in East Punjab and Lahore,* File No. 9/3/4 II-L-42-4, 1947, National Archives of India, New Delhi.
20. U. Bhaskar Rao, *The Story of Rehabilitation,* Delhi, Department of Rehabilitation, Delhi, 1967, p. 30.
21. Gurpreet Singh Harika and Daljit Singh, 'Sorrow of Women during Partition of Punjab: An Historical Analysis of Ice-Candy-Man', in *The Mirror,* Cinnamara Publications, Assam, Vol.6-2019, p. 97.
22. Anwesha Sengupta, 'Looking Back at Partition and Women: A Factsheet', *South Asian Journal of Peacebuilding,* Vol.4,No. 1, 2012.
23. *Dawn,* 12 May 1948.
24. *Hindustan Times,* January 17, 1948.
25. Anis Kidwai, *Azadi ki Chaon Mein* (Hindi), National Book Trust, Delhi, 1990, p. 131.
26. Ibid., pp. 131-32.
27. Jangir Kaur alias Pakeez, Interview, *File P.H.S.O.R.L. dated 13 July 2007*, Department of Punjab Historical Studies, Punjabi University, Patiala.
28. Kirpal Singh, *The Partition of the Punjab,* Publications Bureau, Punjabi University, Patiala, 1972, p. 175.
29. Ritu Menon, Kamla Bhasin, *Borders and Boundaries :* op. cit., p. 70. Urvashi Butalia, cites75,000 abductions in *The Other Side of Silence,* p.3.
30. Pippa Virdee, 'Negotiating the Past: Journey through Muslim Women's Experience of Partition and Resettlement in Pakistan' in *Cultural and Social History,* Vol.6, Issue 4, 2009, p.473.

31. Aanchal Malhotra, *Remnants of Partition: 21 Objects from a Continent Divided,* London, 2019, p. xvii.
32. Marta Kurlowska-Budzan, Krzysztof Zamorski(eds.), *Oral History: The Challenges of Dialogue,* Amsterdam, 2009, p. ix.
33. Valerie J. Janesick, *Oral History for the Qualitative Researcher: Choreographing the Story,* New York, 2010, p.14.

Gurpreet Singh Harika
Department of History,
University College Moonak,
Sangrur 148 033, India.

Dr. Daljit Singh
Department of Punjab Historical Studies,
Punjabi University,
Patiala (Punjab)

❑❑❑

Risk Taking Ability and Mental Health between Government & Private School Students : A Comparative Analysis

• **Deepak Singh Bisht**

The present study was being undertaken to analyze the Risk taking ability and mental health between Government & Private School (boys) students of Champawat district, Uttarakhand. To accomplish the motive of this study, Sixty (N=60) student (30 boys students from Government and 30 boys students from Private school) were selected as samples. The age group of selected samples were 14 to 19 years (teenagers).

Risk taking questionnaire developed and standardized by V Sinha and P N Arora and Mental health battery developed and standardized by A.K Singh and A.S Gupta were administered on the samples, for this study. Descriptive statistics like mean, standard deviation and 't' test was applied with the help of SPSS 24.0 statistical package, and the significance level was fixed at 0.05 level.

From the findings of data, the result had exhibited a significant dissimilarity, and revealed that:

1. Private School students have better mental health than Government School students, and,
2. Government School students are superior in risk taking ability than Private School students.

Mental health and risk taking ability are two aspects which are very much inter-related. In terms in which we are living it has become even more impenitent to understand and together work for it. Mental health should be an issue of concern if we have to reduce risk taking attitude in children especially teenagers. A lot of youngsters suffers

from anxiety disorders due to various expectations which can lead to numerous risk taking Ability to the extent of harming themselves physically or even emotionally.

Mental health is generally a condition associated with emotional disorder; hence the need of the hour is to make our children emotionally strong, to make them understand that every cloud has a silver lining, to make them understand life is not always bed of roses sometimes we have to collect the thorns also. Talk to the person in whom you observe mood swings, anxiety, sadness or irritability, social withdrawal, emotional instability and even if you notice dramatic change in one's eating or sleeping patterns, for this may be due to mental health of person, he or she needs your help.

In today's world the most important factor that is affecting our society is mental health. which is just an important aspect for everyone. Developing mental health gives us the motivation and tenacity to be make sure that we complete the set goals. If we have good mental health then failures will not deter them but instead provide a platform to strengthen their resolve. Such a display of mental health can be observed in sports persons, scientists, and teachers or lecturers. Therefore, it is concluded that sound mental health holds an irreplaceable place in the mind and life of everyone. Mental health takes on from "setbacks to Success".

Mental health is a "state of well-being in which the individual realize shisor her own abilities, can cope with the normal stress of life, can work productively and fruitfully, and is able to make contribution to his or her community".[1]

For any type of education, healthy mind is the primary need. Good mental health plays a major part in learning and understanding the dimensions of education and life. Good mental health not only enhance our learning process but also helps in all round development of the human body. It is a state of sound adaptation with a subjective state of well-being, just for living and the feelings one is exercising his aptitude and capabilities.[2]

Risk taking Ability is also influence mental health. It is at the peak in adolescence and early adulthood *i.e.* 13 years to 17 years. Kids get into these false habits by following cinema or other digital series, false peer pressure, getting in false company of social media friends or other strangers.

Risk taking majorly causes substance abuse, hyper sexual activities, performing physical stunts, rash or reckless driving, sharing

unnecessary details on social media, bullying, deliberately self-harm, gambling, cheating, pornography or piracy etc. Risk taking is not a new word for us. We apply this word in many places to gain fruitful outcome. In order to achieve a desired goal or aim, if someone puts his or her life in danger or risk, can be called a risk taker. It also meant, the term 'risk' to the extent at which the decision maker is willing to expose himself to possible failure in the pursuit of a desirable goal.[3]

All in all when there is a challenge in achieving a goal or success which is not sure or there is a possibility of failure it is known as risk taking or in other words it is a habit of getting in activities where one is exposed to failure in search of achieving a better position or being successful.[4] In another definition when a person involves himself to a condition where he is pretty much aware of the failure or success that he can achieve is known as risk taking.[5]

Objective of the study: This research study was conducted with the following objectives-

a. To compare the risk taking ability between the government and private school students.

b. To compare the mental health between the government and private school students.

Methodology

Subjects: To obtain appropriate data, a sample of 60 school students (30 boys from govt. & 30 boys from private school) studying in Govt. and a private school of Champawat district (UK), were elected, by applying the random sampling (technique) for the research. The samples age were ranged from 14-19 years (teenagers) who took part in the study.

Selection of Variables:

- **Independent variable:** Government and private school students (boys).
- **Dependent variables:** Risk taking ability and mental health.

Assessment Tools: The following test items were selected to measure the psychological variables.

1. Risk Taking Questionnaire (RTQ); V. Sinha and P. N. Arora, 1982[6]
2. Mental Health Battery (MHB; A.K. Singh and A.S. Gupta, 2017)[7]

Procedure: before collecting the data, the subjects were assembled at one place and informed about the motive of the study and procedure of the research study. The requisite consent and approval was obtained from all the participants. The prescribed tests were explained to the subjects so that they would be the familiar with the tests and procedure. The study was administered and carried almost 60 minutes to accomplish.

Statistical analysis: In order to find the statistical results, SPSS version 24.0 was employed. Mean and SD (standard deviation) was computed as descriptive statistics. Independent 't' test was applied to reveal the mean differentiation of risk taking ability and mental health between the groups (Govt. and private school students), and for testing the hypothesis, the significance level was fixed, at 0.05 level.

Results and Discussion

The descriptive investigation of the data shows, mean and SD, mean differences and 't' value on the risk taking ability and mental health between both groups (Government and private school students). The results of the study are displayed in the below mentioned tables & graphs.

$\mathbf{H_{o1}}$: There would be no significant difference between government and private school students of Champawat district on risk taking ability.

Table-1 : Descriptive statistics of risk taking ability between the boys of government and private school students

S.No.	Variable	Group (School Type)	N	Mean Scores	Standard Deviation	Mean Difference	T-value	P-value
1.	Risk Taking Ability	Govt.	30	164.10	13.77	17.533	3.615	0.001
		Private	30	146.57	22.71			

* The Table value of **'t'** at 0.05 level of confidence for 58(df)=2.000.

Fig.-1 : Graphical representation of comparative Mean and SD values of risk taking abilitybetween the boys of government and private school students

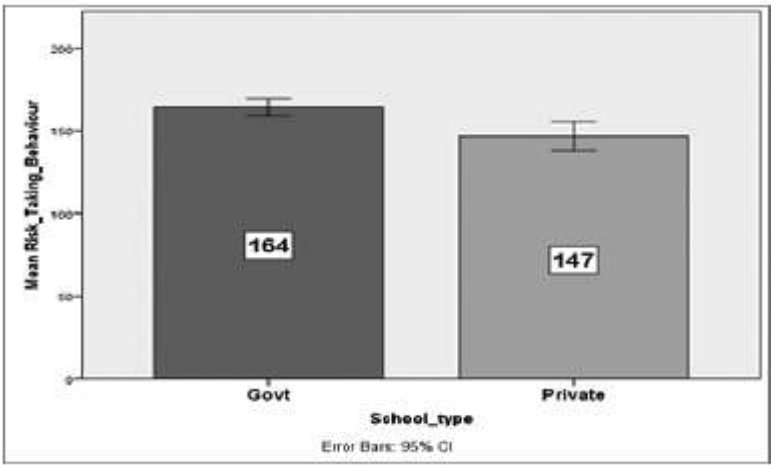

It appears from the **Table and Fig. no-1** that the mean score of Government school students in their risk taking ability is 164.10, which is higher than private school students mean score i.e. 146.57. The computed value of 't' is greater than the table value i.e. 3.615 >2.000. Thus, the null hypothesis is refused in support of the alternative hypothesis, at the 0.05 level of significance.

Therefore, it is confirmed that there is a statistically significant dissimilarity exists between boys of government and private school students on risk taking ability. Government school students are significantly superior in risk taking ability as compared to private school students.

$H_{o2:}$There would be no significant difference between government and private school students of Champawat district on mental health.

Table-2 : Descriptive statistics of mental health betweenthe boys of government and private school students

S.No.	Variable	Group (School Type)	N	Mean Scores	Standard Deviation	Mean Difference	T-value	P-value
2.	Mental Health	Govt.	30	76.83	10.06	-5.067	-2.254	0.028
		Private	30	81.90	7.11			

* The Table value of **'t'** at 0.05 level of confidence for 58(df)=2.000.

Fig.-2 : Graphical representation of comparative Mean and SD values of mental healthbetweenthe boys of government and private school students

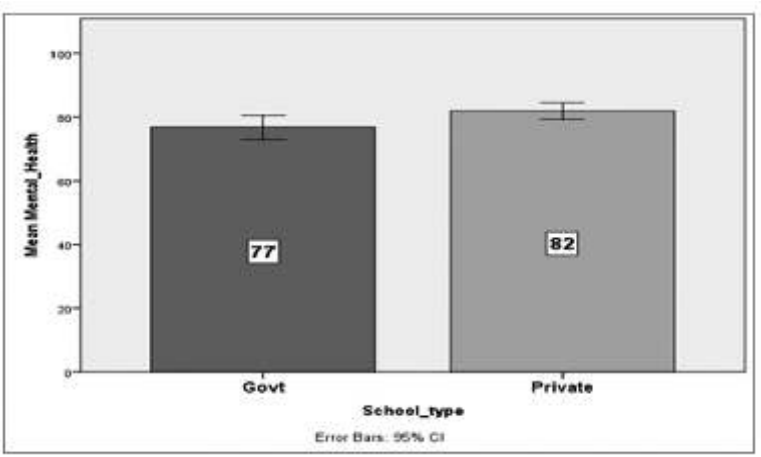

It appears from the **Table and Fig. no-2** that the mean score of students of Private school in their mental health is 81.90, which is higher than students of government school mean score i.e. 76.83. The computed value of 't' is greater than the table value i.e. -2.254 > 2.000. Thus, the null hypothesis is refused in support of the alternative hypothesis, at the 0.05 (level of significance).

Therefore, it is confirmed that statistically significant dissimilarity exists between the boys of government and private school students on

mental health. Private school students have a high level of mental health than government. school students.

Conclusion

On the basis of the result of research, and within limitation it is observed that there is statistically significant differences exists between government and private school students (boys) on risk taking ability and mental health of Champawat district of Uttarakhand.

The psychological ability of government school students appear to be dominant (preferably risk takers) than private school students (boys) on risk taking ability. On the contrary, private school students were found stronger and healthier than the government. school students (boys) as per mental health.

Types of school, personality, nutrition, home and school environment, social interactions, daily lifestyle and socio-economic status etc. are the factors that could influence individuals risk taking ability (behavior) and mental health and investigator recommend that, effective teaching and learning, education system, physical activities, yoga sessions, qualified teachers and counselling sessions can be helpful to overcome from these annoying factors. This study also suggests that involvement of the parent can play a key role in positive child mental health for both the groups. Mental health and risk taking ability walks simultaneously at this stage i.e. teenage and develops physical and psychological terms. Government policies also can play a significant role to motivate our children.

References

1. World Health Organization, Mental Health Atlas, *World Health Organization,* Geneva, 2011.
2. J. P. Chaplin, *Dictionary of Psychology*, Vikas Publishing House, New Delhi, 1970.
3. J. Daryl. Bem, M.A. Wallach and N. Kogan, 'Group Decision Making Under Risk of Adversive Consequences', *J. Pers. Soc Psychol*, 1965, 1 (5), pp. 453-460.
4. T. Matthew, *Risk Taking,* Retrieved February 11, 2015, from http://ptsd.about.com.
5. N.P. Chaubey, *Motivational Dimensions of Rural Development: A Study of Risk-Taking, Risk-Avoidance and Fear of Failure in Villagers*, Chaitanya Publishing House, Allahabad, 1974, p. 15.

6. V. Sinha and P. N. Arora, Risk *Taking Questionnaire (RTQ),* National Psychological Corporation, Agra, 1982.

7. A.K. Singh and A.S. Gupta, *Manual for Mental Health Battery (MHB),* National Psychology Corporation, Agra, 1971.

Deepak Singh Bisht
Research Scholar,
Department of Physical Education,
Banasthali Vidyapith,
Rajasthan.

❑❑❑

Review of Literature for a study on Marine Fishers in India

PRADIP ROY • DR. CHETAN CHAUDHARI

Introduction.

This paper is a compilation of secondary research available in the field of Marine Fishers in India. This study has been carried out with an in-depth brain storming on relevant available research papers/ official Government document and book review to depict further way ahead to restore better socio-economic-psychological status among artisanal subsistence marine fishers in India. Satisfied lifestyle improves psychology; good psychological state instincts belongingness and bonding. Hence, study on way ahead for desired social security among neglected marine fishing community is a call for overall development of nation. In order to understand the state of art literature related with study on marine fisheries, the review article aims to synthesize existing work on marine fisheries in India.

Exhibit No. 1 : Summary of HR Practices in Marine Fisheries in India.

A Theory, Author & Year	Title	Construct	Major Contribution
The paper "scrutinized the cultural and socio-economic profile, factors and challenges among fisher folks from Puducherry. Karuppusamy and Karthikeyan *et al* (2017)[1].	A Study on Socio-economic and Cultural Profile of Fishers in Puducherry Region, India.	The study opined that fishers' living conditions throughout India remain unchanged even fisheries sectors has played key role for increase in GDP over the past two decades.	The local administration must take strong steps to elevate their standard of life by giving better education, raising consciousness and creating greater responsibility to society through various welfare /awareness programs and schemes dealing with finances; all to resort issues against average socio-economic status of marine fishers.

Devi Nongmaithem and Ngangbam (2014)[2]: Fishers' income is less and continues in circulation within the vicious poverty circle.	The researchers in their study named "Socio-economic conditions and cultural profile of the fishers in India- a review".	Socio-economic.	The researchers in their study named "Socio-economic conditions and cultural profile of the fishers in India- a review" concludes that the fishers in India have very poor socio-economic standards.
Natale, Carvalho, Paulrud (2015)[3]: to limit the fishing activity within 12 nautical miles till 2022.	Redefine the definition of Small-Scale fishers according to their operational range in European Union.	Operational range of Small Scale Fishers and vessel features.	In the Research Paper researcher wants to redefine the definition of Small-Scale fishers according to their Operational range in European Union. As Small-scale fisheries have a big importance in the European Union when it comes to opportunities relating to job and contribution they make to the economy.

ISSN 2278-4632 July-December 2020

A Theory, Author & Year	Title	Construct	Major Contribution
Anneboina, Kumar Kavi (2017)[4]: The Research analysis the Marine fishery and its link with the Environment or especially with Mangrove tree in India.	The Marine fishery and its link with the Environment or especially with Mangrove tree in India.	Economic Analysis.	The economic analysis to establish increasing marine fish output in India by the role of mangroves.
Iyer Nataraja (2016)[5]: In the present era of the competitive world, human Resource Management is gaining importance in industrial and non-industrial Organizations.	Present era of the competitive world, human Resource Management is gaining importance in industrial and non-industrial organizations.	Future Challenges.	Developing an understanding of the Human Resource Management practices of the Uniroyal Marine Exports Limited. Uniroyal Marine Exports Limited is a company that provides the best quality seafood products to its customers which are available in the market.

ISSN 2278-4632

A Theory, Author & Year	Title	Construct	Major Contribution
Prof. Sapovadia, Vrajlal (2004)[6]: In his study, the author has emphasized on the. He has taken a specific case of fishers cooperatives and concluded its impact on society.	Socio-economic development of a society by the functioning of cooperatives.	Human resources practices in fisheries industry.	Many such cooperatives are known to be involved in other activities of social reform like health and education.
Pioch, Saussola, Kilfoyleb, and Spieler (2011)[7]: Mitigation of habitat loss remains problematic if we want to make sustainable use of the environment.	Ecological design of marine construction for socio-economic benefits: ecosystem integration of a pipeline in coral reef area.	Scio-economic benefits.	Integrating the ecosystem into marine project design potentially impacts the socio-economic development of coastal areas through biodiversity enhancement.

Exhibit No. 2 : Determinants of Marine Fisheries in India.

24 research papers on Marine Fisheries in India reveals following factors are considered to be an important determinant.

Factor	Positive Impact	Insignificant/ Indirect Impact	Rank
Poverty	10	0	1
Empowerment	9	0	2
Good working conditions	8	1	3
Career opportunities	7	0	4
Social Acceptance	8	0	5
Sense of National bonding	7	0	6
National security	7	0	7
Good wages	5	2	8
Tactful discipline	4	0	9
Sympathetic personal help	6	3	10

Appreciation

Studies emphasizing on appreciation had considered as one of the strongest determinants of continuance intention. Past studies like Felicity Vanparia, Pradip. Ghodasara, Y, R. (2012). Review Paper On To Study and Enhance Coastal Security System Using GIS/GPS Tool Sylvain, Pioch. Philippe, Saussola. Kirk, Kilfoyleb. Richard, Spieler. (2011). Ecological design of marine construction for socio-economic benefits: ecosystem integration of a pipeline in coral reef area Valappil, Thayyil. Sathianandan. Jayaraman, ayasankar. K, G, Mini. (2011). Indian marine ûsheries resources: Optimistic present, challenging future reported about significant positive impact of appreciation factor on Marine Fisheries in India.

ISSN 2278-4632 July-December 2020

Exhibit No. 3 : HR Practices among marine fishers.

Focus of the Study	Geographical Context of the Study		Number of Research Papers	
	India	Other than India	India	Other than India
HR Practices among marine fishers	Sapovadia, Vrajlal (2004) Vanparia, Pradip. Ghodasara, Sylvain (2003), Pioch, Valappil (2001) Thayyil. Sathianandan. Jayaraman, Ayasankar (2012). K, G, Mini. (2011). Harish. Iyer, Nataraja. *et al* (2016).	Sylvia Karlsson Vinkhuyzen (2011) Eline Boelee, (2001) Jan Cools, (2013), Luc van Hoof(2001) Otto Hospes, Marcel Koke, Jack Peerlings (2012), Jan van Tatenhove, Catrien J.A.M.(2008), Termeer, Ingrid J. Visseren-Hamakers. (2018) IPhilippe, Saussola. Kirk, Kilfoyleb. Richard, Spieler. (2011) Titto, D'Cruz, S. (2004)	**6**	**9**

Summary of Literature Review.

The above-mentioned review of the literature shows that marine livelihood, financial/ social conditions of fishers' community and its impact on society in various senses have been in discussion for many years. Many researchers have thrown light on difficult situations faced and suggested solutions to resort existing issues in various scales and levels to strengthen economy of nation. However, it is observed that suggestions are sometimes very challenging to act upon in existing socio-political scenario thus primary beneficiary receives profit.

The socio-economic-psychological status of marine wage fishers is actually a matter of concern. The marine craft owners i.e. so called employers themselves are in hands to mouth condition. When there is a dearth in natural resources and total fish catch does not get due price; the less revenue for craft owners become obvious. The remuneration paid to the wage fishers is share proportional to revenue/ value of landing also decreases. The craft owners hardly find a window open to think about social security for wage fishers. The HR practices, which generally exist between employer and employee in the organized sectors, are practically not visible among Artisanal Subsistence Marine Fishers (ASMF). Thus, the Government and non-governmental organizations like co-operative societies must play the role of savior as a principle employer for survival of this unorganized sector. When marine fishers lead a satisfied lifestyle their bonding for nation will increase. In turn, improved social security will guarantee better comprehensive national security.

References.

1. R. Karuppusamy, K. Karthikeyan, (2017) 'A Study on Socio-economic and Cultural Profile of Fishers in Puducherry Region, India', *International Journal of Advanced Research*, 5(1), pp. 1752-1761.

2. Devi Nongmaithem Bijayalakshmi, Ngangbam Ajit Kumar, 'Socioeconomic conditions & cultural profile of fishers in India'- a review, *IOSR Journal of Agriculture and Veterinary* Science (IOSR-JAVS), Volume 7, Issue 9 Ver. I (Sep. 2014), pp. 42-48.

3. Fabrizio Natale, Natacha Carvalho, Anton Paulrud, 'Defining small-scale fisheries in the EU on the basis of their operational range of activity The Swedish fleet as a case study', *Fisheries Research, Volume 164,* April 2015, pp. 286-292.

4. Lavanya Ravikanth, Anneboina, K.S.Kavi Kumar, 'Economic analysis of mangrove and marine fishery linkages in India', *Ecosystem Services, Volume 24*, April 2017, pp. 114-123.

5. Harish.M, S.Nataraja Iyer, 'Human Resource Management Practices in Marine Products Exporting rm in Kerala', *Indian Journal of Applied Research*, Volume 6, Issue 4, Special Issue April-2016, pp. 20-22.

6. *Vrajlal, K. Sapovadia*, 'Fisherman Cooperatives: A Tool for Socio-Economic Development', International Institute of Fisheries Economics & Trade Conference, July 2004, pp.1-11.

7. Sylvain Pioch, Philippe Saussola, Kirk Kilfoyleb, Richard Spieler, 'Ecological design of marine construction for socio-economic benefits: Ecosystem integration of a pipeline in coral reef area', *Procedia Environmental Sciences,* Volume 9, 2011, pp.148-152.

Pradip Roy

Research Scholar

Global Business School & Research Centre

Dr. D. Y. PATIL Vidyapeeth, Pune (Deemed to Be University)

Dr. Chetan Chaudhari

Director,, Global Business School & Research Centre

DR. D. Y. Patil Vidyapeeth, Pune (Deemed to be University)

❑❑❑

Health Status of Women in Bihar : A Study

• Dr. Pragati

Bihar is one of the states of India having lowest health profile. The accessibility of health facility is very poor and due to poverty, people are becoming malnourished. Health is an important factor that contributes to human well being and economic growth. Bihar has the highest population density of 1,102 people per square kilometer, among states of India excluding union territories. It is the third most populated state of India after Uttar Pradesh and Maharashtra. Nearly 89% of population of Bihar resides in rural area, where accessibility of health facility is very poor. Women in poor health are more likely to give birth to low weight infants. They are also less likely to be able to provide food and adequate care for their children[1]. Finally, woman's health affects the household economic well being, as a woman in poor health will be less productive in the labour force. In Indian households, women's health is directly linked to the prosperity of family because almost all other members of the family depend directly or indirectly on the women for their daily routine work. Naturally, poor health of women seriously affects themselves as well as their families.

In India, women and men have nearly the same life expectancy at birth. The fact that the sound health and better life expectancy of the women is not seen in India suggests that there are systematic problems with women's health. In Indian culture, most of the families expect at least one son, in hope of which sometimes, they take the decision of either more children or female foetus abortion, which affects the women health to a large extent[2]. The prevailing women illiteracy and male supremacy are other causes for their miserable condition[3]. All of these factors exert a negative impact on the health status of Indian women. Despite all odds, women are the backbone of family. As education holds the key to development, percentage of literacy among women in Bihar is only 49.6 which are lowest among all states of India[4]. They do not get sufficient

nutritious diet due to their poverty. Almost every year, Bihar is affected due to recurrent floods in Koshi and other regions. As a result of it, every year people in *tarai* (low land) area of Koshi suffer through unreplenishable loss. Thus, every year, people have to start their new life with precise resources. These situations negatively affect the health of women due to the lack of money, food and access to health care services.

Keeping in view the salient findings of research studies, it was felt that an effort in this regard for understanding the health status of women in Bihar especially of Patna region needs to be made. The research was planned for women in the age group of 20-25 years from B.N.R. School/ College, Guljarbagh, Patna City. This study gives an insight to the health profile of women of Patna City which would help planner and policy maker to plan various health programmes. It would also help them in promoting the awareness level of women related to their health. The specific objectives of the study were:

1. To assess the health status of women in Bihar.
2. Strategy to improve the health of women in Bihar.

Methodology

The core sample for the present study comprised total of 200 women from B.N.R. School/ College, Guljarbagh, Patna City in Bihar were selected as the study subject. Interview schedule was constructed to record the data obtained. In addition all the subjects were interviewed regarding their food habits, daily intake of various food items and life style pattern and for their physical examination using anthropometric tools (measuring tape, weighing machine) was undertaken.

Results and discussion

The results of the present research have been presented under various sections. These sections provide an overview of distribution of the respondents according to age group.

Table 1: Distribution of the Respondents according to Age group

S. No.	Age group (in year)	Number(n)	Percentage (%)
1.	20-21	76	38
2.	22-23	54	27
3.	24-25	70	35

Table 1 reveals that out of total 200 women, the maximum number that is, 76 (38%) were in the age group of 20-21 years, 70 (35%) were in the age group of 24-25 years and the rest 54 (27%) were in the age group of 22-23 years.

Table 2 : Nutrients Concern in the Average Diet of Women[5]

Nutrients Concern in the Average Diet of Women

Nutrients Intake	Nutrients	Women
Lower than recommended Intake	**Vitamins**	
	Folate	✓
	Vitamin A	✓
	Vitamin E	✓
	VitaminB6	✓
	Minerals	
	Calcium	✓
	Iron	✓
	Zinc	✓
	Magnesium	✓
	Others	
	Fiber	✓
Higher than Recommended Intake	**Total Fat**	✓
	Saturated fat	✓
	Sodium	✓
	Cholesterol	✓
	Total Sugar	✓

Table 2 shows that on average, women consume diets that are inadequate in several vitamins and minerals, including folate, vitamin A and E, iron, zinc, Magnesium and calcium.[6] Dietary fiber intake among

girls is also low. Diets consumed by many women exceed current recommendations for total fat and saturated fat, cholesterol, Sodium and Sugar[7].

Body Mass Index

Body mass index (BMI) from the sample group was calculated on the basis of the observations of their weight and height. BMI was defined as weight (in kilograms) / (height2 [in meters] and international cut-off for BMI were used for classification of subjects as malnourished/ malnutrition (BMI below 18.0 Kg/m2), normal 18>BMI<25kg/m2), over weight (25> BMI<30 kg/m2) and obesity (BMI>30kg/m2).

Table-3 : Body Mass Index of Women.

Sl.No.	Age group (in year)	Number(n)	Normal BMI	Low BMI	Overweight
1.	20-21	76	9 (11.9%)	67 (88.1%)	–
2.	22-23	54	26 (48.2%)	27 (50%)	1 (1.8%)
3.	24-25	70	47 (67.2%)	21 (30%)	2 (2.8%)

Observations regarding the BMI from Table-3 showed that more than 50% women are undernourished and up to 3 % women are overweight. Nearly 50% of the subjects, in the present study, were found to be thin and an almost similar proportion stunted. Stunting has important implications for reproductive health of women as it can lead to obstructed labour during child birth due to a small birth canal. On the other hand, thinness can result in poor pregnancy outcome especially in terms of low birth weight and increased risk of infant mortality. The poor nutritional status, in the present study, could be attributed to the inadequate food intake as majority of the subjects.

Strategy to improve the nutritional as well as health status of the women of Population[8]

Table 4 : Food Groups and its Importance

S. No.	Classified Food items	Carbo-hydrate	Protein	Fat	Vita-mins	Minerals
1.	Cereals	***	**	*	*	**
2.	Pulses and its products	***	***	*	*	*
3.	Green leafy Vegetables	*	*	*	***	***
4.	Other Vegetables	*	*	*	***	***
5.	Oilseeds	**	***	***	*	***
6.	Fruits	**	*	*	***	**
7.	Root & Tuber	**	*	*	**	***
8.	Milk & Milk Products	**	***	*	**	***
9.	Other processed products	***	*	*	*	*
10.	Spices	*	***	*	*	***
11.	Less consumed fruits & vegetables	**	*	-	***	***
12.	Less consumed Green leafy vegetables	*	*	*	***	***

Note: Major Source (***), Moderate source (**) & Minor Source (*)

Table 4 presents food groups and its importance's Improving health status of anyone, supplementation is one of the ways by adding & deleting food items from regular diet, so one should know food group and its importance. Some other points, which also help in improving health & nutritional status, are as follows:

- Increasing food production: building buffer stocks.
- Improving food distribution: building up the public distribution system (PDS).
- Improving household food security through:
  - improving purchasing power;
  - Food-for-work programmes;
  - Direct or indirect food subsidies.
- Food supplementation to address the special needs of vulnerable groups.
- Nutrition education, especially through the Food and Nutrition Board (FNB) and ICDS.
- Efforts of the health sector to tackle:
  - adverse health consequences of under nutrition and over nutrition;
  - adverse effects of infection and unwanted fertility on nutritional status;
  - micronutrient deficiencies and their health consequences.

Conclusion

Nutrition and physical growth are integrally related; optimal nutrition is a requisite for achieving full growth potential[9]. Failure to consume an adequate diet at this time can result in delayed sexual maturation and can arrest or slow linear growth[10]. On average, women consume diets that are inadequate in several vitamins and minerals, including folate, vitamin A and E, iron, zinc, Magnesium and calcium. Dietary fiber intake among is also low. Diets consumed by many women exceed current recommendations for total fat and saturated fat, cholesterol, Sodium and Sugar. Analyses of data shows that the BMI profile of the subjects indicated that majority of the respondents were malnourished in dual sense.

The analysis revealed that health status of women is alarming. Nutritional condition is very poor in Bihar, where more than half of the women in pregnancy and reproductive span period are found to be anaemic[11]; percentage of women having below normal BMI is second highest in India. Although, Bihar has shown improvement in maternal health such as antenatal care service, postnatal care, consumption of iron and folic acid, institutional births but still the figures are below the

other states and national level. In general, it was demonstrated that present health status of women in Bihar is lagging behind other states and it requires a proper attention. Therefore, the government needs to properly implement the currently running health programs with special focus on Bihar so that nutritional and maternal health status of women could improve which is very much related to the family and society.

References :

1. *Physical status: the use and interpretation of anthropometry,* Report of a WHO Expert Committee, Technical Series 954, World Health Organization, Geneva, 1995, pp. 270-6, 445.

2. M Thame, R.J. Wilks, N. Macfarlane- F.I. Anderson, T.E. Forrester, 'Relationship between maternal nutritional status and infant's weight and body proportions at birth', *European Journal of Clinical Nutrition*, 1997, pp. 51, 134-8.

3. J.M. Tanner, *Foetus into Man: Physical Growth from Conception to Maturity*, Open Book Publishing Limited, New York, 1978, p. 22-36.

4. *Women of South East Asia – a health profile,* World Health Organization, Geneva, 2002, pp. 105-8.

5. J. Schebendac, I.R. Shenker, S.B. Friedman, M. Fisher, S.K. Schonberg, eds. *Comprehensive Adolescent Health Care*, Quality Medical Publishing Inc, St. Louis, Missouri, 1992, pp. 206-13.; L.S. Neinstein, L.E. Sachek, Nutrition. In: Neinstein LS, ed. Women health care: a practical guide. Philadelphia: Lippincott Willians and Wilkins, 2002; 170-85.

6. K. Venkaiah, K. Damayanthi, M.U. Nayak, K. Vijayaraghavan, 'Diet and Nutritional status of Rural Women in India', *Nutrition News-National Institute of Nutrition*, 2003, vol. 24, pp. 1-4.; *India nutrition profile*, Department of Women and Child Development, Ministry of Human Resource Development, Government of India, New Delhi, 1998, p. 1-25.

7. C. Gopalan, *Women and Nutrition in India – general considerations*, eds. C. Gopalan, S. Kaur, Nutrition Foundation of India, New Delhi, 1989, pp. 1-16.; S.J. Jejeebhoy Addressing women's reproductive health needs – priorities for the family welfare program, *Economic and Political Weekly*, 1997, vol. 32, pp. 475 - 84.

8. *Year of achievement and new initiatives*, Department of Women and Child Development, Ministry of Human Resource Development, Government of India, New Delhi, 2000, p. 7; M. Lino, S.A. Gerrior, P. Basiotis, R.S. Anand, *Report Card on The Diet Quality of Children, Economic Nutrition Review*, 1999, 12 (3&4), pp. 78-80.

9. Munoz Krebs, S. Smith, R. Barbash, L. Cleveland, 'Food intakes of US children and women compared with recommendations', *Pediatrics*, vol. 100(3), 1997, pp. 323-329.

10. M.K. Fox, P. Crepinsek, P. Connor, M. Battaglia, *School Nutrition Dietary Assessment Study-II: summary of findings,* Food and Nutrition Service, Office of Analysis, Nutrition and Evaluation, US Department of Agriculture, 2001.

11. *A Report on Health Status of Women*, World Health Organization, 1994.

Dr. Pragati
Assistant Professor,
Dept. of Home Science,
L.N, Mithila University,
Darbhanga, Bihar

❑❑❑

Empowering Women Through Education in India

Shweta Bajaj • Abhishek Verma

Abstract :-

Education is the basic right of every human being. The term education is very vast but we can use a one liner here as 'Education is the learning and development of ourselves". It imbibes new skills and teach us how to behave with everyone in the most civilized manner.

As mentioned above it is the basic right of everyone and here one should not discriminate amongst the genders. But it is very unfortunate that it still exists in many parts of the mother Earth. Education has a predominant place in women empowerment as the same prepares a female for accepting any challenges that comes on her way and can change their life altogether.

An educated women is empowered with confidence where she can take decision for herself and can have complete control over her decisions. Hence we cannot disregard the magnitude of Learning and Education in Empowering a women. If a women is left without being educated then a major part of the country will not be able to contribute towards its growth which can become a major issue in future. Educating a woman or a female child has become the need of the hour and of prime importance as it is said that when we teach a man, we teach a man only, but a well-read woman is the base of the family. A mother is always the first teacher of her child. Hence, if they are educated they will be able to shape their child's life too with values and will contribute in making him/her a better citizen of the nation. A woman who is learned enough is aware of her rights and duties and she has rights to contribute towards the progress of the country.

It is very important for women to change her position in the society where it runs mostly by men, because of education there will be less inequalities in the society and this will improve their stature too, not only at home but in society too.

Keywords: Women education, empowerment, participation.

Empowerment can be seen as equipping and making women realize that she is free to make her decision that are the part of her life and she can act on the decisions made by her this will not only make a transformation in a females life, but a complete change in the society too . It is breaking a stereotype is the society from a home maker to a society maker. It is a process to have a complete takeover of her life and become the decision maker of her destiny. Woman is the most important part of the society yet deprived of many rights. Many times she is not even aware of it. All in the society know of about it but no one is ready to accept this brutal fact of inequality. All this has given birth for declining the woman's importance in the society. Because of the growth of such in humane acts there is a die-hard need to empower the most powerful gender of the society. Now it has become the nucleus for the development that has gained the attention worldwide, we need to ask a question today to ourselves that it has been 70 years plus to our independence, but are women really free? The woman is still fighting for equal rights in this male chauvinistic society, this search has given birth to big association and have given birth to many such movements for Women rights. Law has not given the right to divide or discriminate between males and females but the brutal society has deprived woman from her very basic rights, with whom she has been blessed by law. Empowerment is the belief in self to the maximum potential that one possess and improve upon their participation nationally and internationally and to have faith and belief on her Capabilities that she is no less than anyone else in this world of competition.

WOMAN EDUCATION AND ITS IMPORTANCE

If you Teach a male you teach one person but when you teach a woman you are confident enough to understand that you literate a whole family. Woman Empowered means that out mother nation is Empowered "PT JAWAHAR - LAL NEHRU".

Education of a woman plays a pivotal role in the growth of the country, for the complete improvisation it is essential to educate a woman it will not only change the eminence of life at home but even outside boundaries of the house. Many people have defined the Education in their own way, According to Mahatma **Gandhi Education**

means "All round development of the best in any individual, body, mind and spirit ". If we see this definition a Gandhi ji it says that whatever changes that took place in the society are the results of the same.

Every Revolution have moved around the same concept and it's responsible for it. It is the complete change in the thought process, personality and attitude. An educated woman in the society will not Only take good care of her female Child but will also understand the importance other her being educated, more over a literate mother is the best Guiding source to all her Children whether it is a male or a female.

Problems on the Way towards Education.

Females around the county are still facing the gender discriminations which is still prevailing in India. Still the disparities exists in our counter a lot has to be done in this field so that every Women should be educated in our country. There is a huge lacuna in female and male literacy ratio which simply says it all. National average reveals the literacy rate for men is 80.9 per cent and for women is 64. 6 %. This simply tells that quarter of the population is still illiterate which is an alarming sign for any nation which is developing this may be because of the fact that they ae still considered to be home makers and not economy creators

Women empowerment through education

For any society, Women empowerment has always been an essential part and it is not limited to any province or nation at large. We cannot brush aside the role of a woman in any vertical of life. The contribution with which women portrays her limitless venture is incredible and contributing significantly for both the social and economic growth along with the political progress of India. The Indian constitution enables the state to adopt affirmative procedures for stimulating different approaches to empower women. Women Empowerment as an international concern and thought provoking discussion on this is a need of the hour. The idea of empowering women was presented at the international women conference at NAROIBI in 1985. Well informed women through education as it makes them self-sufficient and self-reliant in all spheres of life. It is difficult to neglect the role of women in any society, which is propelling and striving to come up on the pinnacle of global presence.

Evolving the capacity to establish and stimulus the path of social change, to form a more just social and economic order, nationally and internationally. Therefore it is all about a change in social fabric and a tool to analyse the impact on different global issues that it caters.

It refers to people and society which is equally responsible for this change in mind-set and it is called mind shift process.

Importance of Women participation

Women's participation and involvement may be used both for support by an external agency and as a control device by the propagators of law-makers. It can be varied from direct or indirect, formal or informal and sometimes political to apolitical. The role of women in Panchayat Raj institutions is a living testimony of their active participation. It refers to women participation in all verticals be it policy formulation or execution of existing policies in the betterment of a country.

But woman is still facing the discrimination in all arena of life. It is because of the limited resources or power that they have or a maltreatment they receive because of vested interest of political pressures. Invariably the women having lack of power at the centre and state level.

Equality In Education

We all know that adult literacy programs have been duly acknowledged and has been praised by all across the country. There has been a major improvement in the equality of women as the admission ration was increased in the schools across which was a commendable and appreciating step. Due to this gap in between was reduced at a good level. It is a known fact that the world has achieved the equality in education in both the genders and there are many other parts of the globe where the target has been achieved of literacy and education at all the levels. The part taking of women in politics has been a major step up and keeps on increasing too. According to the latest data, in the year 20-14, 30% of the parliament members in more than 45 countries at least in one room were females. We have seen in many countries this inequality still persists and the women has to face the problem in education and other areas of development which includes economy and government. They have to face the problems in almost every sector that they work. If we see the numbers more than 60 million women are underprivileged to go for their basic education to schools.2 in 5 women have to face the

violence because of the gender they belong to, child marriages are still so common across the world. And the situation is that they are the part of the developing country. So many women die across the world because of the complication in their pregnancy or during the child birth. There are 43% of women who are in agricultural labor force and fewer than 15% of landholders in agriculture are women. Largest inequalities are found in North Africa and near the East, as the percentage is just 5% as landholders who are females.

By keeping both the genders equal we can transform the society in a very professional way, and each sector can grow eventually. The power given to the women is not just the part of the development society as in whole but it is the nucleus of the development. To educate people across the world we will have to have more of educational awareness programs on equality and empowerment to the women and should take the firm step and commit to give the complete support in every sense to the females.

Conclusion

A well-read woman is the guiding lamp for the developing nation towards the destination of development. They need to be preserved for a life in humanity which is a pre requisite for improvisation of any nation. Hence if we are looking for a brighter tomorrow educating a women should be the priority of the country. It is the most important and powerful equipment to change the society. It will not only change the world around but change in this inequality will also improvise the status of the women within her family. To motivate the feeling of educating the women in the society gender biasness has to be completely eradicated and for this there is a need of providing education, skill sets and knowledge to females of the society. There is a need for exclusive schools and colleges to be opened in every state for women so that she can be an active participant in all the public, administrative and government matters for the complete removal of gender discrimination.

References

1. Suguna M. (2011). Education and Women Empowerment in India. International Journal of Multidisciplinary Research: VOL. 1. Issue 8. (M)
2. http://www.abhinavjournal.com/images/Arts_&_Education/Nov12/1.pdf

3. http://shodhganga.inflibnet.ac.in:8080/jspui/bitstream/10603/8562/9/09_chapter%204.pdf (shoadhganga.inflibnet.ac.in)
4. Shindu J. (2012). Women's Empowerment through Education. Abhinav journal: Vol. 1. Issue- 11. p. 3. (J, 2012)
5. Journal of Education and Practice www.iiste.orgISSN 2222-1735 (Paper) ISSN 2222-288X (Online)Vol.6, No.10, 2015191
6. K. Mahalinga. (2014). Women's Empowerment through Panchayat Raj Institutions. Indian Journal of Research: Vol. 3. Issue 3. (k.mahalinga, 2014)
7. Chibber B. (2010). Women and the Indian Political Process. Mainstream Weekly Journal: Vol. XLVIII.Issue 18. (B, 2010)
8. Bhat T. (2014) Women Education in India Need of the Ever. Human Rights International research journal:Vol. 1 p.3. (T, 2014)
9. www.un.org/milleniumgoals/gender.shtml
10. http://www.usaid.gov/what-we-do/gender-equality-and-womens-empowerment

Shweta Bajaj
Assistant Professor,
Graphic Era Deemed to be University
Dehradun.

Abhishek Verma
Assistant Director
Career Services,
University of Petroleum and Energy Studies (U.P.E.S)
Dehradun

❑ ❑ ❑

गुप्तयुग में कृषि विज्ञान एवं तकनीकी : एक अध्ययन

• डॉ. धर्मराज शिवाजी पंवार

आदिम मानव आपना निर्वाह जंगलों में शिकार करके, नदियों में मछली पकडकर या जंगलों में फल बटोरकर करता था। वह पशुपालना या खेती करना नही जानता था। कृषि के आविष्कार ने मानव जीवन सुरक्षित और सुस्थिर कर दिया। भारतीय उपमहाद्वीप में आद्य ऐतिहासिक काल से कृषि के साक्ष्य मिलते है। पुरातात्विक अनुसंधानों से सिद्ध होता है कि आरम्भ में कृषि व्यवस्था पाषाण एवं ताम्रपाषाण उपकरणों पर निर्भर थी और बाद में लौह उपकरण का प्रचलन हुआ। प्राचीन भारत के इतिहास में गुप्तयुग को आर्थिक रूप से सर्व सम्पन्न माना जाता था, और उनकी इस सम्पन्नता में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान था। गुप्त युगीन काश्तकार विभिन्न विज्ञान और तकनीकी प्रणालियों तथा उपकरणों द्वारा कृषि कार्य करते थे।

1. कृषि उत्पादन

गुप्त काल में कृषक मौसम, मिट्टी, पानी तथा मौसमों के अनुसार विभिन्न खाद्यान्न, तिलहन, दालों, फल-सब्जियों एवं मसालों का उत्पादन करते थे। वराहमिहिर के अनुसार काश्तकार गर्मी, सर्दी और बासन्तीय ऋतुओं के अनुसार तीन प्रकार की फसलों का उत्पादन लेते थे।[1] तत्कालीन काल के मुख्य कृषि उत्पादनों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है फली (समी धान्य), बाली वाले दाने (शुक धान्य) तथा कई प्रकार के चावलों (ब्रीही)।[2] गुप्तकाल में प्रमुख तौर पर जिन फसलों का उत्पादन लिया जाता था उसमें—चावल, गेहूँ, जौ, चना, मटर, मूंग, मोठ, मसूर, राजमा, सरसो, ईख, तिलहन, कपास, मक्का, सेम, आम, अंगूर, संत्रा, नींबू, केसर, जीरा, अद्रक, काली मिर्च, लोकाट, इलायची, कत्था, नारियल आदि। इसी काल में उत्पादन के हिसाब से फसलों को दो

भागों में विभाजित किया है—(1) साधारण फसल और (2) विशेष फसल, साधारण फसलों को 'शश्या' भी कहा जाता था।[3]

2. भूमि मापन पद्धति

भूमि मापन प्रणाली के सम्बन्ध में प्राचीन ऐतिहासिक स्रोतों में विस्तृत उल्लेख प्राप्त होते है, गुप्तकाल के अभिलेखों में भूमि मापन हेतु-- 'आढ़वाप', 'द्रोणवाप' और 'कुल्यवाप' अंगुल, धनु, हस्त, डाण्डा, आदि शब्दों का उल्लेख किया गया है। इन शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए सचीन्द्र कुमार मैंती नामक विद्वान का कहना है कि प्राचीन काल में भारत में एक कुल्यवाप, 08 द्रोणवाप या 32 आढ़वाप के बराबर होता था। इन्होंने अपने ग्रन्थ में बंगाल की 'पाटक' नामक प्रणाली का भी उल्लेख किया है। जिसके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि एक '**पाटक**', '**40 द्रोण**' के बराबर होता था।[4] अनेक गुप्तकालीन अभिलेखों में भूमि की नपाई हाथों से करने के भी उल्लेख मिलते हैं। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ में लिखा है कि 24 अंगुल एक हाथ के बराबर होता था, एक अंगुल 3/4 इंच होता था लगभग 6 1/2 (साढ़े छः) फुट।[5] गुप्तकाल के अनेक अभिलेखों में भूमि की नाप हेतु सरकण्डों के प्रयोग का उल्लेख किया गया है। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार सरकण्डों की लम्बाई छः हाथ होती थी।[6] सचीन्द्र कुमार मैती ने प्राचीन अभिलेखों के आधार पर भूमि मापन की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की है—

आढ़वाप = 1. 1/8 बीघा=3/8 से 1/2 एकड़

04 आढ़वाप = 1 द्रोणवाप=4.1/2 से 6 बीघे = 1.1/2 से 2 एकड़

08 द्रोणवाप = 1 कुल्यवाप = 36 से 48 बीघे = 12 से 16 एकड़

05 कुल्यवाप = 1 पाटक = 180 से 240 बीघे = 60 से 80 एकड़[7]

इस प्रकार सचीन्द्र कुमार के अनुसार सम्भवतः गुप्त सम्राटों के द्वारा भूमि पैमाइश हेतु कोई एक समान मानक भारतवर्ष में न लागू करके प्रत्येक जगह अलग-अलग प्रणाली लागू की गई थी जिन्हें तत्कालीन समाज को ध्यान में रखते हुए पैमाइश के उपकणों के रूप में व्यवहार में लाया गया यह एक वैज्ञानिक सोच व शोध के परिणाम की पुष्टि का द्योतक हैं।

3. कृषि उपकरण

गुप्तयुग में भी कृषि व्यवस्था तत्कालीन अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थी। कृषि कार्यों में लकड़ी, लोहे, पत्थर, चमड़े और सण् तथा पटशण् के बने

कई प्रकार के महत्वपूर्ण उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। काश्तकार उपलब्ध तकनीकी उपकरणों के समुचित उपयोग द्वारा अपना कृषि कार्य करते थे। वह हल, फाल, जुआ, कुदाल, कुठार[8], सुहागा, गिरडी (मोगरी), हँसिया, फग्गू, रम्भा, तथा दांत्र योत्र, टोकरी, रस्सी, और बैलगाड़ियों आदि उपकरणों का प्रयोग करते थे।[9]

अमरकोश में भी कई महत्वपूर्ण कृषिय उपकरणों का उल्लेख किया गया है—जिसमें सामान बांधने के लिए नघ्री, वघ्री एवं वरजा आदि चमड़े तथा सण् (सन) द्वारा बनाई गई शुल्ब, गुणी, वराटकं तथा रज्जू, वटी इत्यादि नामों से ज्ञात रस्सियों का उपयोग किया जाता था।[10]

3.1) हल

गुप्तकाल के कृषि उपकरणों में हल सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण था। काश्तकार हल का उपयोग भू-कर्षण के लिए करते थे। तत्कालीन साहित्य में हल के कई नामों का उल्लेख मिलता है जैसे-कुल, कुत्क, पगल, कृषिक, कुट, लाग्ड़ल, हाला, लगां-लड्गां, प्रजाना तथा तोड़ना आदि। अमरकोश में हल के लिए 'लाग्डल हल', सीरो गोदारणं आदि नामों का वर्णन है।[11] अमरकोश में वर्णित उपकरणों से ज्ञात होता है कि हल द्वारा भू-कर्षण के पश्चात ही सारी कृषिय प्रक्रियाएँ शुरू होती थी। सामान्यतः हल का भार अथवा वजन 12 'पल'* होता था। हल एक वैज्ञानिक और तकनीकी उपकरण था—जिसके जुआ, सहल, फाल, आदि भाग होते थे, जो तकनीकी कारीगरों द्वारा बनाए जाते थे। गुप्त काल में अच्छे एवं तकनीकी पूर्ण हलों द्वारा ही कृषि विस्तार सम्भव हुआ था। हल के प्रमुख भाग निम्नलिखित प्रकार के थे—

3.1.1) फाल

गुप्त काल में इस महत्वपूर्ण कृषि उपकरण को '**फार**' एवं '**फाल**' भी कहा जाता था। अमरकोश में हल के फाल के लिए निरीशं, कृषको, फलम् और कुटकं फालः शब्दों का प्रयोग हुआ है।[12] यह हल के अग्रभाग में ठुका लोहे का नुकीला उपकरण होता था जो जमीन के अंदर घुसकर मिट्टी को उखाड़ता और तोड़ता था। यह 'फाल' अधिकतर कुशल तकनीकों द्वारा आठ अंगुल लम्बा और चार अंगुल चौड़ा बनाया जाता था।[13] उपयोग के आधार पर कभी इसकी लम्बाई 6 इंच तथा चौड़ाई 3 इंच बनाई जाती थी।[14] हल के फाल (पगल) का वजन लगभग 12 'पल' होता था। कॉसमास के अनुसार कुछ किसान गैंडे की खाल से बने नकुले फाल युक्त हलों का भी प्रयोग करते थे।[15]

3.1.2) हाल

कृषिय उपकरणों में हल सबसे प्राचीन उपकरण है जिसकी सहायता से कृषि की जुताई की जाती है।हाल को कुछ विद्वानों ने 'हरीश' भी कहा है, जो हल का मुख्य भाग होता था।'हल' और 'सहल' को जोड़ने वाले बीच के लंबे हिस्से को 'हाल' कहा जाता था जिसके द्वारा हल को खींचा जाता था।

3.1.3) जुआ

हाल की तरह ही जुआ (Yoke) भी हाल का महत्वपूर्ण उपकरण था। अमरकोश में जुआ बान्धने की रस्सी को बंधोयोत्रं कहा गया है।जुआ बैलों के कन्धों पर रखा जाता था, और कृषक की देखरेख में बैल इसको खींचते थे। अमरकोष में जुए के लिए निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग किया गया है—ईशा, लागंल व दण्ड। बैलों द्वारा खींचे जाने वाले सभी उपकरणों जैसे बैलगाड़ी, फल, सुहागा, मोगरी को रस्सी द्वारा जुए से जोड़ा जाता था और बैलों के कंधों पर रखकर उन्हें हाका जाता था।

3.1.4) सहल

सहल गुप्तकालीन मुख्य उपकरण था। जिसके द्वारा बैल बोझा खींचते थे। तत्कालीन साक्ष्यों में सहल को 'शैला' भी कहा गया है। यह बैलों को जुए के साथ सीमा में बांधने वाला महत्वपूर्ण उपकरण था। अमरकोष में जुए में प्रयोग होने वाली 'कीलों' (pin) को 'शम्या' व 'युगकीलकः' कहा गया है।[16]

3.2) सुहागा

सुहागा खेती की जमीन को समतल बनाने के लिए उपयोग में लाया जानेवाला एक कृषि उपकरण था। भूमि कर्षण के बाद खेतों में मिट्टी का स्तर सही करने अथवा समतल बनाने के लिए तत्कालीन काश्तकार सुहागा का उपयोग करते थे।[17] काष्ट का भारी आयताकार तख्ता (पल्ला) जुए से रस्सी द्वारा बांधकर बैलों के द्वारा जुताई भूमि पर घुमाया जाता था।

3.3) गिरडी

गिरडी (मोगरी) का उपयोग जोती गई भूमि के ढेल्लों को तोड़ने के लिए किया जाता था। अमरकोश में गिरडी को 'लोष्ठ-भेदनः' तथा 'कोटिशों' कहा गया है। यह काष्ट से बनी गोल भारी मोगरी होती थी।

3.4) कुदाल

कुदाल को संस्कृत भाषा में '**कुद्दाल**', '**कुद्दार**' कहते है, यह एक महत्वपूर्ण कृषिय उपकरण था। अमरकोश में इस उपकरण को '**खनित्रंम् अवदारणम्**' कहा गया है। इस उपकरण के एक या दो तरफ नुकीले सिरे होते थे जिन्हें कुशल कारीगरों द्वारा विशेष कार्यों के लिए बनाया जाता था। इसको लम्बवत काष्ट का हत्था होता है जिसकी एक ओर पकडकर तीव्रता के साथ जमीन पर प्रहार कर मिट्टी को तोड़ा जाता था व फसलों की गुंढाई (weeding), की जाती थी। कई साक्ष्यों में काश्तकारें के द्वारा उपयोग किए जाने वाले इस महत्वपूर्ण उपकरण को गैंती भी कहा गया है। अमरकोश में गैंती और कुदाल को एक ही उपकरण माना गया है।

कुदाल, गैंती एवं रम्बा या रम्भा सतवंत मिट्टी के बड़े उन ढेलों को तोड़ने के काम आते थे, जो हल चलाने के पश्चात भी खेतों में रह जाते थे। छोटे भूमि खण्डों में जहाँ पर हल एवं बैल द्वारा कृषि करना कठिन होता था। वहां पर काश्तकार कुदाल से भूमि खोदकर बीजों को गाढ़णे का कार्य करते थे।[18] तत्कालीन लुहार एवं बढ़ाईकार कृषकों की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न तकनीकों द्वारा लकड़ी और लोहे के प्रयोग से कुदाल और रम्भा आदि उपकरणों का निर्माण करते थे। हल के बिना कुदाल के द्वारा झूमिंग-कृषि करने के साक्ष्य भी मिलते हैं, आदिवासी क्षेत्रों में कृषक कुदाल से भूमि खोदकर उसमें बीजों की बुआई करके आवश्यक खाद्यान्नों का उत्पादन करते थे।

3.5) कुठार

गुप्तकालीन किसान हल और कुदाल के साथ कुठार का भी प्रयोग करते थे। यह कुल्हाड़ी के जैसा ही उपकरण होता था जिसे कुशल तकनीक द्वारा लुहार एवं बढ़ाई लौहे एवं लकड़ी के साथ तैयार करते थे। कृषि क्षेत्रों से पेड़ टहनियाँ और लकड़ियाँ काटने में वर्तमान की तरह ही कुल्हाडी का उपयोग करते थे। कंटीली झाड़ियों वाले छोटे भूखण्डों पर जहां हल बैल से कृषि करना असम्भव था वहा पर कुल्हाड़ी और कुदाल जैसे उपकरणों के साथ बीजों को बोया और उगाया जाता था।[19] भारतवर्ष के बहुत से क्षेत्रों में आज भी कुल्हाड़ी के उपयोग द्वारा कृषि की जाती है।

3.6) हन्सियाँ

हन्सियाँ अथवा दरान्ती एक फसल काटने का उपकरण था और है। अमरकोश में इसके लिए 'दात्रं' और 'लवित्रं' शब्दों का प्रयोग किया गया है। अन्य साक्ष्यों में हन्सियाँ के और अधिक नामों के बारे में भी कहा गया है।

3.7) उखल-मूसल

'**उलूखलम् व मूसल**' भी महत्वपूर्ण कृषि उपकरण थे।अमरकोश में धान्य फसलों के नामों व सफाई एवं गहाई का उल्लेख है। इन उपकरणों द्वारा अन्न को कूटकर भूसा व दानों को अलग किया जाता था और अन्न के दानों को कूट कर उनका चूरा बना दिया जाता था।[20]

3.8) मेढ

गहाई (thrashing) के प्रयोग में आने वाला मेड एक '**कष्ट स्तम्भ**' (A pole of wood) होता था। फसल की कटाई के बाद फसल को इकट्ठा करके खलिहान में इकट्ठा किया जाता था। खाल्या (खलिहान) के केन्द्र में एक मेढ़ गाड़ दिया जाता था, और मेढ़ के साथ एक प्रमुख बैल को बांधकर उसके साथ अन्य बैलों को आवश्यक संख्यानुसार गलजोड़ करके फसल पर गोलाकार हाँका व घुमायाँ जाता था। इस प्रक्रिया में आनाज व भूसा, बैल के खुरों द्वारा तथा वजन पड़ने से कटकर, चूरा बनकर अलग-अलग हो जाता था, और इसके साथ ही गहाई कार्य संपन्न हो जाता था। गहाई की यह प्रक्रिया वर्तमान में भी देश के कुछ भागों में किसानों के द्वारा अपनाई जाती है जो अतीत में प्रचलित रही है। केंद्र में जुतने वाले मेढ़ से बंधे प्रथम बैल को '**मेढ़ी बैल**' कहा जाता था। अमरकोश में पशु-बंधन स्तम्भ के लिए 'मेधी: खले दारू यत्पशुबंधने' व 'धान्य खलेपशु बंधन स्तम्भ' शब्दों के उल्लेख से गुप्तकाल में गहाई की इस तकनीक की पुष्टि होती है।[21]

3.9) छाज अथवा सूप

छाज एक मुख्य कृषिय उपकरण था, जिसे अनाज को पछारने के लिए प्रयोग में लाया जाता था। जो अनाज और भूसे को हवा में उड़ा कर अलग-अलग करने के काम आता था।[22] अमरकोश में (winnowing basket) के लिए 'शुर्पम्' और 'प्रस्फोटनम्' शब्दों का प्रयोग किया गया है।[23]

3.10) चालनी

झारना भी एक कृषि उपकरण था इसका उपयोग कर अनाज और छोटे-छोटे कंकरो को अलग-अलग किया जाता था। अमरकोश में झारनो को 'झरना','चालनी', और 'तितिउ' आदि नामों से भी वर्णित किया गया है। इस उपकरण द्वारा आटे में से तूस व दाने भी अलग किए जाते थे।

3.11) कोल्हूँ

कोल्हूँ का वर्णन भी साहित्यिक साक्ष्यों में मिलता है। इस प्रक्रियाँ में वर्तमान की तरह बैलों के द्वारा कोल्हू में संभवत: गन्ना और तिलहन की पिराई की जाती थी।[24] जिसके द्वारा 'शर्करा', 'गुड' एवं 'तेल' का उत्पादन भी किसानों द्वारा किया जाता था।

3.12) रस्सियाँ

कृषि कार्यों में अन्य उपकरणों के साथ-साथ रस्सियों की आवश्यकता होती है। अमरकोश में अनेक प्रकार की रस्सियों का वर्णन किया गया है रस्सियां चमड़े तथा सन् से वर्तमान की तरह बनाई जाती थी।[25]

3.13) बैलगाड़ी

प्राचीन काल से लेकर आज तक बैलगाड़ी एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान लाने और ले जाने का प्रमुख साधन रही है। गुप्त काल में भी बैलगाड़ी का उपयोग बोझा, खाद, उर्वरक तथा अनाज एवं भूसा आदि ढोने के लिए किया जाता था। बैलगाड़ी के मुख्य भागों में पहिये एवं धूरी जुआ तथा ढाँचा होते थे। इस उपकरण को कुशल तकनीकी के साथ तैयार किया जाता था।[26] बैलगाड़ी निर्माण में लकड़ी और लोहे को प्रयोग में लाया जाता था।[27] कई साहित्यिक और पुरातात्विक साक्ष्यों में बैलगाड़ी द्वारा खेतों में भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए खाद एवं उर्वरक डालने के कार्यों का प्रयोग करने का विवरण मिलता है। अमरकोश में बैलगाड़ी के लिए 'शटक' और 'कलीवे' नामों का उल्लेख आया है।[28] यह वाहन भी तत्कालीन समय की वाहन सुविधा के क्षेत्र में विज्ञान और तकनीक के विकास की पुष्टि करता है।

4. कृषि तकनीकी

गुप्तकालीन कृषि तकनीकी श्रेष्ठ अवस्था में थी। हल, हाल, फाल, जुआ, शैल, कुदाल, कुठार, गिरडी, सुहागा, टोकरी, छलनी, मूसल, उखल, मेढ़ इत्यादि प्रमुख उपकरणों द्वारा सफलतापूर्वक कृषि कार्य किया जाता था। कई प्रकार की कृषि विधियों द्वारा अपना कार्य सुचारू रूप से करते थे। वह विभिन्न प्रकार के तकनीकी उपकरणों की सहायता से ही जुताई-बिजाई, रोपाई, कलम चढ़ाना, निराई, गुड़ाई, लावणी, मढ़नी और निकार इत्यादि विधियों की सहायता से कृषि उत्पादन करते थे।

4.1) जुताई

गुप्तकालीन पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों द्वारा ज्ञात होता है कि तत्कालीन कृषिय कार्यों में विज्ञान एवं तकनीकी उपकरणों द्वारा कृषि क्षेत्र का विस्तार निरन्तर बढ़ता जा रहा था। भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए विभिन्न उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। किसान लगभग चार प्रकार के हलों द्वारा बैलों के साथ भूमि की जुताई करते थे। साक्ष्यों में किसान के लिए 'कृषक' और 'कुटुम्बी' शब्दों का प्रयोग किया गया है। हल खींचने वाले बैलों को 'हालिक' कहा जाता था।[29] बैलों और हल द्वारा खेत जोतने वाले कृषक को 'सैरिक' कहा जाता था। कृषि जुताई करने वाले कृषको को अहल (बिना हलवाले) तथा सूहल (हलवाले) के नामों से जाना जाता था। जिन काश्तकारों का हल पुराना होता था उन्हें 'दुहल' कहा जाता था। काश्तकार जुताई से पूर्व मौसम, ऋतुओं एवं काल तथा अन्य परिस्थितियों की गणना तथा प्रमुख उपकरण हल के सम्मान में 'सीरयज्ञ' पूजोत्सव मनाते थे।

जुताई कृषि प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है इसके बाद ही अन्य कृषि कार्य शुरू होते है। वैज्ञानिक दृष्टि से जुताई के लिए वर्षा ऋतु को सबसे उपयुक्त माना गया है। 'पावस' (वर्षा) की प्रथम आगमण के साथ ही काश्तकार खेतों में जुताई शुरू कर देते थे। खेतों में तीन-चार बार तक हल की जुताई की जाती थी जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ने से अच्छी उपज होती थी। जुताई किए हुए खेतों को कृषि और धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता था जुताई के पश्चात् खेतों की साफ सफाई का ध्यान रखा जाता था। विष्णु पुराण में जुताई किए खेतों में मूत्रोत्सर्ग करना वर्जित माना गया है।

4.2) बिजाई

गुप्त काल में अधिकतर भूमि को कृषि योग्य बनाए जाने के लिए विभिन्न उपकरणों एवं वैज्ञानिक विधियों की सहायता ली जाती थी। हल एवं बैलों द्वारा समयानुसार भूमि की जुताई के पश्चात् बीजारोपण किया जाता था व बीज बिखेरकर पुनः जुताई की जाती थी। बिजाई एवं रोपाई तकनीकों के लिए वर्षा ऋतु को उपयुक्त माना जाता था। अमरकोष में बिजाई अर्थात 'बीजवपन' को 'परिवाय' भी कहा गया है।[30] गर्मी, सर्दी एवं बसंत ऋतुओं में भी अलग-अलग प्रकार की फसलें उगाई जाती थी। कालिदास के अनुसार सावन में बीजारोपण के बाद कार्तिक मास में बीजों के फलों को काटा जाता था।[31]

4.3) रोपाई

गुप्तकाल में प्रचलित कृषि विधियों में बिजाई के साथ-साथ रोपाई को भी महत्वपूर्ण माना जाता है। तत्कालीन कृषि विधियों में बीजवपन के साथ-साथ रोपाई भी की जाती थी। रोपाई विधि द्वारा मुख्यत: धान (paddy) लगाए जाते थे। रोपाई द्वारा उगाए गए धानों अथवा चावल में से बिजाई द्वारा उगाए जाने वाले चावलों की अपेक्षा अधिक अन्न का उत्पादन होता था।[32]

4.4) उर्वरक एवं खाद

गुप्तकाल में कृषि प्रक्रिया में उर्वरक अथवा खाद आदि का विशिष्ट महत्व था। काश्तकार वैज्ञानिक विधियों, उर्वरकों, खादों के प्रयोगों, अंकुरण, रोपण तथा कलम रोपित विधियों के अनुसार कृषि उत्पादन कार्य करते थे। प्राचीन काल से ही कृषिय साक्ष्यों में उर्वरक एवं खाद की जानकारी मिलती है। गुप्तकाल में भी किसान भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए कई प्रकार के उर्वरक एवं खादों का उपयोग करते थे, जिसकी पुष्टि विभिन्न साहित्यिक एवं पुरातात्विक साधनों के द्वारा होती है। किसान कृषि योग्य भूमि सेवार्षिक तीन फसलों का उत्पादन लेते थे 1. ग्रीष्म, 2. शारदीय और 3. बसंती इसके कारण भूमि की उर्वरा शक्ति समाप्त हो जाती थी।काश्तकार खाद एवं उर्वरक का भी तकनीकी विधियों द्वारा प्रयोग करते थे।काश्तकार को ज्ञात था कि खाद एवं उर्वरक बीज के साथ डालना है। वह कठोर भूमि को खोदकर उसमें खाद डालकर विशेष विधियों द्वारा उसे उपजाऊ बनाते थे। कूड़े कर्कट द्वारा उर्वरक एवं खाद का निर्माण विशेष तकनीक द्वारा उसे गलाकर, सड़ाकर एवं धूप में सुखाकर किया जाता था। तकनीकी प्रक्रिया द्वारा तैयार इस उर्वरक एवं खाद को बैलगाड़ियों द्वारा उन खेतों में डाला जाता था जिनकी उर्वरा शक्ति कई फसलों के लगातार उत्पादन से समाप्त हो गई थी।[33]

वराहमिहिर ने भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने के लिए हरी एवं गोबर की खादों का प्रयोग किए जाने का उल्लेख किया है। उनके अनुसार उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए खेतों में हल जोतकर तिल की बिजाई करनी चाहिए और जब पौधा बड़ा हो जाए तो हल से खेत को जोत कर पौधों को खेत में ही गाढ़कर सडाय़ा जाता था इस प्रकार हरी खाद की आपूर्ति कर जमीन की उर्वरा शक्ति बढाई जाती थी। पशुओं के गोबर और मलमूत्र को सड़ाकर एवं गलाकर खाद के रूप में उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए इसका प्रयोग करना चाहिए जिसको 'करीषा' या 'कर्षी' भी कहा जाता है। तत्कालीन साहित्य में गोबर एवं मुत्रादि

उर्वरकों को ग्रीष्म, सर्दी एवं वर्षा ऋतु में गलाकर, सुखाकर एवं सड़ाकर उर्वरक के रूप में प्रयोग करने का उल्लेख मिलता है।

4.4.1) बीजोपचार

कृषि कार्यों में बीज-अंकुरण प्रक्रिया अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अभिलेखीय और पुरातात्विक साक्ष्यों में विभिन्न विद्वानों ने बीज-अंकुरण तकनीक का वर्णन किया है। बीजांकुरण तकनीक मिट्टी में बीजों को डालने से पहले एवं बाद की प्रक्रिया है। जिसमें खाद एवं उर्वरकों के अभाव में भी अच्छे पौधे तैयार होते हैं।

वराहमिहिर ने उर्वरकों एवं खादों द्वारा बीजों की अंकुरण शक्ति में वृद्धि करने के कई उपायों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार एक 'आढक' तिल के साथ दो ओढक भेड़-बकरी का मल, एक प्रस्थ जौं का चूर्ण तथा एक तोला गो-मांस मिलाकर उसके मिश्रण को एक द्रोण पानी में सात रातों तक सड़ानें के बाद ही पौधों की जड़ों में डालने से पौधे तेजगति से बढ़ते हैं।[34] एक अन्य तकनीकी प्रक्रिया में वराहमिहिर ने बताया है कि बीजांकुरण के लिए बीजों को घी में 'लपेटने' के पश्चात् दूध में डुबोकर प्रतिदिन सुबह होने पर निकालकर सुखा लेना चाहिए और इस प्रकार यह वैज्ञानिक प्रक्रिया एक महीने तक दोहराने के पश्चात् सही समय पर खेतों में डाल देना चाहिए।[35]

4.4.2) वृक्षों का उपचार

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में वृक्षों की बीमारियों तथा उनके उपचारों के बारे में लिखा है। उनके अनुसार वन-उपवनों में पौधों में कई प्रकार की बीमारियाँ होती है। उन्होंने कहा कि खराब पेड़ों की शाखाओं को चाकू से काटकर उन पर घी और मिट्टी का लेप लगाना चाहिए जिससे बीमारी की रोकथाम हो सके। खराब टहनियों को काटकर उन पर दूध और पानी का छिड़काव किया जाता था। उन्होंने लिखा है कि विभिन्न बीजों को बुआई से पहले हर प्रकार की बीमारियों से बचाने के लिए बीजों को दूध तथा पानी में कुछ चावल, मटर व तिल का आटा मिलाकर भिगोना चाहिए जिससे अंकुरित पौधों में बीमारी व संक्रमण ना फैले।

4.5) पौधारोपण

बृहत्संहिता में वन, उपवन के लिए पौंधारोपण तकनीक का वर्णन किया है। वराहमिहिर के अनुसार रोपण एवं कलम विधि द्वारा वन उपवनों में वृक्ष लगाए जाते थे। उन्होंने कटहल, केला, जामुन, अनार एवं अंगूर के पेड़ों व बेलों

की कलम काटकर दूसरे पेड़ों पर चढ़ाने का वर्णन किया है, जो तकनीकी रूप से वर्तमान में भी किया जाता है। कलम द्वारा पौधा लगाने की पद्धति बहुत ही वैज्ञानिक और तकनीकी पूर्ण है। उन्होंने अलग-अलग मौसमों के अनुसार पौधा या शाखा लगाने की तकनीक का वर्णन किया है। वराहमिहिर के अनुसार जिन पौधों में शाखा न हो उन्हें पतझड़ तथा जिनमें शाखा हो उन्हें शीत ऋतु जिनमें तने बड़े हो उन्हें वर्षा ऋतु में एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर रोपितकर देना चाहिए।पौधों को एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाने से पहले पौधों के तने पर घी, तेल, मोम, दूध और गोबर लपेटना चाहिए।[36]

बृहत्संहिता के अनुसार जामुन, अंजीर, अंगूर, अनार तथा कटहल आदि के पौधों के लिए भूमि आर्द्र होनी चाहिए। पौधारोपण के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि दो पेड़ों के बीच में 18 फीट से अधिक दूरी हो ताकि उसका पूर्ण विकास हो सके।

4.6) निराई एवं गुड़ाई

काश्तकार भूमि की जुताई एवं 'बीज वपन' या रोपण के पश्चात् निराई एवं गुड़ाई (weeding) विधियों द्वारा फसलों और पौधों की देखरेख करते थे। 'बीजवपन' एवं रोपाई के पश्चात् अंकुर फूटने और पौंधों के बढ़ने के साथ-साथ खरपतवार तथा अन्य पौधे उग जाते हैं। फसलों में सिंचाई के बाद इस खरपतवार को कृषक खुरपी, कुदाल या हाथ की सहायता से उखाड़ देते थे। निराई-गुड़ाई की इस तकनीक की प्रक्रिया के उपकरणों का वर्णन अमरकोश में भी किया गया है। इसके पश्चात् खाद एवं उर्वर को और सिंचाई की सहायता से अच्छी फसलें उत्पन्न होती थी। बीजवपन और रोपाई के पश्चात् खुरपी द्वारा निराई करने से खरपतवार नष्ट होने के कारण सिंचाई के साथ साथ ही पूरी वैज्ञानिक प्रक्रिया से पौधे द्रुतगति से बढ़ते थे।[37] जिससे कृषि की उत्पादन क्षमता भी बढ़ जाती थी।

4.7) लावणी

लावणी प्रक्रिया में फसलों की कटाई का कार्य दांत्र (लावित्रम) द्वारा किया जाता था। लावित्रमं अथवा दांत्र एक महत्वपूर्ण कटाई उपकरण था जिसे हँसिया अथवा दांती भी कहा जाता है। साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों में फसल काटने की इस पूरी तकनीकी प्रक्रिया को 'लवन' कहा जाता था। 'लावणी' के पश्चात् फसलों को छोटे गटरों मे बांधकर बैलगाड़ी में रखकर खलिहानों में लाया जाता था। साहित्य में कई स्थानों पर गेहूँ गॉहकर 'लावणी' करने की प्रक्रिया का वर्णन है।[38]

4.8) मढ़णी एवं गँहाई

गुप्तकालीन काश्तकार जुताई, रोपाई, बीजवपन तथा तथा निराई के पश्चात् सिंचाई और उर्वरकों की सहायता से फसलें पक जाने के पश्चात् लावणी के बाद गँहाई की तकनीक द्वारा अन्न वभुसा अलग-अलग निकालते थे। लावणी के पश्चात् फसलों को खलियानों में इकट्ठा करके फसलों को गोलाई में फैला कर मढ़नी अर्थात गहार की जाती थी। इसमें बैलों को फसलों के ऊपर गोलाई अर्थात मेढ़ विधि से घुमाया जाता था। बैलों के खुरो से कटकर अनाज एवं भूसा अलग हो जाता था। अमरकोष में मढ़णी को 'पव:' कहा गया है और यह विधि वर्तमान में भी भारत में अपनाई जाती है।[39]

4.9) निकार

मढ़नी के दौरान अनाज एवं भूसा कटकर अलग होने के पश्चात् अन्न एवं भूसा अलग-अलग कर दिया जाता था।[40] भू से से अन्य को अलग करने की प्रक्रिया को निकाह कहा जाता था। इस प्रक्रिया में सम्भवत: सूप, छाज और (प्रस्फोटनम्) पिटौ आदि उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। 'चालनी' और 'छालनी'[41] जैसे उपकरणों का भी उल्लेख अमरकाश में किया गया है। इन उपकरणों द्वारा निकार प्रक्रिया में अनाज से भूसा और कंकड़ व पत्थर अलग किए जाते थे। अनाज को पिछोड़ने एवं बरसाने के लिए 'उत्कार' एवं 'निकार' शब्दों का प्रयोग किया गया है।[42]

4.10) अन्नागार

निकार के पश्चात् कृषक इसे कृषि कार्य का समापन मानकर अन्न सुरक्षित रखने और भूसा सहेजने के पश्चात् धार्मिक अनुष्ठान भी करते थे।[43] गुप्त काल में अत्यधिक अन्न का उत्पादन किया जाता था कृषक अतिरिक्त अनाज को विशेष विधियों द्वारा अन्नागारों में रखते थे। कृषकों को अनाज सुरक्षित रखने की कई साधारण प्रकार की जानकारी थी।[44] कृषक अनाजो के ढेरों को तराजू द्वारा तोलकर कोष्टागारो में सुरक्षित रखते थे। कोष्टागारो का निर्माण विशेष तकनीक द्वारा अनाजों को इकट्ठा रखने के लिए किया जाता था। कालिदास ने अन्न-ढोने भार ढोने वाले ऊंट, बैल, खच्चर आदि पशुओं का वर्णन किया है। जिनके द्वारा अनाज, भूसा, खाद, एवं उर्वरक ढोये जाते थे। कृषि तत्कालीन अर्थ व्यवस्था का आधार थी जिसमें प्रमुख योगदान उनकी भूमि पैमाइश निर्धारण, कृषि उपकरणों, कृषि तकनीकों एवं विशिष्ट उत्पादनों का था। काश्तकार राज्य की आवश्यकता हेतु अत्यधिक अन्न का उत्पादन करते थे।

गुप्तकाल में कृषि को राजाश्रय भी प्राप्त होता था क्योंकि गुप्त शासक यह भलीभाँति जानते थे कि काश्तकारें की समृद्धि से ही राज्य की समृद्धि सम्भव है तथा राजनीति में सुदृढ़ता, शांति स्थापना तथा स्थायित्व का आधार जनता की खुशहाली व समृद्धि पर निर्भर होता है।

प्रस्तुत अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन कृषि विज्ञान एवं तकनीकी आधुनिक समय में भी प्रासंगिक है कृषक वर्तमान में भी तत्कालीन सिंचाई उपकरणों, कृषि उपकरणों कृषि, तकनीकी को तथा खाद एवं उर्वरक का प्रयोग फसलों में आधुनिक विधियों के साथ करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, **हिस्ट्री ऑफ साईन्स एण्ड टेक्नोलोजी ड्यूरिंग गुप्ता पीरियड**, मुम्बई, 1994, पृ. 6
2. एम. एस. रन्धावा, **ए हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन इण्डिया**, नई दिल्ली, 1980, पृ. 478; *अमरकोश,* वासुदेव शर्मणा, मुम्बई, 1934, 2/9/23-24
3. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, उपर्युक्त, पृ. 6
4. एस. के. मैती, *इकोनोमिक लाईफ ऑफ नार्दन इंडियन इन द गुप्त पीरियड,* कलकत्ता, 1957, पृ. 35, 58,
5. *कौटिल्य अर्थशास्त्र,* आर. शामशास्त्री, सं. मैसूर गवर्नमेंन्ट ओरिऐन्टल लाइब्रेरी सीरीज, मैंसूर, 1929, 2/20/ पृ. 106
6. दिनेशचन्द्र सरकार, **सिलेक्ट इन्सक्रिप्शन्सबियरिंग ऑन इन्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन,**-भाग-1 कलकत्ता, 1942, पृ. 349
7. एस. के. मैती, इकोनोमिक लाईफ, उपर्युक्त
8. *अमरकोश,* 2/8/92। (ई-पुस्तकालय)
9. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, उपर्युक्त, पृ. 6
10. *अमरकोश,* 2/10/27-31
11. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, उपर्युक्त, पृ. 6
    (*01 पल=48 ग्राम (शोध गंगा : सम्पादन, अनुवाद एवं आलोचनात्मक योग सार संग्रह)
12. *अमरकोश,* 2/9/13-14।
13. *रघुवंशम्,* श्रीमद्गुरुनाथ, विद्यानिधि, भट्टाचार्य, (सम्पा.) कलकत्ता, 3/34।

14. रंगस्वामी शर्मा, (सम्पा.), *बृहस्पति स्मृति*, बडोदा, संवत् 1998, 8/79-80।
15. देवेन्द्र कुमार गुप्ता, एवं एस. एन. सिंह, *प्राचीन भारत में व्यापार*, जयपुर, 2009, पृ. 24।
16. *अमरकोश*, 2/9/13, 14।
17. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, **हिस्ट्री ऑफ साईन्स** पूर्वोक्त, पृ. 21
18. *अमरकोश*, 2/9/12, 13।
19. उपरोक्त, 2/9/15।
20. उपरोक्त, 2/9/13, 23।
21. उपरोक्त, 2/9/15।
22. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, **हिस्ट्री ऑफ साईन्स** पूर्वोक्त, पृ. 54
23. *अमरकोश*, 2/9/26।
24. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, **हिस्ट्री ऑफ साईन्स** पूर्वोक्त, पृ. 24-25 एवं 54
25. *अमरकोश*, 2/9/26।
26. अच्छे लाल, *प्राचीन भारत में कृषि* (प्रा. काल से 650 ई. तक), वाराणसी, 1980, पृ. 175।
27. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, **हिस्ट्री ऑफ साईन्स** पूर्वोक्त, पृ. 24
28. *अमरकोश*, 2/8/52।
29. उपरोक्त, 2/9/64।
30. *रघुवंशम्*, 19/57।
31. सीताराम चतुर्वेदी, *कालीदास ग्रन्थावली*, कालीदास ग्रन्थावली प्रकाशन, काशी, संवत् 2016, (ई-पुस्तकालय), पृ. 42।
32. पण्डित श्री अच्युतानन्द, झा, शर्मा, (सम्पा.), *बृहत्संहिता*, विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला चौखम्बा, वाराणसी, वि. सं. 2015, 55/2।
33. *बृहत्संहिता*, 15/17-18।
34. *बृहत्संहिता*, 55/6-7
35. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, **हिस्ट्री ऑफ साईन्स,** पूर्वोक्त, पृ. 26
36. *बृहत्संहिता*, 55/6-7
37. *अमरकोश*, 2/9/12, 3/2/35।
38. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, **हिस्ट्री ऑफ साईन्स,** पूर्वोक्त, पृ. 24

39. अमरकोश, 3/2/24।
40. उपरोक्त, 2/9/15।
41. उपरोक्त, 2/9/26।
42. उपरोक्त, 2/9/36।
43. उपरोक्त, 2/9/22।
44. सन्तोष शरण एवं रविन्द्र एन. सिंह, **हिस्ट्री ऑफ साईन्स** पूर्वोक्त, पृ. 24

डॉ. धर्मराज शिवाजी पंवार
सहायक प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर

❑❑❑

विष्णु मंदिर : चौहानकालीन मूर्तिशिल्प का नवीन अन्वेषित केन्द्र : बीकमपुर (बीकानेर, राज.)

डॉ. सुखाराम • डॉ. कोमलकान्त शर्मा

बीकानेर जिले के पश्चिम में स्थित कोलायत उप-खण्ड में बीकानेर व जैसलमेर की सीमा पर स्थित बीकमपुर गांव जाने के अवसर पर हमें इस मंदिर की जानकारी मिली। यह गांव बीकानेर जिला मुख्यालय से 144 कि.मी. दूर तथा 27°45' देशान्तर व 72°1' अक्षांश पर स्थित है।[1] इस गांव में भाटी राजवंश के मध्यकालीन किले की पश्चिमी दीवार के पास एक प्राचीन मंदिर[2] के अवशेष प्राप्त हुए। यह मंदिर पूर्णतः जर्जर अवस्था में है और इसके गर्भगृह में स्थानक विष्णु की मूल भग्न प्रतिमा[3] आज भी स्थापित है।

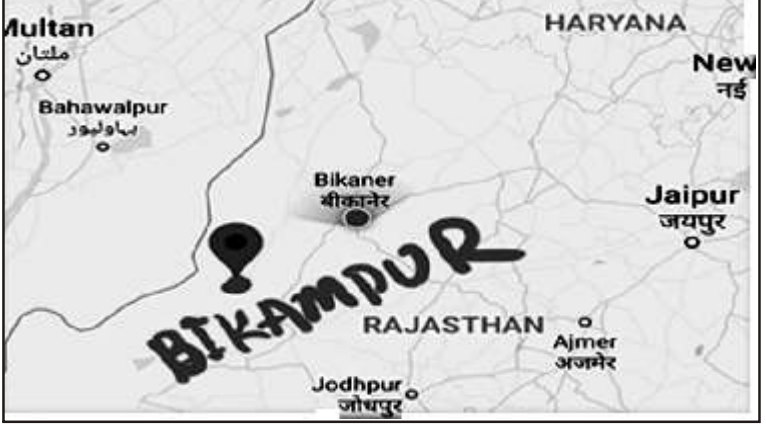

विष्णु-मंदिर की अवस्था को देखने से पता चलता है कि मूल मंदिर ने समय के कई रंग देखे हैं और वह एक से अधिक बार बना-बिगड़ा और फिर बना है।

फलक-1 गर्भगृह

फलक-2 मन्दिर में प्रतिष्ठापित स्थानक विष्णु की प्रतिमा

गर्भगृह में स्थापित विष्णु मूर्ति व अन्य भग्न मूर्तियाँ तथा गर्भगृह के द्वार के आगे अंतराल हेतु प्रयुक्त स्तम्भ की कुछ विशेषताएँ, मूल मंदिर का समय नवीं सदी के अंतिम व दसवीं सदी के प्रारम्भिक चरण में निर्मित होने की ओर इशारा करती हैं। गर्भगृह में स्थापित स्थानक विष्णु मूर्ति, मंदिर गर्भगृह की पूजा में प्रयुक्त मूल प्रतिमा रही होगी, जिससे यह मंदिर विष्णु को समर्पित माना जा सकता है।

स्तम्भ

इस प्रकार के लक्षण-विशेषता वाले स्तम्भ 'महामारू' शैली के मध्यक्रम में दिखाई देते है। आधार में स्तम्भ चौकोर हैं परन्तु पेडेस्टल (पीठ) व कुम्भी (Capital) जैसी रचना स्पष्ट नहीं है। स्तम्भ अक्ष मध्यक्रम में अठपहलू आकार तथा कीर्तिमुख अलंकरण से युक्त है। इसके उपर अवनालिका अलंकरण लटकती घंटाकृतियाँ जैसे कि हर मंदिर (ओसियाँ) की है, दर्शनीय है। आगे समतल अक्ष और फिर सिरावट तथा सबसे उपर भारवाही ब्रेकेट (Corbet) जिसे वास्तु शास्त्रीय ग्रंथों में 'मुस्टबंध' नाम दिया है, बनी है। ऐसी ही *पोतिका* आबानेरी स्थित नकटी माता मन्दिर तथा अन्य तत्कालीन मंदिरों में भी दिखाई देती है।

शिखर

संभवत: शिखर को मूल सामग्री से पुन:निर्मित किया गया है। दाएँ ओर मध्यलता के बाद एक 'प्रतिलता', 'सलिलांतर' व 'कर्णलता' बनी है जिस पर पाँच कर्ण आमलक दिखाई देते हैं। वहीं बाएँ ओर दो प्रतिलता व एक कर्णलता है। कर्णलता पर चार कर्ण आमलक है। शिखर-स्कन्द पर रत्न-अलंकरण दिखाई देते हैं। शिखर लाटिन (एकाडण्क) प्रकार का शेखरी-शिखर है जिसमें चार उरू-शृंग व कुछ (4) शृंग रचनाएँ बनी हैं। इस प्रकार के शिखर दसवीं सदी में बनने प्रारम्भ हुए थे। सामने स्तम्भ युक्त राधिका, सुकनासिका बनी है। जिसमें किसी देवता की मूर्ति नहीं है। शिखर में ग्रीवा के बाद 'एक कमल सारिका' (आमलक) 'केन्द्रिका' तथा उपर कलश दिखाई देता है। कलश का घटकर्णाण्डक[4] स्पष्ट दिखाई देता है। उपर की संरचना (बीजपूरक) भंग हो चुकी है। इस प्रकार के शिखर को 'मूलमंजरी' वाला शृंग व उरूशृंग युक्त शेखरी-शिखर वर्णित किया जा सकता है।

मूर्तियाँ

धरातल से शिखर की कुल लम्बाई लगभग 20 फीट है। पुन: संयोजित इस मंदिर के शिखर में उरूशृंग के नीचे बनी तीन रथिकाओं में मूर्तियाँ दिखाई देती हैं जो पूर्व के मूल स्थान से विलग हैं। मंदिर शिखर के दक्षिणी दिशा वाली ताख में एक भग्न मूर्ति है जो संभवत: किसी दिक्पाल की प्रतीत होती है, जिसके गले में मनकों युक्त मोटा कण्ठहार और कटि प्रदेश का आभूषण दिखाई देते है। इसका समय लगभग 9वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। क्योंकि वाहिका में गोल अर्द्ध स्तम्भ है जो 9 वीं सदी की विशेषता स्वीकार की जाती है।

शिखर के पूर्वी ताख में गरूड़धारी विष्णु की खण्डित प्रतिमा है, जिसमें गरूड़ के उपर चतुर्भुज विष्णु बनाए गए हैं। जिस वाहिका (ताख) में मूर्ति बनी है, वह ध्यान देने योग्य है। इसके स्तम्भ चौकोर हैं तथा उपर पदमपत्र अलंकरण दिखाई देता है। इस प्रकार के स्तम्भ आबानेरी के मूर्तिशिल्प में भी दिखाई देते है। जिनका समय गोल स्तम्भों से पूर्व का स्वीकारा जाता है।

शिखर की पश्चिमी दिशा की ताख में भी एक खण्डित मूर्ति स्थित है। इसके आयुध भी खण्डित है परन्तु स्थानक अवस्था की इस मूर्ति को देखने से यह प्रतीत होता है कि संभवत: यह सूर्य देवता है जिनके उपर उठे दोनों हाथों में पूर्ण खिले सनाल कमल रहे होंगे। मेखला स्पष्ट बनी दिखाई देती है। उपान अस्पष्ट से दिखाई देते हैं। नीचे पार्श्व में चार मानव आकृतियाँ हैं। इनमें से एक आकृति हयग्रीव अश्विनी पुत्र की प्रतीत होती है जो उनके सारथी की भाँति है।

शेष आकृतियों को दण्डपुरुष व पिंगल के रूप में समीकृत किया जा सकता है। यदि इस प्रतिमा रूप की समता देखें तो चाहमान कला केन्द्र हर्षनाथ की सूर्य प्रतिमा[5] में देख सकते है।

स्थानक विष्णु

गर्भगृह के अंदर स्थापित प्रतिमा ठीक वैसी ही है जैसी अन्य प्रतिहार-चाहमान कला केन्द्रों से प्राप्त होती है। स्थानक अवस्था में चतुर्भुज विष्णु पर चाहमान कला की कोमलता दिखाई देती है। इनके दाएँ हाथ उपर उठे हैं। पीछे के हाथ में गदा स्पष्ट दिखाई देती है। गदा का कुंभ परवर्ती काल के बने कुंभों से कम भारी है। चौहान कला के केन्द्र अनंतदेश (हर्षगिरी) से प्राप्त विष्णु प्रतिमा[6], चाकसू से प्राप्त विष्णु प्रतिमा[7] तथा राजोरगढ़ (अलवर) से प्राप्त विष्णु प्रतिमा[8] से तुलना करने पर इसे चाहमान-प्रतिहार कला का एक अच्छा उदाहरण मान सकते हैं। बाएँ उपर उठे हाथ में चक्र दिखाया है जबकि दूसरा बायाँ हाथ भग्न है। संभवत: इसमें शंख धारित रहा हो। उपर मुख मण्डल के पीछे कमल प्रभापुंज तथा ब्रह्मा व शिव का अंकन है। सिर पर किरीट मुकुट, गले में एक कंठहार वक्ष के मध्य कोस्तुभ मणि व श्रीवत्स चिह्न है, जो हर्षनाथ की विष्णु प्रतिमा की भाँति है। कर्ण में मकर कुण्डल व चारों ओर वैजयन्ति माला का अंकन है। देव का यह दिव्य मंगल विग्रह है जैसे शरद का पूर्ण चन्द्र। जंघा पर एकल कड़ियों की शृंखला ठीक उसी प्रकार से उकेरी गई है जैसे कि आबानेरी मंदिर में स्थापित अग्नि प्रतिमा में है। ये सभी विशेषताएँ 9वीं या 10वीं शताब्दी में इस मूर्ति का निर्माण हुआ था, ऐसा संकेत करती हैं। मूर्ति की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता दाएँ हाथ का अभय मुद्रा में होना है जो सामान्यत: वरलही दिखाई देती है। इस प्रकार की 10वीं सदी की प्रतिमा पंजाब-हरियाणा से भी प्राप्त हुई है।[9] जो अवलोकनार्थ यहां प्रस्तुत की गई है।

फलक-3

इस क्षेत्र पर इस काल की राजनीतिक सम्बद्धता देखी जाए तो पता चलता है कि यह क्षेत्र चौहानों के अधीनस्थ था। साहित्य[10] तथा अभिलेखों[11] में उन्हें सपादलक्ष देश का शासक कहा है।[12] *पृथ्वीराज विजय* से इंगित होता है कि वासुदेव चौहान की राजधानी अनन्त देश थी। कुछ लेखों[13] में चाहमान सामंत शासक का सम्बन्ध अनन्त देश व राजधानी अहिच्छत्रपुर तथा अनेक साहित्यिक ग्रंथों में उनके द्वारा शासित क्षेत्र को जांगलदेश की संज्ञा दी है। जांगलदेश में निश्चय ही बीकानेर का क्षेत्र शामिल है। ऐसे में यह मंदिर चौहान शासकों द्वारा बनवाया प्रतीत होता है। अब प्रश्न उठता है कि ऐसा कौनसा चौहान शासक रहा होगा जिसने यह मंदिर बनवाया? वर्तमान साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट करना मुश्किल है परंतु आशा है कि इतिहास मर्मज्ञ इस पर भविष्य में प्रकाश डाल सकेंगे।

संदर्भ

1. बीकमपुर की भौगोलिक स्थिति
2. देखें, फलक-1
3. देखें, फलक-2
4. *जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी,* वो. XV.Nos. 1.4 ए 197ए चित्र-1,
5. कोमलकान्त शर्मा, *मत्स्य जनपद क्षेत्र की कला एवं पुरातत्व*, 2011, फ.-38अ, 38बी.
6. वही, फ.-21अ
7. वही, फ.-21बी
8. वही, फ.-22बी
9. देखें, फलक-3
10. सुरथोत्सव, द्वितीय, पृ. 46, सुकृत संकीर्तन, द्वितीय, 43
11. ए. ई. जिल्द 2, पृ. 422-3, 1912, पृ. 196, आसरि, जिल्द 6, 21वाँ फलक विष्णु धर्मोत्तर पुराण-3
12. कोमलकान्त शर्मा, वही, फ.-3
13. चौहान इतिहास के लिए देखें, विशुद्धानन्द पाठक, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास*, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, सं. 2002, पृ. 436

डॉ. सुखाराम • डॉ. कोमलकान्त शर्मा

सहायक आचार्य इतिहास

राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान

प्राचार्य, रा.उ.मा.वि., दादाल, जालोर, राजस्थान

❑❑❑

मारवाड़ में तेल उद्योग में प्रयुक्त उत्पादन पद्धति: 17वीं-18वीं शताब्दी के विशेष सन्दर्भ में

• डॉ. मधु कुमावत

मारवाड़ राज्य का तत्कालीन समय में महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ अनेक उद्योग धंधे प्रचलित थे जो कि दक्ष दस्तकारों द्वारा संचलित किये जाते थे। तेल उद्योग उस समय प्रचलित उद्योगों में एक महत्वपूर्ण उद्योग था जिसे तेली नामक दस्तकार वर्ग द्वारा संचालित किया जाता था। तेल घाणी नामक यंत्र में निकाला जाता था। तेल उद्योग में प्रयक्त उत्पादन पद्धति हस्तनिर्मित थी क्योंकि तत्कालीन समय में वर्तमान की तरह कारखानें नहीं थे एवं इन उद्योंग में जो तकनीक प्रचलित थी वह प्राचीन काल से चली आ रही थी इसीलिये दस्तकार वर्ग द्वारा हस्तनिर्मित औजारों द्वारा सरल व परम्परागत तरीके से वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। राज्य द्वारा भी दस्तकारों को संरक्षण प्रदान किये जाने के उदाहरण हमें अनेक अभिलेखागारीय स्रोतों में मिलते है।

मारवाड़ राज्य राजस्थान के पश्चिम भाग में स्थित था जिसे संस्कृत शिलालेखों एवं ग्रंथों में मरू, मरूदेश, मरूमंडल आदि नामों से सम्बोधित किया गया।[1] मारवाड़ राज्य में अनेक उघोग धन्धे हमारे अध्ययन काल में प्रचलित थे। इन उद्योगों में मारवाड़ राज्य में दस्तकार वर्ग के लोगों के आत्मनिर्भर होने के प्रमाण हमें मिलते है। समाज के सभी वर्ग के व्यक्ति के लिये उसका कार्य एवं पेशा दोनों निश्चित होते थे जिसमें वह वंशानुगत रूप से लगा होता था। यद्यपि उनके कार्य करने की पद्धति एवं उपयोग में आने वाली सामग्री, उपकरण आदि परम्परागत थे परन्तु वे पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही उद्योग में कार्य करते करते अपने कार्य में दक्ष एवं प्रवीण हो जाते थे। हमारे अध्ययन काल में यद्यपि वर्तमान की तरह कारखाने नहीं होते थे परन्तु दक्ष दस्तकारों द्वारा हाथ से ही वस्तुओं का उत्पादन किया जाता था। उस समय प्राचीन काल से चली आ रही उत्पादन पद्धति का उपयोग किया जाता था।

17 वीं 18 वीं शताब्दी में मारवाड़ में अनेक उद्योग प्रचलित थे उनमें तेल उद्योग एक प्रमुख उद्योग था। इस उद्योग में 'तेली' नामक जाति के लोग संलग्न थे।[2] तेली के लिये संस्कृत साहित्य में तैलपायी अथवा तैलक शब्द आता है। *जालौर कोतवाली चबूतरा जमाबन्दी,* बही संख्या 757 में हमें उल्लेख मिलता है कि तेली भारमल देवा जालौर का एक प्रसिद्ध तेली था जो तेल निकालने में निपुण था।[3] *जोधपुर कोतवाली चबूतरा जमाबन्दी,* बही संख्या 884 में उल्लेख मिलता है कि जोधपुर कस्बे का घांची रायचंद लादु एक कुशल तेली था।[4] तेल सरसों, मुंगफली, तिल, अलसी आदि कई बीजों से निकाला जाता था। तेल निकालने हेतु जिस उपकरण का प्रयोग करते थे, उसे 'घाणी' कहा जाता था। घाणी संस्कृत की 'हन्' धातु से सिद्ध होता है। ठक्कर पेरू कृत वास्तु-सार के 'गृह—प्रकरण' में *घाणी* के लिये 'घानाए' शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा—

हल घाणाय सगड़मई अरहटठ
जंताणि कटई नह य।
पंचबरी खीर तरू एयाण
य कटठ वज्जिज्जा।। 146

घाणी काष्ठ का बनाया जाता था। राज्य द्वारा तेल उद्योग में संलग्न दस्तकारों को संरक्षण प्रदान किया जाता था। पुरादस्तावेज में वर्णन मिलता है कि राज्य द्वारा एक घांची को एक नई *घाणी* स्थापित करने के लिये *नजराना* दिया गया।[5] तत्कालीन दस्तावेज से ज्ञात होता है कि भोजा तेली ने वि.सं. 1834 जालौर कस्बे में एक घाणी स्थापित की थी।[6] तेल निकालने की क्रिया को *तेल पिलबो* या *घाणी कराबो* (घाणी करणम्) कहते थे। तेल निकालने की प्रक्रिया में अनेक शब्दावलिया प्रयोग में ली जाती थी। वह निम्नलिखित हैं—

खरथली—*घाणी* का जो आधार भाग होता था वह आधे से अधिक भूमि में गड़ा रहता था। इसके उपर वाला भाग गोल थाली के समान होता था, जिसे *खरथली* कहते थे। *खरथली* के मध्य भाग में गहरा खड्डा होता है, जिसे *नाल* या *छोभ* कहते थे। *नाल* की ऊपरी भित्ति में बंबूल की बनी पट्टियाँ लगाई जाती है जिन्हें *पाचरा* कहते थे। लाठ के घाणी में घुमने पर कम घिसे इसीलिये ही बंबूल की लकड़ी की पट्टियाँ लगाई जाती थी। *नाल* के नीचे का हिस्सा हांडी कहलाता था इसमें नीचे की ओर चारों तरफ आधा भाग *पाचरो* के वृत से दबा रहता था। *नाल* या ढेर में भारी काष्ठ (लकड़ी) की बनी 5 या 6 फीट लम्बी मजबूत लाठ रखी जाती थी।

मू'लो—लाठ के नीचे का भाग मल्ल खम्भ जैसा होता था। लाठ के नीचे का भाग *हांडी* में टिका होता था, उसे मु'लो (मूसल्याम्) कहते थे।

बगड़ी—मू'लो के पार्श्व भाग में लोहे का कड़ा पहना दिया जाता था उसे 'वगड़ी' (बन्ध+कटकी) कहते थे।

कण्या—बगड़ी से एक हाथ उपर लाठ में एक लोहे का कीला लगा रहता था, जिसकों पकड़कर आवश्यकतानुसार लाठ को नाल से बाहर निकाला जा सके। यह लोहे का कीला लाठ को निकालने में सुविधाजनक होता था। इस कीले को 'कण्या' कहते थे।

चूँली—लाठ के उपर का भाग शंक्ककार बनाया जाता था (पेन्सिल के समान ऊपर से नुकीला) जिसे *चूँली, चूंदी* या *छूँदी* कहते थे।

मांकड़ी—*चूँली* पर एक लघु सप्तर्षि के आकार का एक 7 बैंत लम्बा वक्र दंड रखा जाता था। जिसे 'मांकड़ी' कहते थे। *मांकड़ी* कभी-कभी दो अलग-अलग लकड़ी को जोड़कर भी बना ली जाती थी। ऊपर का भाग पाटली, *फाबा* या *पूठी* कहलाता था और उसके एक किनारे में छेद (वेध) करके उसमें बन्दर की पूंछ के समान दूसरी लकड़ी जोड़ी जाती थी। *पाटली* और लटकती हुई लकड़ी मिल कर *मांकड़ी* कहलाती थी। *पाटली* का नीचे छिद्र वाला हिस्सा लाठ पर स्थित होता था। घाणी में 'मांकड़ी' का महत्वपूर्ण स्थान था। इसके लिये लोक प्रचलित कहावत हैं—

'घट्टी रे चाकली र घाणी रे मांकड़ी'

अर्थात्—जिस प्रकार घट्टी में जहाँ से धान डालने हेतु गोल छिद्र होता है वहाँ *घाणी* में चोकोर लकड़ी लगी होती हैं जिसमें एक छिद्र होता हैं।[7] ये *मांकड़ी* के महत्व को दर्शाती हैं।

कण्यो—*मांकड़ी* के लटकते हुए पूंछ के समान दंड के नीचे के हिस्से से कुछ ऊपर दोनों और निकली एक लोहे की कील लगी होती थी—इसे भी 'कण्यो' कहते थे।

पाट—*घाणी* के बाहरी भाग को खण्ड कहते थे। *घाणी* के बाहरी भाग पर कमर से ऊपर लगा हुआ भारी काष्ठ-पट्ट बैल द्वारा खींचा जाता था जिसे *पाट* कहते थे।

माणक—पाट के बाहरी हिस्से पर 3'X4' फीट ऊँचा और 3' मोटा लकड़ी का दंडा लगा रहता था इसे 'माणक' कहते थे। इस पाट को स्थिर व दढ करने के लिये फाडी (लकड़ी का टुकड़ा) लगायी जाती थी।

पाट पर वजन के लिये भारी पत्थर रखे जाते थे जिससे लाठ द्वारा *घाणी* में अत्यधिक दाब पड़ता था और तेल निकालने में सुविधा होती थी, जिससे *पाट* को उलटने से बचाया जा सके क्योंकि इसके उलटने से बैल की मृत्यु भी हो सकती थी। *मांकड़ी* के नीचे वाले दण्डे पर लगे लोहे के 'कण्या' के समान *माणक* खम्बे के शीर्ष से लगभग कुछ नीचे एक कण्या होता था।

काना—*माणक थंबा* और *माकड़ी* को एक चमड़े या सूत की रस्सी से अथवा सांकल से बांध कर जोड़ देते थे। यह रस्सी *माणक थम्बे* व माकड़ी पर लगी कील (फण्या) पर बांधी जाती थी। *माकड़ी* और *माणक थम्बा* के सिरे आपस में मिलते नहीं थे। इनमें 10' व 12' इंच की दूरी रहती थी। पाट के आगे वाले हिस्से को मोटाई के समान एक लकड़ी का पट्ट लगा रहा था, जो *घाणी* की ओर वाले भाग में पाटे की ओर से कुछ लम्बा होता था। यह भी अर्धचन्द्राकार रूप का होता था और *घाणी* के सहारे घिसता हुआ चलता रहता था। इस लकडी के पट्टे को *काना* कहा जाता था। *काना* के किनारों पर दो लोह के कड़े लगे होते थे जिसके ऊपर साँकल लगी होती थी, जो बैल के कंधे पर लगे जुड़े (जुड़ा) से जुड़े रहते थे इसी की सहायता से बैल घाणी पर लगे *पाट* को खींचता था। घाणी खींचने के लिये 'बैल' (पशु) को सबसे उपयुक्त माना जाता था, क्योंकि इसे दम-खम वाला पशु समझा जाता था और बैल कई कोस (दूरी) चलने में निपुण था। इसे शिव का वाहक कहा जाता था।

फेरा—बैलघाणी के चारों और गोल-गोल घूमता रहता था इस गोल स्थान या जगह को 'फेरा' कहते थे।

कोणक्या—गोले घेरे में घूमते रहने से बैल को चक्कर न आये इसके लिये आँखों पर बाँस की बनी टोपियाँ या पकड़ा बांध दिया जाता था। बाँस से बनी टोपियों को 'आँखें या कोणक्या' कहते थे। इन पर चमड़ा चढा होता था।

झाँपण—दोनों कोणक्यों को आँखों पर ठहराने के लिये इन पर कपड़े की पट्टी बाँधी जाती थी, इस पट्टी को 'झाँपण' कहते थे।

दूणा—कहा जाता है कि कोई भी तेली घाणोट में बैल को पेशाब नहीं करने देता था और पेशाब को बर्तन में झेल लेते थे। इस बर्तन को 'दूणा' कहते थे। दूणा में लम्बी लकड़ी लगी होती थी, जिसे पकड़कर दूर खड़े बैल के मूत्र को दूणे में ले लिया जाता था क्योंकि अगर बैल घाणोट में मूत्र करता तो उसके फिसलने का भय रहता था। कई जगह घाणोट पर घास आदि बिछा दी जाती थी।

घाण—तेल निकालने के लिये एक बार में जो तिलहन *घाणी* में डाला जाता था इस राशि को 'घाण' कहते थे अर्थात अगर 4.500 ग्राम तेल चाहिये तो 10 किग्रा. तिलहन का धान डालना पड़ेगा। यह मात्रा उस समय तेली अपने अनुमान से लेते थे।

कान्या—घाणी में डालने के आधे घंटे बाद उसमें कुछ मात्रापानी की डाली जाती थी (10 किग्रा. तिलहन के *घाण* में 700 ग्राम उस पानी डाला जाता था) जिससे तिलहन फूलकर तेल निकलने लगता था। इन अधकचरे तिलहनों को 'कन्या' कहते थे और इससे जब तेल निकलने लगता था तो उसे जंगल कहते थे। लाठ के घाणी में दबाव से तिल अपना तेल छोड़ने लगते थे। तेल रहित तिल की भूसी जिसे खल या खली कहते थे, पाचरों पर चिपक जाती थी जिसे खुरच कर अलग करने की क्रिया को 'डली काढ़बो' कहते थे।

झाबी—तेल घाणी के बीच में जमा होने लगता था और चारों और खल चिकपने लगती थी। तेल को लकड़ी से बने चपटे चम्मच से निकाला जाता था इसको 'झाबी' कहते थे। तेल निकालने की क्रिया को 'उलीचना' कहते थे।

तावणी—तेल को मिट्टी के बर्तन या पात्र में एकत्र कर लोहे के पीपे में चूल्हे पर गर्म किया जाता था इस पात्र को 'तावणी' कहते थे।

उपाड़ा—तावण में बार-बार गर्म करके तेल घाणी में डाला जाता था। यह क्रिया 6 से 7 बार दोहराई जाती थी। इससे तेल पकता था और पके तेल को निरन्तर *घाणी* में डालने से खळ पकता था। पाचरों में चिपका हुआ खल अन्दर या भीतर से नहीं पक पाता था इसके लिये खल को पाचरों से अलग किया जाता था, जिसे 'उपाड़ा' कहते थे।

पाचरों से अलग होकर खल तेल में डूब जाती थी और *खळ* भीतर से भी पक जाता था। बार-बार गरम तेल घाणी में डालने पर सूखी *खळ* ही शेष बचती थी। उसमें से पूरा तेल निकल जाता था। सूखी *खळ* को टुकड़ों के रूप में बाहर निकाल लिया जाता था। उसके उपरान्त पकाया तेल फिर से *घाणी* में डाला जाता था जिससे लाठ के घुमने से बचा हुआ खल पाचरों पर चिपक जाता था, जिससे सारा तेल *हांडी* में चला जाता था। तेल को पूर्ण रूप से निकालने के लिये *मांकड़ी* और *थम्बे* को खेलकर अलग-अलग करना पड़ता था।

पाटा–*पाटा* को भूमि पर गिरने से बचाने के लिये उसके नीचे एक लकड़ी का गट्टा लगाया जाता था इसे 'पाटा' कहा जाता था। *हांडी* में भरा तेल नारियल की गोल छोटी कठोर थाली से निकला जाता था। इससे पूर्व लाठ को *घाणी* से बाहर निकाल लिया जाता था।

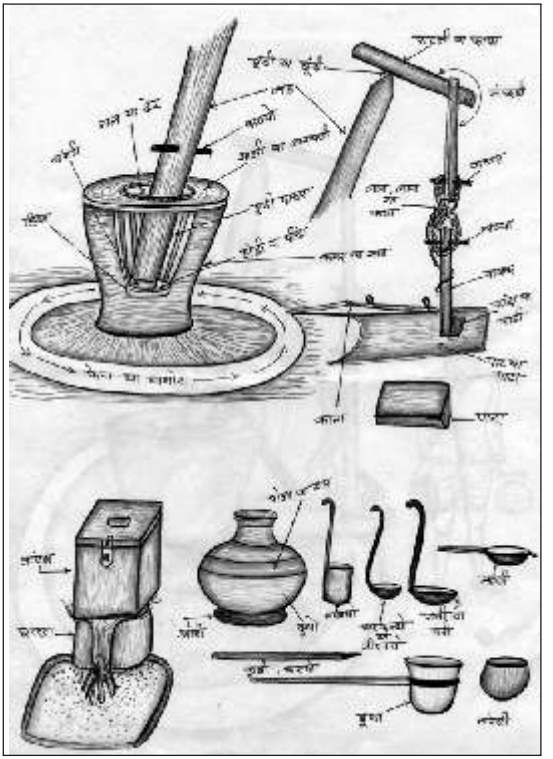

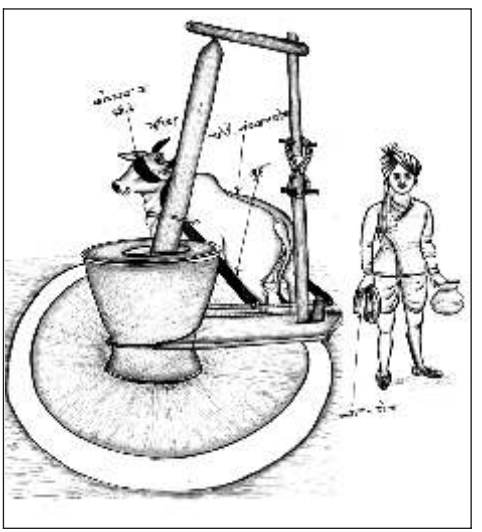

काता-पोत—घाणी में लगे तेल पर चुल्लू भर पानी छिंटक कर कपड़े से साफ किया जाता था इस कपड़े को 'काता-पोता' कहते थे।

नपण्या—तेल बेचते समय तोलकर देने के स्थान पर पात्रों से देना अति सुगम होता था। इन पात्रों को 'नपण्या' कहते थे। इन पात्रों को *टीपरी, टिपर्यों,* मरकल्यो आदि कहते थे।

इस प्रकार हमारे अध्ययन काल में तेल निकालने के लिये उपर्युक्त उत्पादन प्रणाली प्रयोग में लायी जाती थी। तेल उद्योग विकसित अवस्था में था। दैनिक जीवन की महत्वपूर्ण उपभोग्य वस्तुओं में तेल का मुख्य स्थान था। अतः सरकार तेलियों को सन्तुष्ट रखने का प्रयास करती थी। समकालीन अभिलेखागारीय स्त्रोतों में विवरण मिलता है कि जागीरदारों के उत्पीड़न से परेशान होकर परबतसर के अनेक तेलियों ने अपना गाँव छोड़ दिया था। सरकार द्वारा करों में राहत देने व अन्य सुविधाओं के वायदे के बाद ही वे तेली परिवार वापस उस गाँव में लौटे थे।[8] राज्य द्वारा अनेक कर भी तेल उद्योग में संलग्न तेली, जाति से लिये जाते थे। तेली जाति के लोगों से *घाणी पाटा* नामक कर वसूल किया जाता था। तेली, मेले या हाट से *घाणियों* के लिये जो *पाटे* खरीद कर लाते थे उस पर यह कर लगता था। इसी तरह तेली को कोल्हू पर *नेगघाणी, तेलपाली, घाणी पाली, किराया घाणी* आदि कर लगाये जाते थे।

इस प्रकार विदित होता है कि इस काल में तेल उद्योग में प्रयुक्त उत्पादन पद्धति हस्तनिर्मित थी क्योंकि उस समय आधुनिक समय की तरह मशीनों का प्रयोग नहीं होता था न ही आधुनिक समय की तरह कारखानें होते थे इसलिये दस्तकार वर्ग द्वारा हस्तनिर्मित औजारों द्वारा सरल व परम्परागत तरीके से वस्तुओं का निर्माण किया जाता था।

सन्दर्भ

1. जी.एच. ओझा : *जोधपुर राज्य का इतिहास,* भाग प्रथम, पृ. 1-5 वैदिक मंत्रालय, अजमेर, 1938 ई.
2. बी.एल. गुप्ता : *ट्रेड एण्ड कॉमर्स इन राजस्थान,* जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1978 ई., पृ. 26
3. *जालौर कोतवाली चबूतरा जमाबन्दी,* बही नं. 757, वि.सं. 1866 (1809 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स, जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर

4. *जोधपुर कोतवाली चबूतरा जमाबन्दी,* बही सं. 884, वि.सं. 1824 (1767 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स, जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर
5. *कोतवाली चबूतरा जमाबन्दी बही,* नं. 754, परगना जालौर, वि.सं. 1834 (1777ई.), जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर
6. वही
7. व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित।
8. *सनद परवाना बही,* सं. 9, वि.सं. 1829 (1762 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

डॉ. मधु कुमावत
सहायक आचार्य
इतिहास विभाग
श्री रंकपा राजकीय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किशनगढ़ (अजमेर)

❑❑❑

लोक देवी 'आवड़' का ऐतिहासिक योगदान

● डॉ. सीमन्तिनी पालावत

आवड़ के प्राकट्य से लोक-देवियों के क्रमबद्ध ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध होते हैं। आवड़ को हिंगलाज का पूर्णावतार माना जाता है। आवड़ का जन्म चारणों की 'साऊवा' शाखा में हुआ था। माड़ प्रदेश में आने से पूर्व इनके पूर्वज सिन्ध प्रदेश के 'सऊँवाण' (सेवण नगरी) के निवासी थे। इसी कारण इनके वंश की शाखा 'साउवा' नाम से प्रसिद्ध हुई। साउवा शाखा के चारण चेलक ने माड़ प्रदेश में अपने नाम से चेलक (छीलक) ग्राम की स्थापना की। चेलक के वंशज मादा के पुत्र मामड़ हुए।[1] *मामड़ की पत्नी मोहवृत्ति का जन्म चारणों की महडू शाखा में माड़वा ग्राम में हुआ था।*

मामड़ के कोई सन्तान नहीं होने के कारण उन्होंने सात बार हिंगुलालय की दुर्गम यात्रा की। हिंगलाज माता के अनुग्रह से मामड़ के घर 'आवड़' का जन्म हुआ। आवड़ के पश्चात् छः अन्य भगिनियों तथा भ्राता महिरक्ष (महीरखा) का जन्म हुआ। देवी हिंगलाज के पूर्णावतार के रूप में आवड़ जगत् में 'आवड़ा मामड़ाई' के नाम से विख्यात हुई। सातों ही भगिनियाँ शक्ति का अवतार मानी जाती हैं।

आवड़ गुल रूपां अछी, लांगी छाछी होल।
गढ़वी मांमड़िये घरां, सातां बैन सतोल।।

आवड़ (उब्बटा), आछी (इच्छा), चाची (चर्चिका), होल (हुली), रूपा (रेष्पली), गुल (गुली) और लहवी (लांगी) सप्त भगिनियाँ हैं। सातों बहिनें जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहीं।

माड़ प्रदेश के तत्कालीन शासक राव केहर, राव तणु, जुगराज, बिजयराव चूड़ाला एवं रावल सिद्ध देवराज के शासनकाल से सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक सन्दर्भ आवड़ के जीवन-वृत्त में समाहित हैं। आवड़ के जन्म वर्ष, जन्म स्थान एवं मृत्यु वर्ष में भी ऐतिहासिक सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं।

आवड़ का जन्म वर्ष

आवड़ के जन्म से सम्बन्धित तीन मत प्रचलित हैं जिनके अनुसार इसका जन्म वि.सं. 808 या 838 या 888 में हुआ, जिसके अभिव्यंजक दोहे निम्नानुसार वर्णित हैं—

प्रथम मत : वि.सं. 808/751 ई.

आठै सौ आठै समत, मधुसुद नम सनिवार।
महमाया मामड़ घरै, आवड़ लिय अवतार।।

द्वितीय मत : वि.सं. 838/781 ई.

आठै अड़तीसै समत, मधु सुद नम सनिवार।
महमाया मामड़ घरै, आवड़ लिय अवतार।।

तृतीय मत : वि.सं. 888/831 ई.

साल अठ्यासी आठ सै, नवमी चैत अनूप।
आवड़ जग में अवतरी, श्री हिंगलाज सरूप।।

उक्त तीनों ही मतों के अनुसार आवड़ का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी को शनिवार के दिन हुआ था। आवड़ के जन्म वर्ष की पुष्टि हेतु समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं का परीक्षण आवश्यक है। आवड़ की बहिन लाँगी (लघ्वी) के लिए प्रसिद्ध है कि उसने वल्लभी के शासक शिलादित्य सप्तम के शासन का विनाश कर दिया था। शिलादित्य सप्तम के शासन का अंत इतिहासकारों ने सन् 767 ई. या इसके उपरान्त निकटवर्ती वर्षों में निश्चित किया है।[2] अत: आवड़ का जन्म सन् 767 ई. के पूर्व हो जाना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब उनका जन्म वि.सं. 808 (सन् 751 ई.) में हुआ हो। द्वितीय ऐतिहासिक घटना तणोट (जैसलमेर क्षेत्र) में दुर्ग निर्माण से सम्बन्धित है जिसकी आधारशिला वि.सं. 827 (सन् 770 ई.) में आषाढ़ कृष्णा पंचमी को शुक्रवार के दिन रखी गई थी। वि.सं. 844 (सन् 787 ई.) में माघ शुक्ला पूर्णिमा को मंगलवार के दिन किले का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ तथा उसी दिन हिंगलाज मन्दिर के दर्शन कर लौटती हुई आवड़ ने स्वयं सहित सभी भगिनियों की मूर्त्तियाँ स्थापित करवाकर नवनिर्मित मन्दिर की विधिपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा करवाई जिसके पश्चात् वे श्रद्धा से 'तणोटियाजी' नाम से सम्बोधित की जाने लगी। तणु के पिता राव केहर द्वारा अपनी झाली रानी को स्वप्न में दिए गए आवड़ के आदेश के अनुसार ही वि.सं. 827 (सन् 770 ई.) में उक्त किले

की आधारशिला रखी गई थी।[3] अतः आवड़ का जन्म वि.सं. 827 (770 ई.) के पूर्व हो जाना चाहिए तथा उक्त वर्ष वि.सं. 808 (सन् 751 ई.) ही हो सकता है। इन दोनों ऐतिहासिक घटनाओं के परीक्षण से इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि आवड़ का जन्म वि.सं. 808 (सन् 751 ई.) में हुआ था।

जन्म स्थान से सम्बद्ध मत

आवड़ के जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हैं जिनमें तीन मत-बाड़मेर के समीपवर्ती चाळकना गाँव, जैसलमेर के समीपवर्ती छीलक गाँव तथा काठियावाड़ में स्थित वल्लभी प्रमुख हैं। इन मतों के परीक्षण हेतु सर्वप्रमुख घटना माड़ प्रदेश में बारह वर्षों तक निरन्तर अकाल का विद्यमान रहना है जिसके कारण मामड़ को माड़ प्रदेश से पलायन कर मूमणवाहण (वर्तमान बहावलपुर) से बीस कोस उत्तर में सिन्ध स्थित नानणगढ़ (वर्तमान सुलतानपुर) जाना पड़ा था। अतः माड़ प्रदेश में ही आवड़ का जन्म स्थान होना चाहिए। नानणगढ़ से लौटकर आवड़ माता-पिता एवं भाई के अतिरिक्त शेष बहिनों का निवास तेमड़ा पर्वत पर स्थापित करने के उपरान्त सूमरों के विनाश हेतु नानणगढ़ लौट गई।[4] तेमड़ा पर्वत पर निवास करने का कारण आवड़ का जन्म-स्थान उसके समीप स्थित होने की पुष्टि करता है। लाँगी ने वहाँ से जाने के पश्चात् वल्लभी के शिलादित्य सप्तम् के शासन का अन्त कर दिया तथा 'तांतणिया धारा' (भावनगर के समीप) पर स्थान बनाकर रहने लगी।[5] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वल्लभी में लाँगी ही नानणगढ़ से आने के पश्चात् गई थी। अतः आवड़ एवं अन्य भ्राता-भगिनियों का जन्म स्थान वल्लभी नहीं होना चाहिए। तेमड़ा के समीप उनके जन्म स्थान की संभावित स्थिति से चाळकना में उनके जन्म की संभावना क्षीण हो जाती है क्योंकि चाळकना वहाँ से दो सौ किलोमीटर से भी अधिक दूरी पर स्थित है। इसके अतिरिक्त चाळकना से अकाल की स्थिति में सिंध में स्थित नानणगढ़ जाना भी तद्युगीन परिप्रेक्ष्य में दोनों स्थानों के मध्य दूरी को देखते हुए युक्ति-संगत नहीं हैं। आवड़ से सम्बन्धित सात प्रमुख स्थान—तेमड़ा, तणोट, भादरिया, पन्नोदरिया, काला डूँगर, स्वांगियां एवं देग—भी वर्तमान जैसलमेर को केन्द्र में रखते हुए स्थित हैं। अतः चाळकना के स्थान पर आवड़ का जन्म स्थान वर्तमान जैसलमेर के समीप स्थित होना चाहिए जो 'छीलक' गाँव है। निष्कर्षतः आवड़ का जन्म स्थान 'छीलक' गाँव है जो तेमड़ा एवं वर्तमान जैसलमेर दोनों के समीप स्थित है।

हाकड़ा नद-शोषण तथा सूमरा राज्य का अन्त

माड़ प्रदेश में बारह वर्षों तक भीषण अकाल पड़ा जिसके कारण मामड़

वहाँ से परिवार सहित सिन्ध प्रदेश में वर्तमान बहावलपुर (तब मूमणवाहण) से बीस कोस उत्तर में स्थित नानणगढ़ (अब सुलतानपुर) नामक स्थान की ओर पलायन कर गए।[6] मामड़ अपनी पुत्रियों आवड़ एवं उसकी अन्य भगिनियों के साथ ठहरे हुए थे जिनकी सुन्दरता का वृत्तान्त सुन वहाँ के तत्कालीन सुल्तान आदन (ऊमर) सूमरा के पुत्र नूरण सूमरा ने उनसे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। सूमरा (सूमड़ा) परमार (पंवार) क्षत्रिय थे। सुलतान आदन के समय ये धर्म-परिवर्तन कर इस्लाम में दीक्षित हो गये थे। जब आदन ने मामड़ को बुलाकर शहजादे की इच्छा को व्यक्त किया तो मामड़ ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट मना कर दिया। प्रथम तो सातों बहनें आजीवन कौमार्य व्रत धारण करने का प्रण ले चुकी थीं। द्वितीय चारण कन्याओं के साथ राजपूतों का भ्राता-भगिनी के अतिरिक्त अन्य सम्बन्ध होना असम्भव था। आदन, धर्म परिवर्तन के उपरान्त भी अब-तक कुछ क्षत्रिय मान्यताओं को स्वीकार करता था, अत: मामड़ के वार्तालाप से सहमत हो गया परन्तु दुष्ट नूरण ने यह बात स्वीकार नहीं की। आदन अपने पुत्र की इच्छा के समक्ष विवश हो गया। नूरण ने मामड़ को सात दिन का समय प्रदान किया कि वह सहर्ष अपनी पुत्रियों का विवाह उससे कर दे अन्यथा उसे इसका दण्ड भुगतना पडेग़ा और वह उसकी पुत्रियों से बलपूर्वक विवाह कर लेगा। नूरण के इस कथन से मामड़ चिन्तित हुआ परन्तु आवड़ ने उसे धैर्य प्रदान किया। नूरण से परेशान मामड़ ने अपनी पुत्रियों व परिवार सहित वहाँ से जाने का निर्णय लिया। वहाँ से चल वे हाकड़ा नद के तट पर पहुँचे जहाँ नूरण ने मामड़ के प्रस्थान को रोकने के लिए नावों की सेवा स्थगित करने के आदेश दे दिए थे तब आवड़ ने अन्य कोई मार्ग उपलब्ध नहीं होने पर हाकड़ा नद का शोषण किया।[7]

आवड़ ने नानणगढ़ से प्रस्थान के पूर्व सूमरा वंश के विनाश का प्रण लिया। सम्मा सट्टा व सम्माणा सामेचा (सम्मा) क्षत्रियों में जाम सम्मा की दसवीं पीढ़ी में जाम लखियार थे जिनकी आवड़ ने सूमरों के विरुद्ध युद्ध में अलौकिक रूप से सहायता की तथा सूमरा का सांग (भाले) के प्रहार से वध कर राज्य प्रदान किया। सूमरों का नाश कर आवड़ ने दक्षिणी पंजाब के सम्माणा क्षेत्र के भाटी क्षत्रियों को राज्य प्रदान किया जिसका उपकार सम्मा के वंशज सामेचा व जाडेचा क्षत्रिय अब तक मानते हैं।

ये दोनों ही घटनाएं पूर्णत: ऐतिहासिक हैं। पंजाब में यमुना नदी सरस्वती नदी को त्यागकर पूरब की ओर रुख करके गंगा में जा मिली। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता सर ऑरेल स्टीन के अन्वेषणों से इस तथ्य को बल मिला है। देवी

आवड़ द्वारा चुल्लुओं में भरकर हाकड़ा-शोषण की कथा लगभग उसी समय की है। अरोड़ नगर (नगर थट्टा) के समीप सिन्ध नदी पर बाँध-निर्माण कार्य से नदी के पूर्वी भाग का विस्तृत जल-क्षेत्र शुष्क हो गया व जलयुक्त बडे़-बडे़ खक्रे दृष्टिगोचर होने लगे जिन्हें 'खड्ढाल' या 'खडाल' कहा जाता था।

बल बहसी हाकड़ो - टूटसी बाँध अरोड।
सिन्ध में हुसी सूखड़ी - बहै मछी और लोड।।

मीठा मेहरान नदी या मीठा समुद्र (सिंधु/हाकड़ा) अल्लूर (अरोड़) के किले के सहारे बहती थी। राजा डालूराय द्वारा एक व्यापारी के साथ अन्याय के दंड-स्वरूप ईश्वर ने हाकड़ा नदी के बहाव के मार्ग का रुख परिवर्तन कर रोहड़ी और भक्खड़ के मध्य कर दिया।[8]

गैली नार समझी नहीं मेहंदी को रंग कठै गयो।
वह नारी वह नेह नहीं, बह पाणी मुल्तान गयो।।

वस्तुतः हाकड़ा नदी शोषण एवं राजा डालूराय द्वारा एक व्यापारी के साथ अन्याय के दंड-स्वरूप ईश्वर ने हाकड़ा नदी के बहाव के मार्ग का रुख परिवर्तन कर पूरे क्षेत्र को वीरानी में बदलने की कथाएँ आवड़ से जुड़ी हैं।

तणोट में दुर्ग व मन्दिर की स्थापना

राव केहर (वि.सं. 816) मंझमराव का दूसरा पुत्र था जिसकी राणी कमलावती झाली (अरणेंडागढ़ के राव भाण की पुत्री) को स्वप्न में देवी तणोटिया (आवड़) ने दर्शन दिए और उन्हें पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे पुत्र का नाम तणु रखने व स्वप्न में निर्देशित शुभ स्थान पर किला बनाने का आदेश दिया।[9] राव केहर ने पुत्र तणु के नाम से तणोटगढ़ बनवाया तथा वि.सं. 827 में तणोटिया देवी का मन्दिर बनवाया। वि.सं. 827/770 ई., आषाढ़ कृष्णा 5, शुक्रवार के दिन तणोट के किले की नींव रखी गई और वि.सं. 844 (सन् 787 ई.) माघ पूर्णिमा मंगलवार के दिन किले का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ।[10]

बींझनोट दुर्ग का निर्माण

राव तणु ने बींझास्निया देवी के आशीर्वाद से प्राप्त पुत्र का नाम 'बिजयराव' (बींझाराव / बींझो) रखा। राव तणु ने वि.सं. 873/816 ई. में माघ सुदी 13, रविवार, रोहिणी नक्षत्र में तणोट से इक्कीस कोस दूर बींझनोट का किला बनवाकर वहाँ देवी आवड़ का मंदिर बनवाया। बींझनोट किला बनवाने में आये द्रव्य के अभाव को पूरा करने के लिए आवड़ द्वारा निर्देशित

स्थान पर खुदाई करने पर राव तणु को पर्याप्त धन प्राप्त हो गया जिससे उसने किले का निर्माण-कार्य पूर्ण किया।[11]

बिजयराव चूड़ाला को वरदान तथा विभिन्न युद्धों में उसकी विजय

लंगा, वराह, जोहिया व खींचियों के आक्रमण पर राव बिजयराव ने देवी से प्रार्थना की तथा सफलता पर कमल पूजा (अपने हाथ से मस्तक काटना) की मनौती बोली। युद्ध में बिजयराव विजित हुए और वह जैसे ही अपना प्रण पूर्ण करने को उद्धत हुए तो देवी ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया। राव बिजयराव की सभी आशंकाओं के निवारण और युद्ध में जीतने की इच्छाशक्ति से उन्हें प्रेरित एवं उत्साहित करने हेतु देवी आवड़ ने अपने दाहिने हाथ की एक सोने की चूड़ी उन्हें प्रतीक-स्वरूप दी और आशीर्वाद दिया कि धूप जलाकर चूड़ी को धुआँ दिखाकर दाहिनी भुजा में धारण करने से भाग्य उनके अनुकूल होगा व उन्हें विजयश्री प्राप्त होगी। इसी दिन से देवी विजयासना तथा देवी की चूड़ी के कारण बिजयराव उस दिन से 'चूड़ाला' की विशिष्ट उपाधि से सम्बोधित किए जाने लगे और इतिहास में 'राव बिजयराव चूड़ाला' नाम से जाने गये। मुल्तान के सूबेदार हुसैनशाह (हिन्दू) के विरुद्ध युद्ध में देवी आवड़ ने अपने भक्त युवराज बिजयराव की रक्षा की तथा सौभाग्य सूचक 'पालम' (सोनचिड़िया) पक्षी के रूप में उसके चपल घोड़े की कनौती के मध्य स्थान ग्रहण किया जिससे युवराज निर्भीकतापूर्वक उत्साहित हो युद्धरत हुआ एवं देवी-कृपा से विजित हुआ। तदन्तर भाटियों ने प्रत्येक युद्ध में प्रस्थान से पूर्व विजय सुनिश्चित करने हेतु दाहिनी ओर सोन चिड़िया (शकुन चिड़िया/रूपा रेल/खंजन पक्षी/ पालम पक्षी) का शुभ शकुन लेना प्रारम्भ कर दिया। उस विजयी मंगल दिवस से भाटी शासकों के राजकीय घोड़े के ललाट पर 'पालम पक्षी' चित्रित किया जाता है। दशहरा और दीपावली पूजा पर अश्वों को सजाते समय चाँदी या सोने की चिड़िया बनाकर देवी के प्रतीक के रूप में उसकी पूजा करते हैं।[12] असीमसहाय नामक शत्रु से विजयराव ने चूड़ के कारण भटनेर, मुमणावाहण, मारोठ, किरोहर आदि दुर्ग पुनः प्राप्त किए तथा अपने राज्य की सीमा पश्चिम में सिन्ध नदी (मेहरान) तक स्थापित कर ली।

अपने से श्रेष्ठ पश्चिमी शत्रु-सेनाओं के विरुद्ध भाटी कई बार विजयी रहे थे। देवी में अटूट आस्था के कारण उन्हें संकट के समय उसकी सहायतार्थ उपस्थित होने पर अटूट विश्वास था, इसलिए उन्होंने विजयी होने का सारा श्रेय देवी आवड़ को दिया। आगामी पीढ़ियों के मनोबल को उच्च बनाने के लिए इस आस्था को श्रद्धापूर्वक प्रचारित किया गया कि संकट में सदैव देवी का आशीर्वाद

उनके सिर पर रहेगा तथा इस भावना से वह असम्भव को संभव बनाएंगे जिसे उन्होंने वास्तव में सम्भव कर दिखा दिया।[13]

जैसलमेर का राज्य-चिह्न

जैसलमेर राज्य के पुरातन राज्य-चिह्न में रिक्त सिंहासन के ऊपर कंगूरे पर शकुन चिड़िया तथा उसके ऊपर मेघाडम्बर छत्र बना हुआ था। शकुन चिड़िया (पालम पक्षी) देवी विजयासना (आवड़) का प्रतीक है। परवर्ती काल में रोयल एम्बलम के रूप में अंग्रेजी सरकार द्वारा 1 जनवरी, 1876 को विक्टोरिया को केसर-ए-हिन्द की उपाधि से विभूषित करने के उपलक्ष्य में आयोजित दिल्ली दरबार में प्रदत्त विशेष शाही ध्वज जिसे लोक भाषा में 'वावटा' कहा जाता है, स्वीकार किया गया। इस रोयल एम्बलम के मध्य में ढ़ाल बनी हुई है जिसके दोनों और हरिण तथा सबसे ऊपर शकुन चिड़िया (खंजन पक्षी) को प्रदर्शित किया गया है। शकुन चिड़िया (पालम पक्षी) का चित्र विजयासना देवी (आवड़) का प्रतीक है। बिजयराव चूड़ाला के अश्व पर सोन चिड़ी (रूपा रेल) के रूप में विजयासना (आवड़) विराजमान हुई थी जिससे उन्हें हुसैनशाह लंगा के विरुद्ध विजय प्राप्त हुई थी। इस प्रकार जैसलमेर राज्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों ही राज्य चिह्नों में आवड़ के प्रतीक के रूप में शकुन चिड़िया को प्रदर्शित किया गया है।[14]

बिजयराव चूड़ाला का निधन तथा देवराज का राज्यारोहण

विक्रम संवत् 893 (सन् 836 ई.) में भुट्टी रानी (भाणकँवर) ने एक पुत्र को जन्म दिया। देवी भक्त बिजयराव 'चूड़ाला' ने शिशु का नाम 'देवीराज' (देवी के आशीर्वाद की देन) रखा। समय बीतने पर 'देवीराज' का अपभ्रंश 'देवराज' हो गया। सन् 841 ई. में भटिण्डा के राव अमरा की पुत्री हुरड़ के साथ पाँचवर्षीय देवराज के विवाह के समय वहाँ के शासक वराहों ने चूड़े के दिव्य चमत्कारी गुण ज्ञात होने पर चतुराई पूर्वक उसे चुरा लिया व छलपूर्वक निद्रा-मग्न भाटियों का वध कर दिया।[15] युवराज देवराज को उसकी सास एवं उसकी धाय ने सकुशल बचा लिया व नेग आल राईका उसे अपनी साँढ़नी (ऊँटनी) जाड़िक पर बिठा वहाँ से सुरक्षित ले गया। देवराज ने अपने नाना राव जूझेराव (जज्झा) से मनपसन्द उत्तम भूमि प्राप्त कर वहाँ देरावल किले का निर्माण किया। उस भूमि के स्थानीय संरक्षक देवता, क्षेत्रपाल (खेतरपाल) को प्रसन्न करने के लिए साँगियाजी (आवड़) की आराधना की। देवी प्रसन्न हुई व उन्होंने क्षेत्रपाल को भी परम्परागत चढ़ावा प्रदान कर प्रसन्न कर दिया। देवी ने देवराज को दिव्य

खाँडा (तलवार) भेंट किया जिसकी सहायता से उन्होंने बावन परगनों के प्रमुखों को अपने अधीन किया। देवी के निर्देशानुसार देवराज ने बावन प्राचीरों और चारों कोनों पर चार बुर्जों वाले किले देरावरगढ़ का निर्माण किया जो वि.सं. 909 (सन् 852 ई.) में बनकर तैयार हुआ।

सिध आप भेटियो, प्रसिध ते नव निध पाई।
सेवी आदि सकत विरद, घण तेग बंधाई।।

अलोप होने का वर्ष

आवड़ ने अपने उद्देश्य को पूर्ण हुआ जानकर भगिनियों के परामर्श से इह-लीला संवरण करने का निश्चय किया। उन्होंने माड़ प्रदेश में देरावर के शासक सिद्ध देवराज, चारण सरदारों, राजपूत सरदारों, ब्राह्मणों तथा अन्य-जातीय भक्तों को तेमड़ा पर्वत पर बुलाकर आशीर्वाद दिया तथा कहा कि प्रजा सुख-शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही है। इस कारण उनका अवतार लेने का उद्देश्य पूर्ण हो गया है, अत: वे अपनी इह-लीला संवरण करना चाहती हैं। माघ शुक्ला सप्तमी को तारंग शिला पर विराजमान हो कर पश्चिम दिशा में स्थित हिंगलाज मन्दिर को निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई सातों भगिनियों सहित आवड़ अलोप हो गई।

नौ सो समत निनाणवे, गुण चारण हिये।
माह सुदी सातम तिथि, आवड़ हुई अलोप।।

आवड़ के इहलीला-संवरण को अलोप होने के रूप में निरूपित किया गया है तथा उसका वर्ष वि.सं. 999 वर्णित किया गया है परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि यह वर्ष विक्रम संवत् के समनुरूप है या उसमें कुछ वर्षों का अन्तर है। पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि ऐतिहासिकता के आलोक में आवड़ का प्राकट्य वर्ष वि.सं. 808 (सन् 751 ई.) ही प्रामाणिक निश्चित किया जा सकता है। इस आधार पर अलोप होने के समय आवड़ की आयु 191 वर्ष होती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त वि.सं. 999 का वर्णन आवड़ के प्राकट्य वर्ष वि.सं. 888 को दृष्टिगत रखते हुए किया गया है तथा तदनुरूप उसकी आयु 111 वर्ष निश्चित की गई है। आवड़ के आविर्भूत होने का वर्ष वि.सं. 888 से 80 वर्ष पूर्व वि.सं. 808 निश्चित किया जा चुका है जिसके परिप्रेक्ष्य में उसके अलोप होने के वर्ष को भी 80 पूर्व निश्चित करने से वि.सं. 919 (सन् 862 ई.) प्राप्त होता है जिस समय आवड़ की आयु 111 वर्ष थी।

आवड़ के उक्त वर्ष वि.सं. 919 (सन् 862 ई.) में अलोप होने की पुष्टि एक अन्य प्रमाण से भी की जा सकती है। लोद्रवा के शासक जसभाण

पँवार की राजकुमारियों से विवाह करते समय सन् 873 ई. में देरावर के शासक सिद्ध देवराज ने छद्म रूप से लोद्रवा में सैनिक प्रविष्ट करवाते हुए जसभाण पँवार पर आक्रमण कर उसका वध कर दिया तथा लोद्रवा पर अधिकार कर लिया। जसभाण पँवार आवड़ का भक्त था तथा उक्त घटना के समय यदि आवड़ विद्यमान होती तो देवराज को ऐसा दुष्कृत्य नहीं करने देती। देवराज भी आवड़ का भक्त था तथा वह आवड़ के एक अन्य भक्त जसभाण पँवार के विरुद्ध ऐसा अन्यायपूर्ण आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता था क्योंकि वह स्वयं अपने, अपने पिता जुगराज बिजयराव चूड़ाला, पितामह राव तणु तथा प्रपितामह राव केहर के प्रति आवड़ द्वारा किए गए अनुग्रह से पूर्ण परिचित था। अतः सन् 873 ई. में देवराज द्वारा लोद्रवा पर अधिकार करने से पूर्व आवड़ अलोप हो चुकी थी। शोधकर्त्री के मतानुसार यह वर्ष वि.सं. 919 (सन् 862 ई.) ही हो सकता है। अतः आवड़ का काल वि.सं. 808/751 ई. से वि.सं. 919/862 ई. है, जिस काल-खण्ड में, राव मंझमराव (सन् 729-759 ई.), राव केहर (सन् 759-805 ई.), राव तणु (सन् 805-820 ई.), जुगराज बिजयराव चूड़ाला (सन् 820-841 ई.) एवं 841 ई. से 852 ई. तक राज्यविहीन तथा तदुपरान्त सन् 852 ई. में सिंहासनासीन रावल सिद्ध देवराज, माड़ प्रदेश के शासकों में समाहित हैं।

वस्तुतः आवड़ ने एक जन-क्रान्ति का नेतृत्व किया। एक ओर उसने जन-सामान्य को आतंकित करने वाले आसुरी प्रवृत्ति के आततायियों के विरुद्ध संघर्ष किया, वहीं दूसरी ओर विधर्मी बाह्य आक्रमणकारियों से देश की सुरक्षा एवं सनातन हिन्दू धर्म पर आसन्न संकट को समाप्त करवाया। उत्तरी-पश्चिमी सीमा की सुदृढ़ प्राचीर के रूप में उसने माड़ प्रदेश में भाटियों के साम्राज्य को चिर-स्थायी बनवाया जो स्वतन्त्रता-पर्यन्त अपने दायित्व का निर्वहन करने में पूर्ण सफल रहे। समग्रतः विश्व-इतिहास में स्त्री-नेतृत्व का आवड़ के समकक्ष उदाहरण दुर्लभ है जिसने राज्य-लिप्सा से रहित हो धर्म-राज्य की स्थापना के लिए अप्रतिम संघर्ष का पथ-प्रशस्त किया। आवड़ ने यह सिद्ध कर दिया कि स्वरूप से सौम्या, प्रकृति से कोमलांगी और स्वभाव से करुणार्द्र नारी जब अन्याय के विरुद्ध विरोध के स्वर प्रबल करती है तो वीरांगना बन कर युग और इतिहास की धारा को परिवर्तित कर देती है।

सन्दर्भ

1. मामड़ के पिता का नाम साजण भी प्राप्त होता है जिनके एक अन्य पुत्र खतरिया का भी उल्लेख उपलब्ध होता है।

2. आर.सी. मजूमदार, (संपा) द *हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, वॉल्यूम* III, पृ. 150
3. हरिसिंह भाटी, *गजनी से जैसलमेर*, बीकानेर, 1998, पृ. 256-258
4. वही, पृ. 273-275
5. मोहनसिंह जिज्ञासु, *चारण साहित्य का इतिहास*, प्रथम भाग, जैन ब्रदर्स, रातानाडा, जोधपुर, पृ. 29
6. ठाकुर मूलसिंह भाटी, *भगवती श्री आवड़जी*, पृ. 21
7. हरिसिंह भाटी, *गजनी से जैसलमेर (देवी आवड़ जी की अपूर्व कथा)*, पृ. 275
8. लक्ष्मीचन्द, तवारीख जैसलमेर, अजमेर, 1891
9. हरिसिंह भाटी, *गजनी से जैसलमेर*, पृ. 256
10. बदरी प्रसाद सांकरिया, (संपा.) *नैणसी री ख्यात*, भाग दो, रा.रा.प्रा.वि.प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1959-1967 ई. पृ. 17
11. हरिसिंह भाटी, पूर्वोक्त, पृ. 262
12. वही, पृ. 263-264
13. वही, पृ. 264
14. वही, पृ. 262, 589
15. बदरी प्रसाद सांकरिया, (संपा.) पूर्वोक्त, भाग दो, पृ. 17-18

डॉ. सीमन्तिनी पालावत
सहायक आचार्य
राजकीय महाविद्यालय
केलवाड़ा (बारां)

❑❑❑

श्रीमाल पुराण के आधार पर भीनमाल क्षेत्र के शक्तिपीठ एवं उनकी कथाएं

डॉ. पीयूष भादविया • मोहित शंकर सिसोदिया

भीनमाल, राजस्थान के जालोर जिले का एक उपखण्ड है। भीनमाल को पूर्व में श्रीमालनगर, श्रीमालपुर, रत्नमाल, पुष्पमाल, फूलमाल, आलमाल, सिंधुराजपुर, भिल्लमाल जैसे कई नामों से जाना जाता रहा है।[1] श्रीमालनगर नाम ऐतिहासिकता की दृष्टि से अत्यधिक प्रसिद्ध रहा है। भीनमाल 7वीं से 12वीं शताब्दी तक एक उन्नत व्यापारिक, धार्मिक एवं राजनीतिक केन्द्र रहा है। यह शैव-वैष्णव-शाक्त-सौर सम्प्रदायों एवं ब्राह्मण-जैन-बौद्ध धर्मों का प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। आयुर्वेद के विद्वान श्रीमहुर, महान गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त, महाकवि माघ, जैन विद्वान सिद्धर्षि गणि जैसे कई महान विभूतियों की जन्मभूमि के साथ-साथ कर्मभूमि भी रहा है। भगवान आदि शिव, नारद, वशिष्ठ, गौतम, मार्कण्डेय एवं कई ऋषियों की तपो-भूमि रहा है। यहां महावीर स्वामी ने अपने जीवन काल में विचरण किया है। अतएव, भीनमाल या श्रीमाल क्षेत्र अपने आप में अति महत्वपूर्ण रहा है।[2]

स्कन्दपुराण के अन्तर्गत श्रीमाल महात्म्य का वर्णन है, जिसे श्रीमालपुराण भी कहा जाता है। मूल रूप से इसका रचयिता महर्षि वशिष्ठ को माना जाता है। श्रीमालपुराण हमें प्राचीन भीनमाल के विभिन्न आयामों की जानकारी देता है।

अंग्रेज विद्वान जैक्सन ने बॉम्बे गजेटियर-1896 ई. में श्रीमाल पुराण की ऐतिहासिकता की चर्चा सर्वप्रथम की है। जहां उन्होंने श्रीमाल पुराण के लेखन काल की गणना 14वीं शताब्दी से पूर्व की बताई है।[3] श्रीमाल पुराण का सर्वप्रथम प्रकाशन गुजराती भाषा में 1899 ई. में हुआ। इसका संस्कृत से गुजराती में अनुवाद जटाशंकर लीलाधर एवं केशवजी विश्वनाथ ने किया।[4]

श्रीमालपुराण में भीनमाल स्थित कुलदेवियों तथा कुलदेवताओं के बारे में भी बड़े विस्तार से बताया गया है। वर्तमान भीनमाल में आज भी यह धार्मिक स्थल व्यवस्थित है, जिनमें देश भर से विभिन्न गोत्रों के लोगों की अपनी गहरी आस्था है।[5] यह स्थल वर्तमान भीनमाल की सांस्कृतिक गतिविधियों को संचालित करते है। ह्वेनसांग के वृतान्त के अनुरूप इन प्रमुख देवालयों की कुल संख्या पचास से ज्यादा है[6] तथा श्रीमालपुराण के अनुसार चौदह देवियों की चर्चा मिलती है। इन चौदह कुलदेवियों के मंदिरों में से नौ के मंदिर भीनमाल नगर-पालिका क्षेत्र में हैं, जबकि पांच मंदिर भीनमाल के निकटतम ग्रामों में अवस्थित हैं। इन मंदिरों के साथ जुड़ी कथाएं भी श्रीमाल पुराण के अनुसार इस आलेख में प्रस्तुत हैं।

श्री क्षेंमकरी माताजी पहाड़ी, (भीनमाल)

क्षेंमकरी देवी के प्रति आस्था भीनमाल ही नहीं अपितु राजस्थान के अन्य क्षेत्रों एवं गुजरात में भी हैं। यह भीनमाल के मंदिरों में सर्वाधिक आस्था का केन्द्र है। भीनमाल के दक्षिण में एक पर्वत पर क्षेंमकरी माता का मंदिर है, जो एक प्राचीन किले जैसा लगता है। गर्भगृह में देवी के दांई ओर काला भैरव तथा गणेश की प्रतिमा है और बांई ओर गौरा भैरव एवं चामुण्डा या सुन्धा माता हैं। क्षेंमकरी देवी की प्रतिमा चार भुजाधारी एवं सिंह पर सवार है। क्षेंमकरी देवी का दूसरा प्रसिद्ध नाम खिमज माता है। सुन्धा या चामुण्डा माता, क्षेंमकरी देवी की बहन मानी जाती है। क्षेंमकरी देवी शांडिल्य श्रीमालियों के साथ-साथ चालुक्य-सोलंकी गौत्र की कुलदेवी है।

क्षेंमकरी देवी

श्रीमाल पुराण के अनुसार, दैत्य ब्राह्मणों को परेशान करते थे। एक बार गौतम ऋषि के आश्रम में ऊत्तमोज नाम के राक्षस ने एक ब्राह्मण को पकड़ लिया। तभी गौतम ऋषि ने सावित्री मंत्र पढ़कर यज्ञ में काष्ठ दी। तब देवी प्रकट हुई तथा देवी ने दैत्य से युद्ध किया, पर उसका नाश नहीं हो रहा था, तो गौतम ऋषि ने कहा कि शस्त्रों से इस दैत्य का वध नहीं हो पाएगा। तब देवी ने पर्वत का शिखर लेकर राक्षस के सिर पर दे मारा। राक्षस शिखर के नीचे दबकर मर

गया और देवी भी अपनी पादुका रखकर अंतरध्यान हो गयी। अत: क्षेंमकरी नाम से प्रसिद्ध हुई। यह देवी इच्छित वरदायिनी है।[7]

चामुण्डा देवी, श्री सुन्धा माता, सुन्धा पर्वत, (भीनमाल)

चामुण्डा देवी, श्री सुन्धा माता मंदिर, सुन्धा पर्वत पर स्थित है, जो भीनमाल से 22 किलोमीटर दूर है। सुन्धा पर्वत को सुगन्धित पर्वत भी कहा जाता है। प्रतिमा स्वयंभू मानी जाती है, जिसके केवल सिर की पूजा यहां होती है। इस मंदिर का गर्भगृह नहीं अपितु यह पर्वत की गुफा में स्थापित है।

चामुण्डा देवी, श्री सुन्धा माता

जालोर के शासक चाचिगदेव के शिलालेख के अनुसार तत्कालीन समय में चामुण्डा की पूजा अघटेश्वरी देवी के रूप में होती थी। अघटेश्वरी से अभिप्राय है वह घट (धड़) रहित देवी जिसकी केवल सिर की पूजा की जाती है।[8] इसलिए कवि सूजा विरचित छंद प्रचलित है :

> ''सिर सुन्धा धड़ कोटड़ा, पगला पिछोला पाल।
> आप बिराजो आहोर में, गले फुला की माल।।''[9]

जालोर के शासक चाचिगदेव ने संवत् 1319 में अक्षय तृतीया को इस मंदिर की स्थापना की। पहले यहाँ चामुण्डा देवी को शराब अर्पण एवं बलि दी जाती थी, किन्तु 1976 ई. में मालवाड़ा के ठाकुर अर्जुनसिंहजी ने श्री चामुण्डा माताजी ट्रस्ट की स्थापना कर शराब अर्पण व बलि का निषेध करवा कर सात्विक पूजन पद्धति आरम्भ करवायी।[10]

चामुण्डा मंदिर के गुम्बज पर स्वर्ण कलश सुशोभित है, जिसके चारों ओर पंक्तिबद्ध लगभग 180 कलश हैं। मंदिर परिसर में लगभग एक दर्जन से भी अधिक देव प्रतिमाएं विद्यमान हैं। यहां तीन मुख्य शिलालेख हैं। चामुण्डा देवी, लोढ़वान श्रीमालियों, गुर्जर-प्रतिहारों के साथ-साथ विभिन्न जातियों की कुलदेवी है। यह मंदिर राजस्थान के प्रसिद्ध शक्तिपीठों में अपनी जगह रखता है।

चैत्र, वैशाख, भाद्रपद एवं अश्विन में विशेष रूप से मेलों का आयोजन होता है। राजस्थान का पहला रोप-वे यहीं स्थापित किया गया है।[11]

श्रीमाल पुराण के अनुसार, भगवान शिव ने त्रिपुर नामक राक्षस का वध करने के लिए यहीं तप किया था। जब भंगतुंग नामक पर्वत पर तपस्यारत गौतम मुनि को भगवान शिव ने श्रीमाल क्षेत्र से परिचित करवाया।[12]

श्री कमलेश्वरी महालक्ष्मी देवी मंदिर, धोराढाल, (भीनमाल)

श्री कमलेश्वरी महालक्ष्मी देवी मंदिर भीनमाल का सर्वाधिक प्राचीन मंदिरों में से एक है, जो धोराढाल पर स्थित है।[13] यहां महालक्ष्मी की चार गज, दो भुजायुक्त एवं पद्मासन कमल पर विराजित प्रतिमा सफेद संगमरमर से बनी है। दोनों भुजाओं में भिन्न-भिन्न पुष्प धारण किये हुए हैं। कमलेश्वरी महालक्ष्मी को गजलक्ष्मी के रूप में भी जाना जाता है। चूंकि भीनमाल में दो महालक्ष्मी मंदिर हैं। अत: कमलेश्वरी महालक्ष्मी को पुराने महालक्ष्मी भी कहते है।

कमलेश्वरी देवी

दांये हाथ पर विष्णु तथा बांये हाथ पर ब्रह्माजी की प्रतिमायें है, जो गर्भगृह में ही है। मंदिर के बाहर विनायक की प्रतिमा है। इसके अलावा कई देव प्रतिमाएं मंदिर प्रांगण में हैं, कुछ प्रतिमाएं भग्नावशेष के रूप में हैं।

मंदिर में दो शिलालेख हैं, जिसमें से पहला लेख गर्भगृह के पीछे वाली दीवार पर है तथा दूसरा विनायक प्रतिमा के बांयी ओर आधा जमीन में तथा आधा बाहर की ओर है, दोनों ही लेख भिन्न समय के ध्यान पड़ते हैं।

मंदिर का गर्भगृह श्रीयंत्रनुमा बना हुआ है, जिसकी एक विशेष मान्यता भी है। मंदिर का विभिन्न कालक्रमों में जीर्णोद्धार भी होता रहा है। मंदिर भीनमाल के प्राचीन आबादी के दक्षिण छोर पर है। यह कौशिक श्रीमालियों की कुलदेवी मानी जाती है। मंदिर ब्राह्मणों, जैनों एवं वर्णिकों के साथ-साथ जन-जन की आस्था का केन्द्र भी है। यह देवी लक्ष्मी कमलेश्वरी नाम से भीनमाल में पूजी जाती है।[14]

श्री महालक्ष्मी मंदिर, सदर बाजार, (भीनमाल)

श्री महालक्ष्मी मंदिर भीनमाल नगर के मुख्य सदर बाजार में स्थित है। गर्भगृह में महालक्ष्मी की प्रतिमा के साथ साथ विष्णु एवं विनायक प्रतिमाएं भी है। यह श्रीमाली ब्राह्मण समाज भीनमाल की सम्पत्ति है। आश्विन कृष्ण षष्टी को पाटोत्सव मनाया जाता है, जो महालक्ष्मी जन्मोत्सव माना जाता है। यह चन्द्रास श्रीमालियों के साथ सोनियों एवं जैनों की कुलदेवी मानी जाती है। श्रीमाल पुराण के अनुसार, महालक्ष्मी देवी की उपासना करने वालों के लिए भाद्रपद कृष्ण अष्टमी का दिन खास महत्व रखता है।[15]

महालक्ष्मी देवी

श्री वरूणाची योगेश्वरी देवी मंदिर, तलबी रोड, (भीनमाल)

श्री वरूणाची योगेश्वरी देवी मंदिर में दो देवी प्रतिमाएं हैं, पहली, वरूणाची देवी तथा दूसरी योगेश्वरी देवी की प्रतिमा है। योगेश्वरी देवी की प्रतिमा अष्टभुजाधारी है। मंदिर प्राचीन त्रम्बक सरोवर या तलबी तालाब की पाल के पश्चिमी छोर पर थोड़ी उंचाई पर स्थित है। ज्येष्ठ कृष्ण नवमी को पाटोत्सव का आयोजन प्रतिवर्ष किया जाता है तथा नवरात्रि के दिनों में लोग साधना के लिए आते हैं। यह कश्यप श्रीमालियों के साथ-साथ सोनी एवं जैन की कुलदेवी मानी जाती है।[16]

योगेश्वरी देवी

श्रीमाल पुराण के अनुसार, योगेश्वरी देवी जगत का कल्याण करने वाली और वंध्या स्त्री को तेजस्वी, आनंदी और दीर्घायू पुत्र देने वाली है।[17]

श्री वरूणाची योगेश्वरी देवी मंदिर, तलबी रोड, (भीनमाल)

वरूणाची देवी की चतुर्भुजाधारी प्रतिमा श्री वरूणाची योगेश्वरी देवी मंदिर में स्थित है। यह सनकस श्रीमालियों की कुलदेवी है।

वरुणाची देवी

श्रीमाल पुराण के अनुसार वरूण नामक ब्राह्मण के कुल का राक्षसों ने नाश कर दिया। ऋषियों की आज्ञा से उसने तप करके देवी लक्ष्मी को प्रसन्न किया तथा वरदान के रूप में उसके नाम वरूण से पृथ्वी पर प्रकट होकर सर्वजन का कल्याण किया। अत: यह प्रतिमा वरूणाची देवी के नाम से श्रीमालनगर में प्रसिद्ध है।[18]

श्री बालगौरी देवी मंदिर, तलबी रोड, (भीनमाल)

बालगौरी देवी

श्री बालगौरी देवी मंदिर प्राचीन त्रम्बक सरोवर या तलबी तालाब की पाल के पश्चिमी छोर पर थोड़ी ऊंचाई पर स्थित है। यहां तीन प्रतिमाएं हैं, मध्य में बालगौरी देवी, दांई ओर महालक्ष्मी एवं बांई और सरस्वती है। पाटोत्सव आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी को प्रतिवर्ष मनाया जाता है। यह वच्छस श्रीमालियों की कुलदेवी है।

श्रीमाल पुराण के अनुसार, देवी पार्वती को विन्ध्याचल पर्वत देखने और

जानने की इच्छा हुई और भगवान शिव से उन्होंने विनती की। वृषभ पर सवार होकर भगवान शिव और देवी पार्वती विन्ध्याचल पर्वत की ओर जाते हैं। जंगल में देवी पार्वती को पानी पीने की प्यास लगी। भगवान शिव ने अपनी जटा से गंगा प्रकट की और देवी पार्वती की तृष्णा शांत की। भगवान शिव फिर गंगा के खूब गुणगान गाने लगे। तभी देवी पार्वती को क्रोध आ गया और कहा कि गंगा आपके मन में है, तो मैं कंदमूल का आहार कर और भोजपत्र पहने बड़ा तप करूंगी कहकर पर्वत की तरफ चल दी। पीछे मधुर वचन बोलते भगवान शिव चलते रहे।

देवी पार्वतीजी चलते चलते श्रीमाल क्षेत्र में पहुंची तभी भगवान शिव आकाश मार्ग से आते हैं। देवी पार्वती यक्ष कूप के पास कश्यप के आश्रम के पास थक कर संध्या के समय बैठी थी। यह जानकर देवी लक्ष्मी बालरूप धारण कर उनका स्तवन करने आ जाती हैं और देवी पार्वती को अकेले आने का कारण पूछती हैं, तो देवी पार्वती बताती है कि बालिका क्या जाने, यह बात तो प्रौढ़ावान स्त्री ही जान सकती है। तभी देवी लक्ष्मी अपने मूल स्वरूप में प्रकट होकर गले मिलकर सब बात कह देती हैं। इस समय भगवान शिव भी वहां आते हैं और दोनों का क्रोध देवी लक्ष्मी शांत करती हैं।

इस पर देवी पार्वती अत्यंत प्रसन्न होकर देवी लक्ष्मी को वरदान देती हैं कि श्रीमाल क्षेत्र में हमेशा अंशरुप में रहेंगी । बालरूप धारण करने वाली देवी लक्ष्मी से देवी पार्वती प्रसन्न हुई इसलिए उनका नाम देवी पार्वती बालगौरी नाम से प्रसिद्ध हुआ। बालगौरी का रूप बनाकर भगवान शिव और देवी पार्वती पूजन करते है।[19]

श्री नागणेश्वरी देवी मंदिर, नेहरू मार्केट, (भीनमाल)

भीनमाल शहर में नेहरू मार्केट में विराजित श्री नागणेश्वरी देवी मंदिर की देखभाल सनातन धर्म ट्रस्ट भीनमाल द्वारा की जाती है। प्रतिमा छोटे आकार की है तथा प्रतिमा के नीचे एक लेख है, जो जोधपुर महाराजा मानसिंह (1803-1843 ई.) का है। यह जोधपुर के राठौड़ शासकों एवं उपमन्यु श्रीमालियों की कुलदेवी हैं।

नागणेश्वरी देवी

श्रीमाल पुराण के अनुसार, नागों ने श्री तीर्थ पर देवी पार्वती की आराधना की, तो देवी पार्वती ने प्रसन्न होकर नागों को वर मांगने को कहा तब नागों ने कहा, हे देवी! आप हम पर प्रसन्न हो तो आप इस श्री तीर्थ पर सदा निवास कर भक्तों की सहायता करो।[20]

श्री सुरभि बगस्थली देवी मंदिर, रानीवाड़ा रोड, (भीनमाल)

श्री सुरभि बगस्थली देवी मंदिर, भीनमाल के रानीवाड़ा रोड पर एक टेकरी पर स्थित है। हाल ही में मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया गया है साथ ही एक भव्य शिवालय भी है। प्राचीन देवी प्रतिमा को वैसा ही रखा गया है। यह कपिंजल श्रीमालियों की कुलदेवी है।

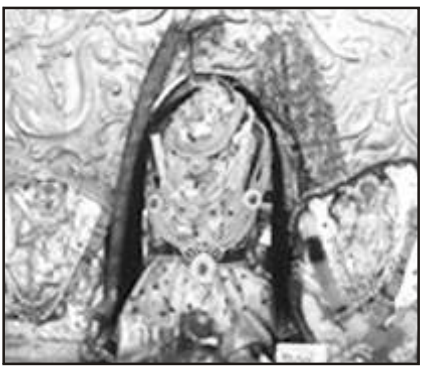

बगस्थली देवी

श्रीमाल पुराण के अनुसार, बाश्कलिक या बकासुर नाम के दानव ने ऋषि मुनियों में आंतक मचा रखा था। ऋषि मुनियों ने देवी चामुण्डा की आराधना की। देवी प्रकट हुई और ऋषि मुनियों से कहा कि तुम डरो मत, बकासुर का मैं वध कर दूंगी। शीघ्र ही देवी का बकासुर से भयंकर युद्ध हुआ और देवी द्वारा बकासुर का वध कर दिया गया। अतः बगस्थली देवी के नाम से प्रसिद्ध हुई।[21]

दत्तचण्डी देवी, श्री चण्डीनाथ महादेव परिसर, (भीनमाल)

श्री दत्तचण्डी देवी मंदिर, श्री चण्डीनाथ महादेव परिसर, भीनमाल में स्थित है। यह हरितस श्रीमालियों

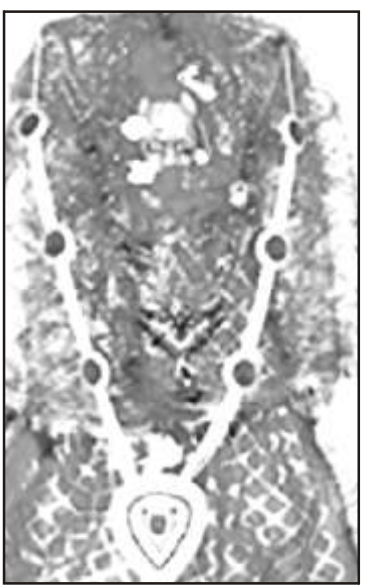

दत्तचण्डी देवी

की कुलदेवी है। यह मूर्ति प्राचीन है तथा मूर्ति के नीचे एक लेख भी है। गर्भगृह के बाहर दाईं ओर एक सुरभि लेख है।

श्रीमाल पुराण के अनुसार, श्रीमाल क्षेत्र में सोमश्रवा नामक ब्राह्मण का पुत्र खो जाता है। देवी कृपा से सोमश्रवा को पुनः अपना पुत्र प्राप्त हुआ। अतः देवी दत्तचण्डी नाम से प्रसिद्ध हुई।[22]

श्री वट्यक्षणी देवी मंदिर, ग्राम आलड़ी, (भीनमाल)

वट्यक्षणी देवी को पूर्व में भूतमाता के नाम से जाना जाता था, जो मूल रूप से यक्षिणी है। यह मंदिर भीनमाल के दक्षिण में आठ किलोमीटर दूर आलड़ी ग्राम में है। देवी की प्रतिमा चतुर्भुजी है, जिसकी बाईं भुजाओं में तलवार, अक्षयपात्र एवं दाईं भुजाओं में डमरू एवं त्रिशूल हैं तथा सिंह पर सवार है। मंदिर उद्याननुमा है, जहां नीम एवं पीपल के पेड़ हैं। यह पाराशर श्रीमालियों की कुलदेवी है।

वट्यक्षणी देवी

श्रीमाल पुराण के अनुसार, यक्षिणी देवी ने एक वटवृक्ष को निवास हेतु पसन्द किया, जहां पहले से ही पांच सौ पिशाचों का डेरा था। लेकिन दोनों ही पक्ष इस स्थान को पाना चाहते थे, अतः युद्ध निश्चित था। तब ब्रह्माजी के कहने पर यह वटवृक्ष देवेश्वरी यक्षिणी को प्राप्त हुआ, तब से वट्यक्षणी नाम से प्रसिद्ध हुई।[23]

श्री निम्बजा देवी मंदिर, ग्राम नरता, (भीनमाल)

श्री निम्बजा देवी मंदिर ग्राम नरता में है, जो भीनमाल शहर से 11 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां प्रतिवर्ष बैशाख शुक्ल चतुर्दशी को महोत्सव का आयोजन होता है। यह गौतम श्रीमालियों की कुलदेवी है।

निम्बजा देवी

श्रीमाल पुराण के अनुसार, निम्बजा देवी के दर्शन मात्र से सर्वभय का नाश होता है। एक बार भगवान शिव श्रीमाल में आकर नीम के पेड़ के नीचे ध्यानस्थ हुए। तभी उस रात्रि में बहुत सारी योगिनियां आयी जिन्हें वहां नृत्य करना था। वे भगवान शिव को पहचान न पायी और उन्होंने भगवान शिव को वहां बांध दिया। देवी पार्वती ने योगिनियों को सबक सिखाया और भगवान शिव को मुक्त किया। संकट से बचने के लिए निम्बजादेवी की आराधना होती है।[24]

श्री बिन्दुक्षणी देवी मंदिर, ग्राम सावीधर, (भीनमाल)

श्री बिन्दुक्षणी देवी मंदिर, भीनमाल से 12 किलोमीटर की दूरी पर स्थित ग्राम सावीधर में है। यह मंदिर श्रवंती या सांगी नदी के किनारे स्थित है। देवी की प्रतिमा चतुर्भुजी है, जिसकी बांई भुजाओं में तलवार, अक्षयपात्र एवं दांई भुजाओं में डमरू एवं त्रिशूल है तथा सिंह पर सवार है। यह भारद्वाज श्रीमालियों की कुलदेवी है।

बिन्दुक्षणी देवी

श्रीमाल पुराण के अनुसार, श्रीमालनगर में एक कुण्डपा नामक गुणी ब्राह्मण निवास करता था। उसके यहां अतिथि के रूप में तंत्र-मंत्र एवं औषध विद्वान का आना हुआ, कुण्डपा की भावभक्ति से प्रसन्न हो कुछ वर मांगने को कहा जिससे तुम्हारी सहायता हो सके। तब कुण्डपा ने बताया कि सौगन्धिक पर्वत की गुफा से नागलोक का रास्ता है, जहां नागराज की कन्या इशुमति के लिए सुयोग्य वर की तलाश हो रही है परन्तु कोई वहां नहीं पहुंच पाया है। तब विद्वान ने उसे एक ऐसा अंजन दिया और कहा कि इसके लगाने से अंधेरे में भी दिखेगा और तुम नागलोक पहुंच जाओगे।

दूसरे दिन कुण्डपा नागलोक पहुंच गया तथा कुछ प्रश्नों के उत्तरों के पश्चात इशुमति से उसका गन्धर्व विवाह हो गया। वे दोनों खुशीपूर्वक श्रीमालनगर में रहने लगे। कुछ दिनों के बाद इशुमति को अपनी सखियों की याद आने लगी और विलाप करने लगी कि इस लोक में मेरा कोई बन्धु या मित्र नहीं है। उसी समय आकाश मार्ग से लोक देवी का आगमन हुआ। वे बोली मैं तुम्हारे बन्धुओं की शुभचिन्तक हूं और मुझसे वर मांगो। इशुमति बोली कि आप पृथ्वीलोक में मेरी माता के रूप में निवास करें। लोक देवी ने इस प्रार्थना को स्वीकार किया और ग्राम सावीधर में विराजित हुई।[25]

श्री खरानना देवी मंदिर, ग्राम सावीधर, (भीनमाल)

यह मंदिर भीनमाल के सावीधर ग्राम में है, जो चीतुरोड़ी नदी किनारे स्थित है। मंदिर का जीर्णोद्धार हाल ही में करवाया गया है। यह मोद्गल श्रीमालियों की कुलदेवी है। श्रीमाल पुराण के अनुसार पूर्वकाल में गौतमी नामक एक ब्राह्मणी के एक विलक्षण पुत्र हुआ। बालक के पिता बाल्यकाल में ही स्वर्गवासी हो गये थे। एक बार वह जंगल में गया और पुष्प प्राप्त करने के लिये पाटला नामक वृक्ष की डाली पर चढ़ा। इस समय एक सर्प ने बालक को डस लिया। उसकी माता ने प्रभु इच्छास्वरूप इस दुःख को सहन किया और पुत्र का दाह संस्कार किया। वह स्त्री तपस्या हेतु श्रीमाल नगर में गई और एक बिल्व वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बैठ गई। उस समय पाताल मार्ग से गधे जैसा सिर वाला एक दैत्य प्रकट हुआ। वह राक्षस उस स्त्री की पूजा सामग्री नष्ट कर देता था, तब तपस्विनी सूर्यदेव की आराधना करने लगी।

खरानना देवी

उसी समय सूर्य मंडल से एक शक्ति प्रकट हुई जो गर्दभ की शक्ल में भारी ध्वनि कर रही थी। उसने कहा, हे गौतमी! तुम भयरहित हो जाओ, मैं उस दैत्य का वध कर दूंगी। वह शक्ति बिल्वपत्र के वृक्ष के मध्य में समा गई। रात्रि में वह

दैत्य आया तो बिल्वपत्र के बीच से उस शक्ति ने प्रकट होकर दैत्य का वध कर दिया।

गौतमी ने देवी की मधुर शब्दों में स्तुति की। देवी ने कहा, हे तपस्विनी! मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर मांगो। गौतमी ने कहा कि मुझे सांसारिक कार्यों से कोई लगाव नहीं है। मैं आपके नित्य दर्शन करती रहूँ इसलिये आप सदा यहीं पर निवास करें। वह देवी खराननना देवी के नाम से विख्यात हुई।[26]

इस प्रकार से उपर्युक्त आलेख में भीनमाल के देवी मंदिरों से सम्बन्धित कथाएं स्पष्ट होती हैं। इन देवी मंदिरों में कई गौत्रों की कुलदेवियाँ विराजमान हैं। ये मंदिर जन आस्था के केन्द्र के साथ-साथ सांस्कृतिक महत्व भी रखते हैं। इन मंदिरों में समय-समय पर लगने वाले मेलों, उत्सवों एवं धार्मिक अनुष्ठानों से आर्थिक-क्रियाकलाप भी संचालित होते हैं, जिससे भीनमाल का सामाजिक एवं आर्थिक विकास हो रहा है।

संदर्भ

1. राव गणपतसिंह चीतलवाणा, *भीनमाल का सांस्कृतिक वैभव*, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण; 2011, पृ. 13
2. रत्न संचय सूरीश्वर, *जैन ग्रंथों की गोद में भीनमाल की भव्यता*, श्री रंजनविजयजी जैन पुस्तकालय, मालवाड़ा, प्रथम संस्करण, 2015, पृ. 291
3. *मातेश्वरी संदेश*, मासिक पत्रिका, ग्रंथ लेखमाला, 3 मार्च 2015, पृ. 15
4. जटाशंकर लीलाधर एवं केशवजी विश्वनाथ, *श्रीमाल पुराण*, विजय प्रवर्तक, अहमदाबाद, 1899, पृ. 5
5. राजेन्द्र ओझा, *श्रीमाली गोत्रानुसार कुलदेवियां*, अखिल भारतीय श्रीमाली मैत्री संगम, मुम्बई, 2008, पृ. 3
6. ठाकुर प्रसाद शर्मा एवं डॉ. शाहिद अहमद, *ह्वेनसांग की भारत यात्रा*, साहित्यागार, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 413
7. वशिष्ठ मुनि; हिन्दी अनुवादक : रमाकान्त एम. व्यास, संपादक : भावेश भारद्वाज, *श्रीमाल पुराण*, श्रीमाली संदेश, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण, 2016, पृ. 130-135
8. राजेन्द्र ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 69-70
9. भगवतीलाल शर्मा, *श्री सुन्धा माता तीर्थ*, चतुर्थ संस्करण, श्रीकृष्ण-रूकमणी प्रकाशन, जोधपुर, 2012, पृ. 5

10. राजेन्द्र ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 75-77
11. भगवतीलाल शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 20-22
12. वशिष्ठ मुनि, पूर्वोक्त, पृ. 156-58
13. राजेन्द्र ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 35
14. वशिष्ठ मुनि, पूर्वोक्त, पृ. 246-251
15. वही, पृ. 54-57
16. राजेन्द्र ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 61-62
17. वशिष्ठ मुनि, पूर्वोक्त, पृ. 68-73
18. वही, पृ. 256-257
19. वही, पृ. 230-234
20. वही, पृ. 118-119
21. वही, पृ. 94-103
22. वही, पृ. 228-229
23. वही, पृ. 79-82
24. वही, पृ. 226
25. वही, पृ. 110-117
26. वही, पृ. 141-143

डॉ. पीयूष भादविया
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

मोहित शंकर सिसोदिया
शोधार्थी, इतिहास विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

❑❑❑

मारवाड़ के ताजीमी ठिकानों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

• डॉ. भगवान सिंह शेखावत

मारवाड़ में ठिकाना व्यवस्था रियासत की राजनीतिक, सैन्य व आर्थिक व्यवस्था की मुख्य धुरी रही है। मारवाड़ के शासक राव जोधा ने सर्वप्रथम राज्य का शासनतंत्र सुव्यवस्थित चलाने के लिए और अपने भू-भाग की सुरक्षा के लिए अपने भाइयों व पुत्रों को भूमि वितरित की। राव जोधा ने *डावी* व *जीवणी मिसल* कायम की जिसमें *डावी मिसल* में अपने पुत्रों को और *जीवणी मिसल* में भाइयों को स्थान दिया।[1] लेकिन *मिसल* प्रक्रिया महाराजा सूरसिंह के समय प्रारम्भ हुई, राव जोधा ने अपने भाइयों व पुत्रों में मात्र भूमि का बंटवारा किया था।

मारवाड़ राज्य में ठिकानेदारों की मुख्य रूप से दो श्रेणियाँ थी—

1. राजवी 2. सरदार

1. **राजवी**—राजा के छोटे भाई व निकट के सम्बन्धी, जिन्हें अपने निर्वाह के लिये जागीर दी जाती थी वे 'राजवी' कहलाते थे। उन्हें तीन पीढ़ी तक *रेख, चाकरी, हुक्मनामा* आदि की रकम राजकोष में जमा नहीं करवानी पड़ती थी। तीन पीढ़ी के पश्चात् ये राजवी भी सामान्य ठिकानेदारों की श्रेणी में आ जाते थे।
2. **सरदार**—इसमें ठिकानेदारों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) *सिरायत*, (ब) *ताजीम*, (स) *गनायत* और (द) *मुत्सद्दी*।

ताजीमी श्रेणी मारवाड़ की ठिकाना व्यवस्था की महत्वपूर्ण श्रेणी थी। जोधपुर के शासकों ने विभिन्न राजपूत खांपों को समय-समय पर जो ठिकाने इनायत किये थे, जो इस प्रकार थे[2]—

1.	जोधा	—	29
2.	जैतमालोत	—	3
3.	उदावत	—	22
4.	उहड़	—	3
5.	करणोत	—	8
6.	करमसोत	—	3
7.	कांधलोत	—	1
8.	कूंपावत	—	18
9.	चांपावत	—	32
10.	जैतावत	—	4
11.	धवेचा	—	2
12.	नरावत	—	1
13.	पातावत	—	3
14.	मांडनोत	—	1
15.	मंडला	—	2
16.	बाला	—	8
17.	रूपावत	—	1
18.	शोभावत	—	1
19.	मेड़तिया	—	58
20.	महेचा	—	6

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है कि जोधपुर के शासकों ने स्व-गोत्रीय जोधा के अलावा मेड़तियों एवं चांपावतो को अधिक महत्त्व दिया।

राज्य की ओर से उपर्युक्त राजपूत खांपों को जो विभिन्न ठिकाने आवंटित किये गये हैं, उनकी सूची इस प्रकार है[3]—

1. **जोधा**—गोराऊ, छाजोली, टालनीयाऊ, तीतरी, दुगोली, पालड़ी, जोधा, केसवाना, डीरी, पहाड़पुरा, बाला, भादराजूण, रामा, रोईसा बड़ा, रोईसा छोटा, लाडनू, लेड़ी, सिगरावट बड़ी, सेवा (पांती), मान, खुनखुना, घुड़ीसा, नीम्बी जोधा, बाठड़ी, सोई, लोटती, बाबरा, पावा, पाटौदी, खैरवा, भग सेवा (पांती)

2. **जैतमाल**—नगर, गुड़ा, राड़धरा (मालानी)

3. **ऊदावत**—कालीयाटाड़ा, बवाल, पीह, गरनिया, देवली (ऊदावतां), नीम्बेड़ा, नींबोल, नीमाज, बर, बरांटिया, बांसिया, बेड़कलां, मोरा, रायपुर, रास, रामपुरा, डेह, सांडीलो, सामूजा, बोयल, गूंदोज, पालासणी।

4. **उहड़**—कडलु, कोरणा, रेवतड़ा।

5. **करणोत**—समदड़ी, सूरपुरा, काणाणा, किटनोद, बागावास, झंवर, भाकरी, मुंडाडा।

6. **करमसोत**—पांचाड़ी, नागड़ी, खींवसर।

7. **कांधलोत**—लाबा जाटां।

8. **कूम्पावत**—गरासनी, गजसिंहपुरा, आसोप, रहोद, कंटालिया, चेलावास, चंडावल, मलसाबावड़ी, मांडा, सिरियारी, नाडसर, चांदेलाव, रामसीन, बासनी, परासरी, बूसी, सिवास।

9. **चांपावत**—चाऊ, बरनेल, अडवड़, खाटू बड़ी, आऊवा, दूदोड़, धामली, बाता, भंवालिया, बिठोड़ा कलां, सांडिया, आहोर, बाकरा, बुड़तरा, भैंसवाड़ा, मालगढ़, हरजी, खींवाड़ा, खुडाली, जानीयानां, दासपां, दीवाणदी, रोहट, लाम्बीया, रणसी गांव, समाड़िया, हरियाडाणा, हरसोलाव, बामसीन, पीलवा।

10. **इन्द्रसिंह**—कांकाणी।

11. **जेतावत**—खोखरा, बगड़ी, थांवला, नून।

12. **धवेचा राठौड़**—पादरू, चैनपुरा।

13. **नरावत**—बू।

14. **पातावत**—आऊ, पलीना, करनु।

15. **मांडणोत**—अलाय।

16. **मंडला राठौड़**—भंवरानी, चोडां।

17. **बाला राठौड़**—मोकलसर—2, मोटाऊ, परला, ऐलाणा, नींबलाना, बालवाड़ा, बीसटु, मांडला (मांडवला)।

18. **रूपावत राठौड़**—चाखू।

19. **शोभावत राठौड़**—पाल।

20. **लाड़खानी कच्छवा**—दयालपुरा, लालासरी।

21. **राणावत (सीसोदिया)**—झालामंड, बेड़ा, नाना, बीजापुर, बोया, सांडेराव, खिमाड़ा।

22. **चौहान**—खारड़ी, रातंगा, संखवास, चीतलवाणा, अरनाय, सोईन्तरा, कल्याणपुर, बांकली, बीसलपुर, कोरटा, फींच, रोहिचा खुर्द, सरख नोसरा, सायला, सेण, खीलारी, राखी, बड़गांव, जोजावर, सूराचन्द।

23. **भाटी यादव**—बिरलोका, भीकमकौर, लवेरा, रायमलवाड़ा, जाखण, टोडीयाणा, नांदीया, नेवरा, वालरवा, बेरू, बुचेटी, मतोड़ा, ओसियां, उम्मेदनगर, खुड़ियाला, भवाद, ओलवी, खेजड़ला, कापरड़ा, चिरडाणी, बुचकलां, रामपुरा, साथीण, कोटड़ी, फली, मोकलनाड़ी, गोठड़ा, गाजूं, भांवरी, सोडावास।

24. **तंवर**—केलावा (पांती शूरसिंह), खेतासर।

25. **मेड़तीया**—बडू, गूलर, जावला, मनाणा, मंगलाणा, बस्सी, सुदासन, नारायणपुरा, देवलो कलां, जीलिया, जावदी, नगर, घाटवा, कुकणवाली, कुचामण, अभयपुरा, पांचोता (शक्तिसिंह) पांचोता (उम्मेदसिंह), भांवता, मींडा, मीठड़ी, लोचाना (उम्मेदसिंह), लोचाना (भगवन्तसिंह), लूणवा (सोभागसिंह), लूणवा, सरगोठ, आलणियावास, ईडवा, कुमड़ावास, गोठड़ा, चांदारूण, चुबा, चुई, डावा, घोलेराव कलां, नोखा, मेडास, रीयां, रेण, सेवरिया, सुमेल, बलून्दा, कुड़की, खोड, घाणेराव, बरकाना, चाणोद, फालना, बोरून्दा, टांगला।

26. **महेचा राठौड़**—जसोल (जोरावरसिंह), जसोल (माधोसिंह), जसोल (शिवनाथसिंह), थोब, सिणदरी (खंगारसिंह भोमीचारा), सिणदरी (गुलाबसिंह)।

27. **सिंधल राठौड़**—रोड़ला, कंवला।

28. **काश्मीरी ब्राह्मण**—जस नगर।

29. **चारण**—मुंदियाड़।

30. **भाट**—बुरकिया।

31. **बैरागी साधु**—झींतड़ा।

मारवाड़ के प्रत्येक ताजीमी ठिकानों एवं ठिकानेदारों का ओहदा (स्टेट्स) समान नहीं था। कोई ताजीमी ठिकाना तत्कालीन शासक के कितना निकट था?

एवं उसकी रेख[4] के साथ राज्य की तरफ से जो *सिरोपाव*[5] दिये जाते थे उससे पता चलता था। ठिकाने की कुल रेख व गाँवों की संख्या निश्चित नहीं थी इसमें घटत-बढ़त होती रहती थी। उदाहरणार्थ—महाराजा अजीत सिंह ने सगत सिंह को वि.स. 1764 में 18,500 की रेख से रोहट की जागीर दी थी,[6] जो क्रमशः बढ़ती रही।

ताजीमी ठिकानों को प्रदत्त सम्मान इस प्रकार थे[7]—

1. **इकेवड़ी ताजीम**—ठिकानेदार जब दरबार में प्रवेश करता था। तब आगमन के समय महाराजा खड़े होकर उसका अभिवादन स्वीकार करते थे।
2. **दोवड़ी ताजीम**—इसमें ठिकानेदार के आगमन व विदा लेने पर दोनों बार महाराजा खड़े होते थे।
3. **हाथ का कुरब**—महाराजा द्वारा यह सम्मान ठिकानेदारों को विशेष दरबार में उनके आगमन पर दिया जाता था। यह विशेष सम्मान 'हाथ का कुरब' कहलाता था। इस ताजीम के ठिकानेदार जब महाराजा की अचकन के पल्ले को छू कर जब अभिवादन करते थे, तब महाराजा ठिकानेदार के कंधे पर हाथ लगाकर अपनी छाती तक ले जाते थे। हाथ का कुरब, *इकेवड़ी* व *दोवड़ी* दोनों ताजीम प्राप्त ठिकानेदारों को मिलता था।[8]
4. **बांह पसाव**—*बांह पसाव* की ताजीम जिन ठिकानेदारों को प्राप्त थी। उसके महाराजा के सामने उपस्थित होने और तलवार उनके पैरों के पास रखने तथा उनके घुटने या अचकन के पल्ले को छूने पर महाराजा ठिकानेदार के कंधे पर हाथ रखकर अगवानी करते थे।[9] इसका तात्पर्य जहां शौर्य के युग में उनके कंधों पर राज्य का भार होने का संकेत था, जो संरक्षण काल में सामन्त के लिये अभय का संकेत हो गया। बांह पसाव श्रेणी के ठिकानेदार द्वितीय श्रेणी में आते थे।
5. **सीरे का कुरब**—*कुरब सिर साटे मिले है दाम साटे नहीं*।[10] यह कुरब मारवाड़ के विशिष्ट ठिकानेदारो को ही प्राप्त था, जैसे कि आऊवा, रियां, रायपुर, रास, निमाज आदि।

इनके अतिरिक्त *फलसे उतरण रो कुरब, खांसो ढ़ाबण रो कुरब, सामली ओल में बैठण रो कुरब, असवारी में घोड़ा अगाड़ी खडण रो कुरब* आदि विशिष्टि सम्मान ताजीमी ठिकानों को प्राप्त थे।

मारवाड़ के ताजीमी ठिकानों एवं शासकों के साथ उनके सम्बन्धों को रेख व राज्य द्वारा प्रदत्त *रूक्के-परवानों* में देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ—जोधपुर से निकटतम भौगोलिक दूरी के ताजीमी ठिकाने रोहट को राज्य द्वारा *रूक्के-परवाने* मिले जिसका उल्लेख *रूक्का परवाना* री नकलां नामक पुरालेखीय दस्तावेज में मिलता है। यथा—

'ठाकुरां कीलाण सिंह जी म्हारो जुहार वाचजो तथा बड़ा महाराज मानु आ जायगा बगसी ..... सं. 1854 रा जेठ वद 14 सोमवार'[11]

राजनीतिक रूप से निकटस्थ ठिकानेदारों को राज्य के महत्वपूर्ण सैन्य अभियानों का उत्तरदायित्व दिया जाता था। जैसे—चांपावत विट्ठलदास महाराजा जसंवत सिंह की ओर से धर्मत के युद्ध में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त की[12] जिसके वंशजों को आऊवा, दासपां, पीलवा, तथा दूदोड़ आदि ठिकाने प्राप्त हुए।

अत: स्पष्ट है कि पूर्व आधुनिककाल में मारवाड़ एक विस्तृत राज्य था जिसमें सैकड़ों जागीरे एवं ठिकाने थे। उक्त विवरण से इन ठिकानों की मारवाड़ की तत्कालीन राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका सिद्ध होती है। मारवाड़ राज्य के राजनीतिक एवं सैन्य इतिहास की विस्तृत जानकारी हेतु तत्कालीन महत्वपूर्ण ताजिमी ठिकानों का अध्ययन करना अतिआवश्यक है। अंततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि मारवाड़ सहित अन्य विभिन्न रियासतों एवं क्षेत्रीय इतिहास का समग्र मूल्यांकन तभी सार्थक सिद्ध होगा जब इनके अधीनस्थ ठिकानों की भूमिका का विस्तार से अध्ययन किया जायेगा।

संदर्भ

1. मुहणोत नैणसी, *मारवाड़ रा परगना री विगत*, (संपा.) नारायणसिंह भाटी, भाग 2, जोधपुर, 1969, पृ. 465
2. महेन्द्र सिंह नगर, *मारवाड़ के राजवंश की सांस्कृतिक परम्पराएं*, भाग-1, पृ. 168-169
3. *बलिदान पत्रिका* (साप्ताहिक) अंक 3, दिनांक 11 जुलाई 2000, पृ. 24
4. रेख—किसी भी गाँव या क्षेत्र की अनुमानित आय।
5. सिरोपाव—सम्मानस्वरूप दी जाने वाली वेशभूषा, जिसमे सिर से पाँव तक की विभिन्न कीमती वस्तुएं सम्मिलित होती हैं।

6. हुकमसिंह भाटी, 'मारवाड़ के ठिकानों की पुरालेखीय सम्पदा', (सम्पादकीय), *मारवाड़ रा ठिकाना री विगत*, (संपा.) हुकमसिंह भाटी, पृ. 6; जोधपुर, 2005

7. महेन्द्र सिंह नगर, *जोधपुर राजवंश में दरबारी शिष्टाचार*, भाग-2, जोधपुर, 2001

8. करणीदान, *सूरजप्रकाश*, (संपा.) सीताराम लालस, भाग 2, जोधपुर, 1962, पृ. 361

9. विक्रम सिंह भाटी, *मध्यकालीन राजस्थान में ठिकाना व्यवस्था*, पृ. 122

10. करणीदान, *सूरजप्रकाश*, भाग-1, जोधपुर, 1961, पृ. 206

11. 'रूक्का परवाना री नकलां', नं. 22/44, *जोधपुर अपुरालेखीय रिकॉर्ड्स*, राज. राज्य अभिलेखागार बीकानेर

12. *जोधपुर राज्य की ख्यात*, संपा. रघुवीरसिंह एवं मनोहरसिंह राणावत, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1988, पृ. 219

डॉ. भगवान सिंह शेखावत
सहायक आचार्य
इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

❑❑❑

अठारहवीं सदी बीकानेर में राजस्थानी एवं बीसवीं सदी में हिन्दी ग़ज़ल लेखन की परम्परा

• दुर्गा सुथार

इस शोध आलेख में मेरा उद्देश्य बीकानेर में राजस्थानी एवं हिन्दी ग़ज़ल साहित्य की यात्रा को रेखांकित करना है। प्रथम भाग में अठारहवीं सदी में जैन कवियों द्वारा रचित ग़ज़ल विशेषतः बीकानेर के सन्दर्भ में एवं द्वितीय भाग में वर्तमान समय में हिन्दी में लिखी जा रही ग़ज़ल पर चर्चा की जाएगी जो वर्तमान काल की परिस्थितियों का पुख्ता दस्तावेज है।

I

राजस्थान में साहित्य लेखन की परम्परा की शुरुआत पूर्व-मध्यकाल से प्रारंभ होकर मुग़लकाल तक आते आते काफी विकसित स्वरूप में देखने को मिलती है। इस काल के साहित्य में सांस्कृतिक समन्वय की विशिष्टता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। भाषाओं के आदान-प्रदान ने तत्कालीन साहित्य को भाषा की दृष्टि से सम्पन्न किया। इस काल में गद्य एवं पद्य दोनों में विपुल साहित्य का सृजन हुआ। इसी प्रकार लेखन की यह परम्परा अठारहवीं एवं बाद की सदियों में भी निरन्तर रूप से रही। राजस्थानी पद्य में विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया। अठारहवीं सदी में उर्दू में ग़ज़ल लेखन काफी प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय था इस दौर में ग़ालिब एवं मीर जैसे शायरों ने इस शैली के लेखन को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया। इसकी लोकप्रियता ने ग़ैर-उर्दू लेखकों एवं बुद्धिजीवियों को अपनी ओर आकर्षित किया। समाज के एक ऐसे वर्ग को इस शैली को हिन्दी-राजस्थानी मिश्रित भाषा में लिखने का श्रेय जाता है जो घुमक्कड़ था। यहाँ मेरा तात्पर्य जैन मुनियों से है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहते थे। सिर्फ बरसात में चार महीने एक स्थान पर रुक कर

अपने अनुयायियों को प्रवचन देते थे। अधिकांशतः ये मुनि उन्हीं स्थानों की यात्राएँ करते थे जहाँ इनके अनुयायी केन्द्रित होते थे। अधिकांशतः इन मुनियों का समय अध्ययन एवं प्रवचन में व्यतीत होता था। सामान्यतः वे अपने समकालीन लेखन शैलियों से पूर्णतः परिचित होते थे जिसकी पुष्टि सतरहवीं अठारहवीं सदी में जैन मुनियों द्वारा गजल शैली में लिखित रचनाओं से होती है। भँवरलाल नाहटा के अनुसार सर्वप्रथम गजल कवि जटमल नाहर रचित 'लाहोर ग़ज़ल' प्राप्त होती है। इसी परम्परा एवं शैली का अनुसरण जैन कवियों ने किया परिणामतः उन्नीसवीं सदी तक पचासों ग्राम एवं नगरों पर केन्द्रित रचनाओं का सृजन किया।[1] प्रकारान्तर से श्री अगरचन्द नाहटाजी जैन कवियों द्वारा रचित गजलों का उर्दू ग़ज़ल से कोई सम्बन्ध नहीं मानते जो सही प्रतीत नहीं होता।

उदयचन्द द्वारा लिखित **बीकानेर ग़ज़ल** की रचना वि.सं.1765/ ई. 1708 में की गई जिसका वर्णय विषय बीकानेर शहर की बसावट, बाजारों, व्यापारियों (सर्राफ, बजाज, हलवाई एवं जौहरी आदि), देवालयों एवं निवास स्थानों आदि का है। इसके अतिरिक्त जल संसाधनों यथा जलाशयों, कुओं एवं बावड़ियों का वर्णन भी ग़ज़ल का हिस्सा है। शहर के विभिन्न मौहल्लों एवं विभिन्न जातियों का सविस्तार वर्णन अंकित है। स्त्रियों के सौन्दर्य, उनकी वेशभूषा एवं आभूषणों का सजीव चित्रण कवि की व्यापक दृष्टि का परिचायक है।[2]

बीकानेर के शासक सुजाणसिंह एवं मुग़ल बादशाह के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे जो बीकानेर महाराजा पर अत्यधिक महरबान था एवं उसका बहुत सम्मान करता था। महाराजा के चाकरों का वर्णन करने के पश्चात् कवि महाराजा के दरबार आदि को भी ग़ज़ल में स्थान देता है।[3] बीकानेर के जलाशयों अनोपसागर, सूरसागर, घड़सीसर तलाब, गोगाजीक एवं सांसोलाव एवं हरसोलाव आदि का वर्णन किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि कवि ने 'शहर में जो देखा' उसे ही उसने अपनी ग़ज़ल में स्थान दिया इस प्रकार उसकी काव्य रचना तत्कालीन समाज का तथ्यात्मक दर्पण है। कवि ने काव्य की पंक्तियों में ग़ज़ल की शैली का अनुसरण करने का प्रयास किया है जो निम्न पंक्तियों से दृष्टव्य है :

संवत सतरै सै पैंसटे रे, मास चेत में पूरी गजल कीनी।
मात शारद कै सुपसाय सुरे, मुझे खूब करण की मति दीनी।।
बीकानेर शहर अजब है रे, च्यार चक में ताकी प्रसिद्धि लीनी।
उदयचन्द आणंद सू यूं कहे रे, त्तले चातुरक लोक कै चित भीनी।।
चंक च्यारे नव खंड में रे, प्रसिद्ध वधावो बीकानेर तांई।
छत्र पति सुजाणसाह जुग जीवो, जाके राज में बाजै नौबत छाई।।

II

बीकानेरी संस्कृति, परम्परा, विरासत में यहाँ के साहित्यकारों का विशिष्ट योगदान रहा है। बीकानेर में हिन्दी ग़ज़लकारों ने भी समय-समय पर मानव जीवन के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पक्षों से जुड़े प्रायः सभी रंगों को सफलता से उकेरा है। बीकानेर की हिन्दी ग़ज़ल में देश भर के चर्चित हस्ताक्षर गजलकार अज़ीज़ आज़ाद का नाम सर्वप्रथम लिखा जाता है। बीकानेर की गंगा-जमुनी तहजीब में शेरो-सुखन के जरिए अपनी आवाज को उन्होंने देश-भर में पहुंचाया। अज़ीज़-आज़ाद की रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं का तूफान है. वहीं इंसान को बांटने वाली हर चाल का गहरा प्रतिरोध भी है। इन्होंने मानवीय प्रेम और साम्प्रदायिक सद्भाव पर कलाम रचकर पथरीली होती जा रही दुनिया से टकराकर लौटती हुई खामोश चीख के दर्द और घुटन को अभिव्यक्ति दी है। इनकी ग़ज़लों में समकालीन मानव जीवन के एहसास को गहरे स्तर पर छूकर संवेदनशील इंसान को सोचने के लिए विवश करती है और उसके दिल में चुभन भी पैदा कर जाती है। उनकी रचनाओं में अंतरग और बहिरंग दुनिया की कभी उदास तो कभी उल्लासित आवाजाही है। उनकी गजलों में रागात्मक अनुभूतियों का बौद्धिक समावेश है जो कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 'उम्र बस नींद सी', 'भरे हुए घर का सन्नाटा' और 'हवा और हवा के बीच' इनके प्रमुख ग़ज़ल संग्रह हैं। सृजन प्रक्रिया को समझते हुए वे कहते हैं—

'गुल हो जाता है सूरज भी हर शाम,
मगर नहीं मरती है आग
जलती रही है निरन्तर
कई-कई रूपों में
चाहे मुझमें रहे या आसमान में
वह है कहीं न कहीं
जलती या सुलगती हुई
दिलों में, दिमाग़ों में,
नहीं होती यदि आग
कहाँ होती कविता भी?
यह दुनिया भी
केवल जलाती ही नहीं है
रचती भी है आग।'[4]

अज़ीज़ आज़ाद ने दर्द और घुटने भरे माहौल में व्यक्ति के अस्तित्व को पहचाना—

'मेरा वजूद भी क्या है तुम्हें बताऊँगा
जिस्म की कैद से जिन दिन निकल जाऊँगा।
मुझे नज़र की हदों से समेटने वालों
ये कितनी तंग हदें हैं, तुम्हें बताऊँगा।।'[5]

'भरे हुए घर का सन्नाटा' गजल संग्रह इंसानों के बीच पनपने वाली नफरत और मानवीय मूल्यों के हनन के प्रति जागरूकता का संदेश देता है—

'भरे हुए घर का सन्नाटा और भी गहरा लगता है,
ऐसे में एक धूप का टुकड़ा कितना अच्छा लगता है
वो जो खुद को बांट चुका है, इतने रिश्ते नातों में
उम्र ढली तो अब अपनों में कितना तन्हा लगता है।'[6]

अब्दुल रहमान पेशकार 'खादिम' का नाम बीकानेर के सुप्रसिद्ध शायरों में प्रमुखता से लिया जाता है। उन्होंने उर्दू शब्दावली के साथ हिन्दी एवं आंचलिक बोली का मिश्रण करके साहित्य में नवाचार किया है। उनकी ग़ज़लों की प्रस्तुति, प्रभावोत्पादकता श्रोताओं को रोमांचित करती है। खादिम साहब हर दिल अज़ीज़ शायर है। खादिम साहब की काव्य शैली की एक विशिष्ट पहचान है। उन्होंने उर्दू के साथ राजस्थानी का दूध और मिश्री वाला मिश्रण करके बीकानेर के साहित्य में अनूठा योगदान दिया है।[7] पेशकार की रग-रग में देश प्रेम व्याप्त है और उनका यही देश-प्रेम उनके गजल संग्रह 'खुशबुओं का सफर' में दृष्टिगत होता है। इसमें खादिम साहब ने मानवीय प्रेम, देश-प्रेम, साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे भावों की अभिव्यक्ति दी है और साथ ही बीकानेर जिले के जन-जीवन की अनूठी झलक भी इनकी गज़लों में दिखाई देती है। अपनी गज़लों के माध्यम से वे समाज में रहने वाले लोगों के बीच अमन व भाई चारे का पैगाम देते हैं और साथ ही अपनी देशभक्ति का उदाहरण देते हुए आम आदमी में यह भावना पैदा करना चाहते हैं कि जिस देश में हमने जन्म लिया है। उस देश के लिए हंसते-हंसते अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देना चाहिए। इसी देश भक्ति का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है—

'बीज बोकर वतन की उलफत के
खारों गुल सबको एक दिल कर दे

बागवानी का हक, अदा यूं कर के
इन बहारों का मुस्तकिल कर दे'

हिन्दु मुस्लिम में आपस में हो रहे मंदिर-मस्जिद के झगड़े को मिटाने के लिए खादिम साहब ने लिखा है—

'मेरा दावा है जिस दम मैं मरूंगा खादिम,
पाठ मंदिर में तो मस्जिद में तिलावत होगी'[8]

शायर खादिम साहब का गजल संग्रह 'खुशबुओं का सफ़र' का मुख्य उद्देश्य मानवता और अखण्ड देश प्रेम है। इनकी ग़ज़लों में संकीर्णता और साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं है। उनके अनुसार 'शायरी मेरे लिए इंसानी जज्बात इजहारे ख्याल और खुशबू फैलाने का अहम् जरिया है। एक मौसम की तरह ज़ज्बात, ख्यालात जोर-शोर से मेरे मन में आते हैं और अशआर की शक्ल में बस कर मन को सुकून पहुँचाते हैं।

बीकानेर के हिन्दी ग़ज़लकारों में एक चर्चित नाम है डॉ. मदन केवलिया। इनकी ग़ज़लें अन्तर्मन की गहरी पीड़ाओं की अभिव्यक्ति हैं। इनकी सम्पूर्ण ग़ज़लों में मानवीय संवेदनाओं का तूफान है। निराशा, आतंकवाद विद्रोह, अकेलापन, वर्तमान जीवन मूल्य जैसे तत्वों को इन्होंने ग़ज़लों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

'डॉ. केवलिया आधुनिक भी है और उत्तर आधुनिक भी उनका सम्पूर्ण साहित्य उनकी विविध विधाएँ इस तथ्य को रेखांकित करती है।' डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा लिखते हैं।

'उत्तर आधुनिकता समय में कैसे परिवर्तन हुए हैं। आदमी का मन, उसका दिमाग ही नहीं बदला, बदली रुचि के अनुरूप उसने चीजों के नाम बदल दिये हैं। किसी ज्वालामुखी से ज्यादा लावा उनके मन में उबल रहा है। डॉ. केवलिया की ग़ज़लें इसी का प्रमाण है।'[9]

'श्मशान में जलना है आदमी को
उसे नफरतों से जलाया गया है
कदम-कदम पर डर मिलते हैं
झुके हुए अब सर मिलते हैं।'[10]

डॉ. केवलिया का ग़ज़ल साहित्य एक ओर युग की विडम्बनाओं, विसंगतियों को दृढ़तापूर्वक उकेरता है तो दूसरी ओर उनसे सामना करने के लिए

प्रेरित करता है। मधुमती पत्रिका के माध्यम से ये ग़ज़लें लिखते रहे हैं। इन ग़ज़लों का विषय अवसरवाद, बाजारवाद, सामाजिक परिवेश निराशा, आतंकवाद, राजनीति, वर्तमान समय आदि तत्त्वों को उभारना है। बाजारवाद को डॉ. केवलिया की अनेक ग़ज़लों में देखा जा सकता है। उन्होंने लिखा है—

'पहले उसे दरबार में देखा गया
फिर उसे सरकार में देखा गया
क्रान्ति उगलने वालों को हर शाम
समझौता के व्यापार में देखा गया'

वर्तमान समय का चित्रण भी उन्होंने अपनी ग़ज़लों में किया है—

'खुशियों में भी गम को हमने पीकर देख लिया
धोखा है ये जीवन हमने जी कर देख लिया'

ज्ञान और जीवन मूल्यों के बदलते स्वरूप को केवलियाजी ने अपनी गजलों में परिलक्षित किया है। इसके अतिरिक्त जातिवर्ग आदि का विरोध, अराजकता की स्थिति, आज की राजनीति और राजनेताओं और वर्तमान समय का चित्रण भी कवि ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है—

'कुछ बताया गया, कुछ छुपाया गया
झूठ का पाठ सबको पढ़ाया गया
मुकद्दर ने सबको बहुत गम दिये
हर तरीके से वो आजमाया गया
घिर गए कितने नेता सवालों में तब
जब सवालों से पर्दा उठाया गया।'[11]

बीकानेर के चर्चित ग़ज़लकारों में कवि इरशाद अज़ीज़ उन यशस्वी व उत्कृष्ट ग़ज़लकारों में से एक हैं जिनकी प्रसिद्धि अपने आप में एक महान उपलब्धि है। 'इनकी गजलें मानवीय सरोकार, समाज व देश की निरन्तर गौरव वृद्धि का साधन बनी है। उनका मन समाज के हर पहलू, परिस्थितियों व गतिविधियों की ओर झांकता है और अपने निरन्तर काव्य सृजन के लिए नई-नई सामग्री प्रस्तुत करते हैं। 'इनकी रचनाओं का मूल उद्देश्य मानवता में आपसी प्रेम भाव जाग्रत करना, अपने वजूद को अहमियत देना व स्त्री के प्रति सकारात्मक रवैया रखने वाला है।'[12]

इनके लिखे गजल संग्रह है—जिन्दगी खामोश कहाँ, आखिरी पड़ाव तक, डर है खो जाने का घर है।

'इन्होंने सीधी, सरल शैली अपनाई है जो उन्हें आम आदमी के अत्यन्त नजदीक ले जाती है। इंसान की सलामती और कशमकश से भरी ज़िन्दगी को बहुत ही सादगी और आसानी के साथ प्रस्तुत किया है। इरशाद ने अपने शब्दों को समेट कर उन्हें ग़ज़ल के रूप में व्यक्त किया है जिन्हें पढ़कर सुकून मिलता है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रची-बसी ये ग़जलें सोच को नया आयाम देने वाली हैं। ये केवल लोगों की नजरों में आने के लिए नहीं लिखते बल्कि लिखने को गहराई से अपने अंदर महसूस करते हैं।'[13]

'ज़िंदगी खामोश कहाँ' किताब के शीर्षक को उन्होंने इस संग्रह की प्रत्येक ग़ज़ल में प्रमाणित किया है। हर ग़ज़ल ही नहीं बल्कि हर शेर में उन्होंने ज़िंदगी को एक नज़रिये से देखा है। न केवल देखा है बल्कि उसे बखूबी अपने पाठकों से साझा किया है। उन्होंने दो पंक्तियों में ज़िंदगी को कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है—

'हमसे वो पूछते हैं कि क्या है ज़िंदगी
हर शाम है धुँआ-धुँआ हर सुबह रोशनी'[14]

इरशाद अज़ीज़ प्रान्तीय स्तर के उन सर्वश्रेष्ठ रचनाकारों में हैं जिन्होंने अपने समय की हर चिन्ताओं पर चर्चा की है। ये भाषायी भेदभाव से ऊपर उठकर श्रेष्ठ साहित्य रचना करने वाले उन चुनिन्दा कलाकारों में से हैं जिन्होंने न केवल हिन्दी साहित्य अपितु राष्ट्र भाषा को अपनी लेखनी से समृद्ध किया है। ये राष्ट्र के प्रति समर्पित हैं और सभी नागरिकों में जाति, धर्म, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा आदि के भेद को मिटाकर भ्रातृत्व भाव स्थापित करना चाहते हैं। एक शेर में उन्होंने दिल को छू लेने वाली बात कही है जिसे उन्होंने बेमिसाल कौमी एकता वाले शहर बीकानेर में कई बार अपनी आंखों से देखा है—

'इक तरफ अजान की आती है रूहानी सदा
इक तरफ वेदों के मंत्र से सजा मेरा वतन'

इरशाद अज़ीज़ की ग़ज़लें पाठक और श्रोता को सोचने के लिए विवश करती हैं। यही उनके लेखन की सबसे बड़ी और सार्थक उपलब्धि है।

ग़ज़लकारों की सूची में एक अन्य नाम जो प्रमुखता से लिया जा सकता हैवह है श्री शिवराज छंगाणी। 'छंगाणी जी ने राजस्थानी और हिन्दी दोनों

भाषाओं में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। उन्होंने युग संदर्भों को सार्थकता और सफलता के साथ अपनी रचनाओं में उकेरा है। इन्होंने अपनी रचनाओं में वर्तमान विसंगतियों पर प्रखर रूप से चोट की है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय, भेदभाव आदि विषयों पर कवि ने अपनी लेखनी चलायी है।'[15] इनकी गजलों में मस्तिष्क और हृदय का सुन्दर समन्वय है और ये यथार्थवाद से जुड़ी हुई सरस और सुन्दर अभिव्यक्ति है

आपकी अदाएँ फख्र हमको
फिजाएँ आपकी है सब्र हमको
आपकी नज़रे इनायत चाहिए
गुल खिलेंगे खार हमकों

छंगाणी जी मनुष्य के मनोभावों तथा मन के सूक्ष्म परिदृश्यों को अनुकूल शब्दों का जामा पहनाकर अभिव्यक्त करने में सफल रहे हैं। इन्होंने जो कुछ भी व्यक्तिगत, वैचारिक और बाह्य यथार्थ से अनुभव किया, उसे ही व्यक्त किया है।

मीठी मनुहारों तथा पति-पत्नी की नोंक-झोंक और विरह भावना को इस प्रकार व्यक्त किया है—

बात करके भी मुकर जाते हो
इसलिए हर पल मात खाते हो
जमाने को सच कहाँ पचता है
वक्त बेवक्त आप फरमाते हो

इनकी सीधी, सरल भाषा में बातचीत करती रचनाएँ उन्हें आम आदमी के ज्यादा नजदीक ले आती हैं। बीकानेर के हिन्दी, ग़ज़लकारों को अपनी जिम्मेदारियों का पूरा अहसास है। ये ग़ज़लकार अपने दौर में हिन्दी ग़ज़ल को एक मुकम्मल विधा के रूप में अपनी विराट संवेदनशीलता को प्रमाणिकता व ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्नशील हैं। ग़ज़लकारों ने विविध विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। जिसका अपना मूल्य एवं महत्व है। बीकानेर के ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से समसामयिक परिवेश तथा जीवन मूल्यों को उभारा है और आम आदमी तक ग़ज़लों के माध्यम से जन चेतना जाग्रत करने का कार्य भी किया है। ये कवि अपनी परम्परा से जुड़े रहकर ग़ज़लों के माध्यम से अपने शहर की सांस्कृतिक और साहित्यिक शैली को बचाएँ रखने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

शेख अब्दुला बीकानेरी ने केवल बीकानेर के बल्कि हिन्दुस्तान के बड़े माने हुए शायर थे। इनके तीनों पुत्रों रासिख बीकानेरी, मो. उस्मान आरिफ और अयूब ने भी बीकानेर की शायरी को दुनिया भर में इज्जत दिलवाई।

मो. सदीक, बुलाकीदास बावरा, भगवानदास किराड़ू, गौरीशंकर आचार्य 'अरूण' और डॉ. नन्दकिशोर आचार्य जैसे दिग्गज रचनाकार जो पूरी उम्र साहित्य लेखन के लिए समर्पित रहे, इन्होंने हिन्दी ग़ज़लें भी लिखीं। डॉ. नन्दकिशोर आचार्य का नाम न केवल राजस्थान के बल्कि पूरे देश में अग्रणी साहित्यकारों में लिया जाता है। इस बात से बहुत कम लोग परिचित होंगे कि डॉ. नन्दकिशोर आचार्य ने अपनी लेखन यात्रा के शुरुआती समय में हिन्दी ग़ज़ल भी लिखी हैं। हालांकि बाद में ये साहित्य की अन्य विद्याओं पर लेखन कार्य करते रहे हैं। वर्तमान समय में रमेश भोजक, राजेन्द्र स्वर्णकार, मोनिका गौड़, निसार अजान और अन्य कई दिग्गज रचनाकार ग़ज़ल साहित्य को अपना ओज प्रदान कर रहे है।

हिन्दी गजल एक सम्भावनाशील विद्या है जिसके विकास में बीकानेर के ग़ज़लकारों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है और वर्तमान में भी दे रहे है। बीकानेर की माटी के जन्मे इन ग़ज़लकारों ने हिन्दी गजल साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करते हुए बीकानेर की शायरी को पूरे देश में इज्जत दिलवाई है। इनके अलावा भी नई पीढ़ी हिन्दी ग़ज़ल को समझने और निखारने की कोशिश कर रही है।

जिसकी वजह से बीकानेर हिन्दी ग़ज़ल का भविष्य भूतकाल और वर्तमान से निरन्तर प्रगति की ओर बढ़ता रहेगा और साथ ही बीकानेर की हिन्दी ग़ज़ल अखिल भारतीय हिन्दी गजल के साथ खड़ी हो सकेगी। ग़ज़लकार बीकानेर की गजल को सम्मान दिलाते हुए आने वाली पीढ़ी के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

सन्दर्भ

1. जैन कवि उदयचन्द रचित बीकानेर-'ग़ज़ल' *वैचारिकी* अक्टूबर, 1971, पृ. 9
2. उपर्युक्त, पृ. 15
3. वही, पृ. 16
4. अज़ीज़ आज़ाद, 'हवा और हवा के बीच' मधुमती पृ. 3
5. अज़ीज आज़ाद, 'उम्र बस नींद सी', बीकानेर-1992
6. अज़ीज आज़ाद, 'भरे हुए घर का सन्नाटा', बीकानेर-1992

7. बीकानेर का हिन्दी ग़ज़ल साहित्य, बलवीर सिंह (शोधार्थी) पृ. 42
8. अब्दुल रहमान 'खादिम'-खुशबूओं का सफर, भूमिका पृ.12
9. *मधुमती,* अंक दिसम्बर 2005, पृ. 23
10. *मधुमती,* अंक नवम्बर 2005, पृ. 75
11. *राजस्थान पत्रिका,* 25 सितम्बर, 2009
12. *मधुमती,* अंक अप्रैल-मई 2006, पृ. 118
13. इरशाद अज़ीज़-साक्षात्कार
14. इरशाद अज़ीज़, 'ज़िंदगी खामोश कहाँ' पृ. 70
15. नरेशदान चारण, शिवराज छंगानी का काव्य मूल्यांकन, भूमिका

दुर्गा सुथार
शोधार्थी
सिंघानिया विश्वविद्यालय
पचेरी (झुंझुनूं)

❑❑❑

मारवाड़ राजघराने के प्रमुख दग्ध स्थल

(राजघराने में देवलोक होने से पूर्व व पश्चात् की परंपराओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन)

• सूर्यवीर सिंह

मारवाड़ रियासत राजस्थान के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से चौथी[1] विशाल रियासत थी।[2] इसकी अधिकतर भौगोलिक संरचना मरूस्थलीय व जलहीन है। वैसे तो मारवाड़ प्रदेश पर कई राजवंशों का स्वामित्त्व रहा है, परन्तु राठौड़ वंश सर्वाधिक शासन करने वाला वंश हुआ। यह क्षेत्र कई विशिष्ट कारणों से विख्यात रहा है, चाहे वो संस्कृति व परंपराओं में समृद्ध होना हो अथवा स्वाभिमान के लिए प्राण न्योछावर करने वाली जातियों के विषय में हो, जो अपने-आप में समृद्ध विरासत संजोये हुए है।

मारवाड़ राजघराने में किसी सदस्य के परलोक होने के पूर्व व पश्चात् निभाई जाने वाली परंपराओं व रीति-रिवाजों का अवलोकन कर हम यहाँ की मान्यताओं को समझ सकते हैं। इस परंपरा का संबंध अन्त्येष्टि संस्कार से है और देखा जाए तो प्राचीनकाल से ही यहाँ के समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्त्व के उत्थापन के निमित संस्कारों[3] का संयोजन किया गया है तथा इनके विषय में हमें धर्मसूत्रों, स्मृतियों, उपनिषदों, गृह्यसूत्रों, पुराणों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में लिखा मिलता है, जिनमें इन संस्कारों की संख्या सोलह कही गई है तथा इसमें अन्त्येष्टि संस्कार अंतिम संस्कार माना गया है। अतः देवलोक होने पर निभाई जाने वाली परंपराओं तथा दग्ध-स्थल (श्मशान भूमि) का मानव जीवन के साथ अभिन्न हिस्सा माना गया है, जो राजशाही से लेकर आमजन के जीवन में बहुत ही संवेदनशील परंपरा का महत्त्वपूर्ण भाग है।

मारवाड़ राजघराने से संबंधित दग्ध स्थलों तथा देवलोक हो जाने से पूर्व व पश्चात् निभाई जाने वाली परंपराओं के विषय में हमें यहाँ की पुरालेखीय सामग्री मुख्यतः बहियों, ख्यातों, शिलालेखों आदि में प्रचुर जानकारी प्राप्त

होती है। इन स्रोतों से ज्ञात होता हैं कि इन घटनाओं पर किस प्रकार राजशाही परिवार व आमजन के बीच की भावनाएं व आपसी व्यवहार रहता था।

राज परिवार के किसी सदस्य के देवलोक गमन होने पर सर्वप्रथम उसके पार्थिव देह को शाही दग्ध-स्थलों पर पूर्ण परंपराओं को ध्यान में रखकर अग्नि सुपुर्द किया जाता था। राजघराने के दग्ध-स्थल पूर्व मारवाड़ की राजधानी जोधपुर में स्थित है, जो कि मूलतः चार स्थानों पर स्थित है, जो मण्डोर, पंचकुण्डा, कागा और जसवंत थड़ा शाही दग्ध-स्थलों के रूप में पहचाने जाते हैं।[4] इसमें 'मण्डोर दग्ध-स्थल' (देखें प्लेट सं. 1) सबसे पुराना है तथा प्रमुख रूप से मारवाड़ के शासकों को समर्पित है, जिनमें राव मालदेव से लेकर महाराजा तखतसिंह आदि के स्मारक हैं, परन्तु कुछ स्मारक उनके पुत्र व पुत्रियों के भी हैं, परन्तु मुख्यतः यह जगह शासकों के दग्ध स्थल के रूप में समर्पित रही है। यद्यपि इसमें कई शासकों के साथ उनकी रानियों के सती होने के प्रमाण पुरालेखीय स्रोतों से प्राप्त होते हैं, तथापि किसी का अलग से कोई स्मारक नहीं है। मण्डोर बाग में प्रमुखतः तीन प्रकार के स्मृति स्मारक दृष्टिगोचर होते हैं, जिसमें देवल थड़ा व छतरी प्रमुख हैं, जो ज्यादातर जोधपुर के घाटू पत्थर से निर्मित हुए हैं।

दूसरा प्रमुख दग्ध स्थल 'पंचकुण्डा' में स्थित है (देखें प्लेट सं. 1), जो मुख्यतः रानियों को समर्पित है, यहाँ की छतरियां विशाल आकार की तथा अति कलात्मक हैं, परन्तु इन छतरियों से थोड़ी दूरी पर 'राव गांगा का देवल' स्थित है, जो एक अपवाद माना जा सकता है। यहाँ पर छतरियों व चबूतरों की कुल संख्या छियालीस है, जिनमें से छत्तीस छतरियां रानियों को समर्पित है जो रानियों के स्वयं के निजी व्यय अथवा उनके रिश्तेदारों जो कि इसी राज-परिवार में विवाहित होते थे, विशेषकर बहन, भुआ व भतीजी आदि द्वारा बनवाई जाती थी। उदाहरण स्वरूप पाँचवी भटियाणी रानी की छतरी का निर्माण उनकी भतीजी भटियाणी इन्द्र कंवर द्वारा बनवाई गई थी। वे गोठड़ा के ठाकुर की पुत्री थी तथा 1856 ई. में महाराजा तखतसिंह के साथ विवाह हुआ था।

तीसरा दग्ध स्थल 'कागा बाग' के रूप में जाना जाता है। (देखें प्लेट सं. 1) यह बाग महाराजा जसवंतसिंह प्रथम द्वारा लगवाया गया था तथा अफगानिस्तान में पठानों के दमन से वापिस लौटते समय अपने साथ अनार के बीज लाए थे, वे उन्होंने इसी बाग में लगवाए थे। उनकी आज्ञा से स्वामिभक्त राजसिंह कूंपावत (प्रधान) का दाह संस्कार सर्वप्रथम यहीं पर किया गया।[5] तत्पश्चात् जोधपुर राज्य के उमरावों का यहीं पर अन्तिम संस्कार होने लगा

था तथा कागा बाग ने दग्ध-स्थल का रूप ले लिया था।[6] यहाँ के स्मारकों में छतरियां व चबूतरे प्रमुख हैं, जो घाटु पत्थर से निर्मित हैं। इन स्मारकों की संख्या लगभग सौ के करीब है, जिनमें अधिकतर शिलालेख लुप्त हो जाने के कारण, यह स्मारक किनको समर्पित है, ज्ञात करना असंभव है।

चौथा दग्ध-स्थल मेहरानगढ़ के नजदीक देवकुण्ड के समीप है, जो कि 'जसवंत थड़ा' के रूप में जाना जाता है। (देखें प्लेट सं. 1) यहाँ प्रथम बार महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय की अंतिम इच्छा को देखते हुए इनका अंतिम संस्कार देवकुण्ड पर करने का निर्णय लिया गया था।[7] इसके पश्चात् राज परिवार के सभी सदस्यों का दाह संस्कार यहीं पर किया जाने लगा। महाराजा जसवंतसिंह का स्मारक बहुत भव्य है तथा मकराना के संगमरमर पत्थर का बना हुआ है तथा इसके समीप अन्य स्मारक संगमरमर, घाटू व छित्तर के पत्थरों से निर्मित हैं।

पुरालेखीय सामग्री से ज्ञात होता है कि जब नरेश के देवलोक होने की सूचना 22 परगनों के आखरी गाँवों तक पहुँचती थी तो आमजन भी शोकाकुल हो जाते थे। बारह दिन शोक रखा जाता था तथा लोग अपनी इच्छा से भदर (मुंडन) होते थे एवं शोकसूचक रंगों की पगड़ियां बांधते थे। बारह दिन शहर में दुकाने बंद रखी जाती थी, ठठेरे, चंवालिए, रंगरेज, कसाई सभी अपने धंधे बारह दिनों तक बंद रखते थे तथा बंदियों को जेल से छोड़ने की भी परंपरा थी।

एक बार जब महाराजा गजसिंह प्रथम के पश्चात् जोधपुर में रानियों ने सती होने से पूर्व राधोदास को बुलाकर आज्ञा दी कि सौ कैदियों को छोड़ दिया जाए तब कैदियों में एक पंचोली बलू राधोदासोत था जिसने कैद से छूटने से इन्कार करते हुए कहा कि 'हूं घर जाऊ तो मारा घर रा खुशी हुवे।' सो महाराज रो सवो हुओ उण वक्त मारे घर में खुशी हुवे आ बात भली नहीं, जिणसू महाराज जसवंतसिंह छोडसी तरे छूटसू।[8] यह घटना आमजन की शासक के प्रति अपनत्व को इंगित करती है।

महाराजा तखतसिंह जी री ख्यात से ज्ञात होता है कि वि.सं. 1908 में माजी श्री बड़ा भटियाणी जी, जब मरणासन्न अवस्था में पहुँचे थे तब महाराजा तखतसिंह वहाँ गए थे, जिसका संदर्भ इस प्रकार है—

काती वद 9 माजी श्री बड़ा भटीयाणी जी नै खेद दीन 15 आई, सो आज जादा दबाव में आया रा समाचार मालम हुवा तरै श्री हजूर सा उणी

बखत श्री माजीसा कनै पधारिया। श्री हजूर अरज करी कै आपरे कोई काम हुवै तथा कीणी री भोलावण देणी हुवै तो फुरमावौ? तरै फुरमायौ मुलक मारवाड़ री रईयत नै सिरदार, मुतसदी वगैरै रो प्रतपाल राखजो। पछै श्री हजूर साहब गांव 1 पुन करायौ, दोय हजार उपजतां रो। नै रोकड रूपीया जुदा कराया। पछै श्री माजीसा दिन दोढ पोर चढीया देवलोक हुवा।[9]

उसी प्रकार जब वि.सं. 1860 में महाराजा भीमसिंह का देहावसान हुआ था तब 500 मण धान, 500 रुपये रोकड़ तथा 500 गायें पुण्यार्थ संकल्प किए गए थे।[10] इसी प्रकार पुरोलेखीय सामग्री में अन्य शासकों व रानियों के मरणासन्न पर पुण्यार्थ के विषय में ज्ञात होता है। इसी प्रकार राज परिवार के सदस्य व अन्य संबंधित लोगों के विषय में भी जानकारी राज्य की *बहियों* व *ख्यातों* से प्राप्त होती है।

मारवाड़ राजघराने की शोक संबंधी परंपराओं से ज्ञात होता है कि गढ में नौबत बजाना बंद कर दिया जाता था, जिसकी अवधि मृत व्यक्ति के परिवार में हैसियत पर निर्भर करती थी। बारह दिन तक शोक संबंधी क्रियाकर्म चलते रहते थे और उसके पश्चात् नये उत्तराधिकारी की आणदुहाई[11] की जाती थी। नरेश का पाटवी पुत्र न तो शव यात्रा में जाता था और न ही मुंडन कराता था, हालांकि महाराजा हनवंतसिंह ने अपने पिता की मृत्यु के बाद इस परम्परा को तोड़ा और वे भदर हुए तथा दाह संस्कार में भी गए थे।

राजघराने में माजी व दादीजी की मृत्यु होने पर शव को पेटी में रखकर पंचकुण्डा ले जाकर दाग दिया जाता था[12] तथा साथ में जागीरदार, मुतसद्दी, वेदिया, पुरोहित, जोशी इत्यादि शव यात्रा में जाते थे। उनके शोक में एक प्रहर की नौबत बंद रखी जाती थी। दाह-संस्कार हो जाने की सूचना मिलने पर राजा गढ़ पर ही स्नान करते थे। हालांकि रानी व माजीसा के देवलोक होने पर निभाई जाने वाली रस्में उनके नोहरों पर की जाती थी और गढ में राग-रंग बारह दिनों तक नहीं किये जाते थे।[13]

देवलोक संबंधी क्रिया-कर्म जो दस दिन होते थे (तीसरे से बारहवें) उसमें राजपुरोहित की कोई भूमिका नहीं होती थी। देवलोक गमन संबंधी क्रिया-कर्म के नेग व दान व्यास व कारटिया लेते थे तथा गरूड़ पुराण कथा वाचन की राशी व्यास को दी जाती थी। हालांकि बारह दिन पूर्ण होने के पश्चात् राजपुरोहित द्वारा कुछ क्रिया-कर्म किए जाते थे, उसके लिए वे परंपरानुसार दक्षिणा लेते थे।[14]

अंतिम संस्कार के तीसरे दिन चिता को ठंडा करने की रस्म होती थी, जिसमें दूध व जल का छिड़काव दाह-स्थल पर किया जाता था। उसके पश्चात् फूलों (अस्थियों) को चुगकर पात्र में इकट्ठा किया जाता था। रानियों के फूलों की रखवाली और साथरवाड़ा का जिम्मा गागरिया खांप के राठौड़ों को दिया गया था। फूलों को हरिद्वार गंगा में विसर्जित किया जाता था। महाराजा भीमसिंह के फूलों के विषय में 'महाराजा मानसिंह री ख्यात' में मिलता है—*'जैपुर पैला ऊकील पंचोली सतावराय थौ जिण नुं तौ महाराज भीवसिंघ जी रा फूलां साथे गंगाजी मेलीयौ।*[15] उसी प्रकार महाराजा मानसिंह के फूलों के विषय में मिलता है—*'संवत् 1901 रा मिगसर वद 3 बडा महाराज श्री मानसिंघ जी रा फूल श्री गंगाजी में पधरावण नै जय नै अगाड़ी गया जो करण नै जाय सो हुकम हुवो। फूलां री सारा ही जण भेंट निछरावल करो।*[16]

वहीं बारह दिनों की रस्मों के विषय में 'रोजनामचा' बही में उल्लेख किया जाता था। इस समय खालसे की डावड़ियां (दासियां) बारह दिवस तक तलहटी के महलों के बरामदों में बैठकर शोक व्यक्त करती थी जहाँ शहर की स्त्रियाँ (मुतसदियों के घर से महिलाएं) शोक प्रकट करने आती थीं।[17]

महाराजा मानसिंह के राजलोक पांचवा भटियाणी जी की छतरी की कमठा बही के अवलोकन से ज्ञात होता है कि स्मृति स्मारक के नींव रखने से पूर्व राज वेदिया[18] से स्मारक निर्माण का मुहूर्त निकलवाया जाता था तथा मुहूर्त के दौरान नींव के पत्थर की पूजा का कार्यक्रम आयोजित किया जाता था। इसके पश्चात् ब्राह्मण भोज का आयोजन किया जाता था।[19] इस बही से ज्ञात होता है कि इसका स्थापत्य पूर्ण होने में दो वर्ष की अवधि लगी तथा देवली प्रतिष्ठा पर भव्य समारोह का आयोजन किया गया। इस दौरान भोज आयोजन हुआ तथा कारिगरों को भेंट दी गई।

इन स्मारकों के निर्माण में कई लोगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती थी, जिसमें गजधर से लेकर, चंवालिया, बैलदार, कारीगर, मेहरी, रंगरेज, कुम्हार आदि का योगदान रहता था जो विभिन्न जातियों से ताल्लुक रखते थे, इनका योगदान आज हमारे समक्ष एक समृद्ध विरासत के रूप में विद्यमान है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मारवाड़ का शाही दग्ध-स्थल तथा उस पर निर्मित स्मारक यहाँ की परंपराओं, संस्कृति व धार्मिक आस्थाओं का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है, जो कि यहाँ के शासकों की आमजन के साथ भावनात्मक संबंध व सामाजिक समरसता की ओर ध्यान इंगित करता है, इन दग्ध-स्थलों पर निर्मित स्मृति स्मारक यहाँ के आमजन के श्रद्धा का विषय रहे

हैं, इन पुरालेखीय जानकारी के अवलोकन से समाज में लिप्त धार्मिक संवेदनशीलता से जुड़े महत्त्वपूर्ण पहलुओं के विषय में ज्ञात होता है।

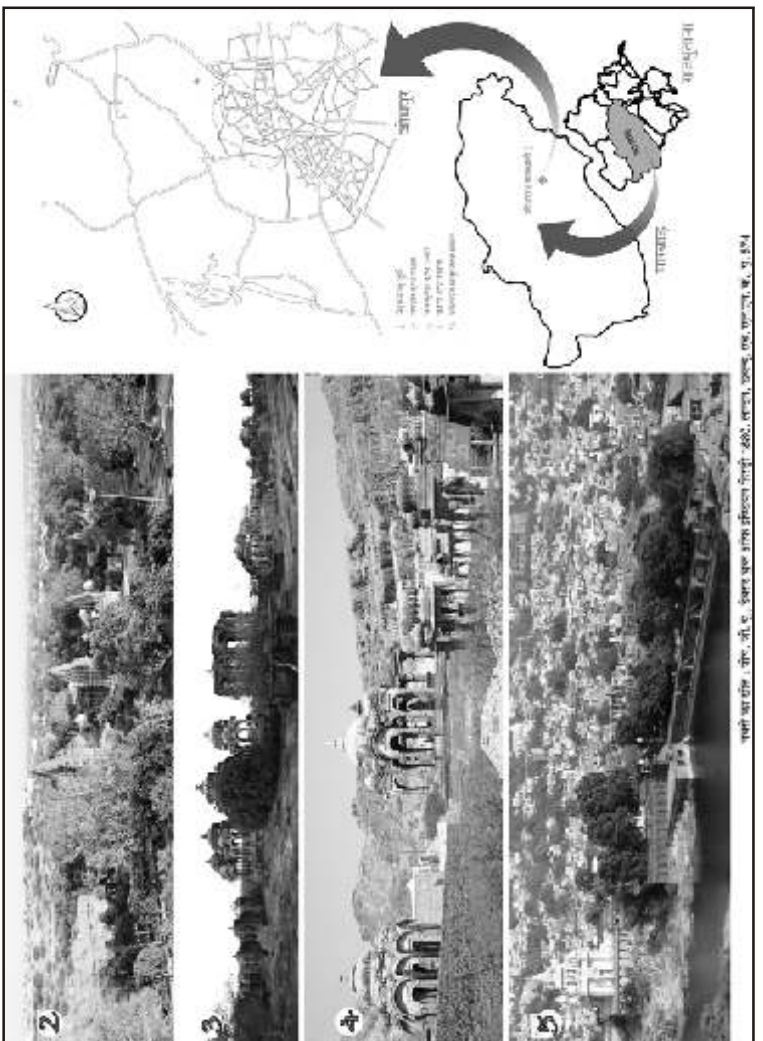

सन्दर्भ

1. प्रथम तीन थे हैदराबाद, कश्मीर तथा केलट।
2. बी.एन. रेऊ, *ग्लोरिज ऑफ मारवाड़ एण्ड ग्लोरियस राठौड़,* बुक ट्रेजर, भारतीय प्रकाशन, 2013, पृ. 1

3. मीमांसा के अन्तर्गत इसका अर्थ विधिवत शुद्धि है।
4. *मण्डोर, पंचकुण्डा, कागा और जसवंतथड़ा* की शोध यात्रा, दिनांक 17, 18, तथा 19 नवम्बर 2020
5. हुकमसिंह भाटी, *राजस्थान की संस्कृति और इतिहास के विविध आयाम*, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2017, पृ. 247
6. वही, पृ. 247
7. *रसीलेराज* शोध पत्रिका, संपा. डॉ. महेन्द्रसिंह नगर, अंक 11, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, जोधपुर, 2013, पृ. 91
8. वही, पृ. 85,
9. *महाराजा तख्तसिंह री ख्यात*, ग्रन्थांक सं. 176, संपा. डॉ. नारायणसिंह भाटी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1993, पृ. 135
10. *जोधपुर हकीकत बही*, नं. 08, वि.सं. 1856-1860, पत्र सं. 435, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
11. नये राजा के नाम की सूचना।
12. लकड़ी की पेटी *कीलीखाना* विभाग से आती थी, जिससे ज्ञात होता है कि शव को संदूक में रखकर दग्ध-स्थल अंतिम संस्कार हेतु ले जाया जाता था।
13. *जोधपुर हकीकत* बही, नं. 08, वि.सं. 1856-1860, पत्र सं. 435, जोधपुर रिकॉर्ड्स
14. *रसीलेराज*, शोध पत्रिका, अंक 11, पृ. 88,
15. *महाराजा मानसिंह जी री ख्यात*, ग्रन्थांक सं. 133, संपा. डॉ. नारायणसिंह भाटी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1997, पृ. 43
16. *महाराजा तख्तसिंह री ख्यात*, ग्रन्थांक सं. 176, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1993, पृ. 30
17. *रसीलेराज*, शोध पत्रिका, अंक 11, पृ. 88
18. जिसे वेदों को ज्ञान हो।
19. *महाराजा मानसिंह के राजलोक पांचवा भटियाणी साहिबा की छतरी की कमठा बही*, क्र.सं. 434, महाराज मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ दुर्ग, जोधपुर।

सूर्यवीर सिंह
पीएच.डी. स्कॉलर
डिपार्टमेन्ट ऑफ आर्ट हिस्ट्री
फेकल्टी ऑफ फाईन आर्ट्स
महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, गुजरात

❑❑❑

रजलानी गांव (जोधपुर) में धार्मिक स्थापत्य के प्रमुख केन्द्र : एक ऐतिहासिक अध्ययन

● डॉ. भरत देवड़ा

मारवाड़ की मरुधरा अपनी विरासत एवं स्थापत्य कला से सदैव गौरवान्वित रही हैं। यहां के गांव कला, स्थापत्य एवं संस्कृति के समृद्ध केंद्र रहे हैं। जोधपुर जिला मुख्यालय से 96 किलोमीटर दूर उत्तर-पूर्व में भोपालगढ़ तहसील में स्थित गांव रजलानी अपने स्थापत्य कला के रूप में प्रसिद्ध है। इसका पुराना नाम हीरावाड़ी था।[1] बताया जाता है कि इस गांव की पवित्रता के कारण ही इस गांव का नाम रजलानी पड़ा। पहले आसपास के लोग इस गांव के धार्मिक स्थलों के दर्शन करने के लिए यहां आते थे। वापस जाते समय यहां की पवित्र मिट्टी (रंज) अपने साथ ले जाते। जब किसी व्यक्ति से पूछा जाता कि, 'कहाँ जा रहे हो?' तो इस गांव के धार्मिक स्थलों का दर्शन करने आने वाला व्यक्ति यह कहता था कि 'रंज (पवित्र मिट्टी या भभूती) लाने' के लिए जा रहा हूं। इसी 'रंज लाने' की बात से ही इस गांव का नाम रजलानी पड़ा।[2] यह गांव अरावली की पश्चिमी पहाड़ियों के प्राकृतिक सौंदर्य के मध्य स्थित हैं। यहाँ पर कुंपावतों राठौड़ों का अधिकार रहा था। मारवाड़ के महाराजा तख्तसिंह (1843-1873 ई.) के समय विक्रम संवत 1929 में उनके सातवें पुत्र भोपालसिंह को बड़लू, रजलानी, कुम्हारा तथा हिंगोली गांव जागीर के रूप में मिले। अतः इस समय रजलानी गांव भी कुंपावतों के स्थान पर जोधा राठौड़ों के अधीन आ गया।[3] गांव रजलानी की तवारीख से जानकारी मिलती है कि यह गांव महाराजा श्री भोपालसिंहजी तख्त सिघोत जोधा राठौड़ के पट्टे था। इसका लगान महाराजा श्री भोपालसिंह लेते हैं। इन से पूर्व यहां कुंपावत राठौड़ जागीरदार थे।[4] भोपालगढ़ के शासक भोपालसिंह के पश्चात उनके पुत्र दौलतसिंह शासक बने तत्पश्चात दौलतसिंह के पुत्र किशनसिंह को रजलानी दे दी गई। किशनसिंह जी मारवाड़ दरबार की फौज में कर्नल थे।[5]

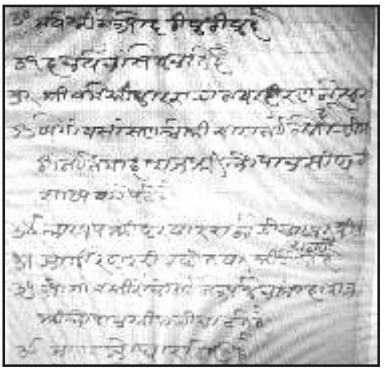

1. रजलानी राठौड़ों के अधीन होने का वर्णन। (स्रोत-रजलानी की तवारीख अपुरालेखीय रिकॉर्ड्स, रा.रा. अ.वी.)

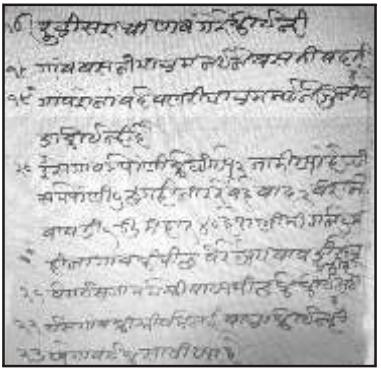

2. रजलानी की तवारीख में बावड़ी का वर्णन।

रजलानी के कला व स्थापत्य की जानकारी रजलानी गांव की तवारीख में भी मिलती है। इसमें रजलानी के कुल 135 घर बताए गए हैं। साथ ही बताया गया है कि यहां के लोग विष्णु व जोगमाया की पूजा करते है, इस गांव में ठाकुर जी का मंदिर है।[6] इस गांव में जल स्रोतों के रूप में एक बावड़ी, कुओं तथा नाडियों का वर्णन किया गया है, बावड़ी व कुओं में पानी चालीस हाथ गहरा एवं मीठा बताया गया है।[7] रजलानी के स्थापत्य कला के प्रमुख केंद्रों में छोड़सिंह जी की देवलियाँ एवं मंदिर, रजलानी की ऐतिहासिक जैता बावड़ी तथा ठाकुर नाहरसिंह की छतरी तथा नाथ योगी शिवनाथ जी का मंदिर है।

रजलानी के लोक देवता गायों के रक्षक छोड़सिंह जी महाराज का मंदिर गांव के दक्षिण में बना हुआ है। यहां पहले केवल वीरों की देवलियां, बाद में छोटा मंदिर बनाया गया और वर्तमान में गांव वालों ने यहां एक बड़ा मंदिर बना दिया है। यहां से प्राप्त देवलियां के ऊपर लिखे लेख से ज्ञात होता है कि यह देवलियां विक्रम संवत 1123, विक्रम संवत 1240 तथा विक्रम संवत 1257 की हैं। यहां से प्राप्त प्राचीन शिलालेख नष्ट प्रायः हो चुके हैं, जो पूर्ण रूप से पढ़ने में नहीं आ रहे हैं, इनमें से एक विक्रम संवत 1123 के शिलालेख में योद्धा घोड़े पर सवार है। योद्धा के एक हाथ में खाण्डा है। इसके आगे पीछे दो स्त्रियाँ बैठी है, नीचे गाय का चित्र बना है।[8] विक्रमी संवत 1100 के आसपास टोडा-टोंक क्षेत्र में सोलंकी राजपूत शासन करते थे। बताया जाता है कि उस समय यहां के मीणा एवं अन्य क्रूर प्रवृत्ति के लोग लूटपाट के काम में लिप्त थे। उसी समय विक्रम संवत 1123 की घटना बताई जाती है कि मीणा गुजरों की गायों को चुराकर पश्चिम दिशा की तरफ आगे बढ़े। सोलंकी सरदार छोड़सिंह

जी ने अपने सिपाहियों को साथ लेकर लुटेरों का पीछा किया तथा हीराबाड़ी (रजलानी) गांव के पास गायों की रक्षा करते हुए छोड़सिंह जी व उनके अनेक सिपाही शहीद हो गए। यहां से प्राप्त देवलियों में हमें सती होने के उल्लेख मिलते हैं। इनकी दंतकथा व लोकगीत आसपास के गांवों में आज भी प्रचलित है। यहां पर प्रचलित दंतकथा में बताया जाता है कि गायों की रक्षा करते हुए जब छोड़सिंह जी का सिर कट गया, तो उनकी घोड़ी गांव की तरफ बढ़ी, घोड़ी के ऊपर लगी जीण के पागड़ों में उनके पैर फँसे हुए थे। छोड़सिंह के यह पैर गांव के गिल्लों के बास में गिर गए। जहां आज भी चबूतरा बना हुआ है। तत्पश्चात गांव के लोग घोड़ी के साथ युद्ध स्थल पर गए और वहां पर घायलों से बात करने पर उनको सारी घटना की जानकारी मिली। बताया जाता है कि उसके पश्चात इस घटना की सूचना छोड़सिंह जी के गांव तक पहुंचाई गई, वहां से छोड़सिंह जी तथा उनके साथियों की स्त्रियां यहां आई और उनके साथ सती हो गई।[9] जिनकी कुछ देवलियां यहां बनी हुई मिलती है। इन देवलियों के साथ-साथ यहां पर पत्थर के बने हुए सिर आदि आज भी देखे जाते हैं। आसपास के आमजन अपने पशुओं की रक्षा हेतु छोड़सिंह जी को दूध, दही, घी, खीर आदि चढ़ाते हैं तथा इनके शहीद दिवस भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को प्रत्येक वर्ष यहां मेला भी लगता है।[10] उनकी याद में प्रचलित प्रमुख लोकगीत इस प्रकार है—

'लिखणों लिखावे छोड़सिंह जी सोलंकी ए,
मौल चुकावे छोड़सिंह भनो ए।
मांरा हिरा रा हेड़ाऊ ने निरखण देयजो ए,
मांरा गाया रा भारू ने जौवण देजो ए।।'[11]

3. छोड़सिंह के मंदिर के पास स्थित देवली।

4. पत्थर के बने हुए शहीदों के कटे सिर के नमूने।

इस प्रकार इस लोक गीत में हमें छोड़सिंह जी का गोत्र सोलंकी होने तथा गायों के रक्षक होने की जानकारी मिलती हैं। अत: यहां के आसपास के लोग उनकी गौ रक्षक लोक देवता के रूप में पूजा करते हैं।

रजलानी के स्थापत्य कला के केंद्रों में यहाँ की ऐतिहासिक जैता बावड़ी प्रमुख है। बावड़ी में लगे लेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण मालदेव के समय हुआ था। जिस समय राव मालदेव की सेना ने नागौर विजय के पश्चात् इधर-उधर गांव को लूटना प्रारंभ किया। उस समय मालदेव का सेनापति जैता का मुकाम हीरावाड़ी (रजलानी) नामक स्थान था। जैता के प्रभाव के कारण हीरावाड़ी में शांति बनी रही। जैता से प्रभावित होकर हीरावाड़ी गांव के प्रमुख व्यक्तियों ने सेनापति को 15000 रुपयों की थैली भेंट की। इन रूपयों का उपयोग हीरावाड़ी (रजलानी) में एक बावड़ी बनाने में किया गया।[12] अब इस बावड़ी को 'भूतों की बावड़ी' भी कहा जाता है। इस बावड़ी में दीवार पर संगमरमर की शिला पर लिखा एक शिलालेख विक्रमी संवत 1597 (1540 ई.) का मिलता है। जो इस बावड़ी के निर्माण कार्य पूर्ण होने के समय का है। जैता द्वारा निर्मित रजलानी बावड़ी का अभिलेख दो भागों में लिखा हुआ है। इसके प्रारंभिक भाग में देवताओं की स्तुति का वर्णन मिलता है। यह संस्कृत में लिखा हुआ है। दूसरा भाग देशज भाषा में लिखा है, अभिलेख के इस भाग में जैता के कुटुम्ब के सदस्यों के नाम, बावड़ी के निर्माण कार्य में काम करने वाले मजदूरों की संख्या तथा निर्माण कार्य में काम आने वाली वस्तुओं तथा खर्च रुपयों आदि का वर्णन मिलता है। इस अभिलेख के दूसरे भाग का कुछ अंश इस प्रकार हैं—

5. जैता द्वारा निर्मित रजलानी बावड़ी का अभिलेख।

6. जैता द्वारा निर्मित रजलानी बावड़ी

'श्री गणेशाय नीमः। इति श्री ब्रीक्रमावीत साके 1440 संवत् 1597 व्रीषे : काती वदि : 15 दिने रऊवारे : राजश्री मालदेवराः राठड रावा रा बावड़ी रा कंमठणं ऊघरता राजी श्री रिणमल राठवड गेत्रे तश पुत्र राज : अखेराज, अखेरज सुतनं राज श्री पंचयणं सुतंनं राजश्री जैताजी बावड़.....।। रा कमंठा वऊ ध्रैताः ..... फदिय 1,25,111 लाग बावड़ी रा रोकड़ा बावड़ी री खरा जातु लागी लोह मण 521 लाग, खऊगेली धीरत मण 25 रहड़ व मुवग सिण मण 121 नाडि नंग लारं दुछोति रा मण 221 सिलाखट नं पाजु रा मंडा 321 आडावला हुति अंणाय लुण मंण 721 सिलाखट कणहा ताला रा ..... घरतमण 1121 कणहतलग सीलावट नु गोहु मण 5525 नंमण 11121 भापा रा अफिण मण 5 सीलावट.....।'[13]

अतः इस अभिलेख का दूसरा भाग देशज (राजस्थानी) भाषा में लिखा हुआ है। इसमें श्री गणेश की स्तुति के पश्चात अभिलेख में शाके 1440 तथा विक्रम संवत 1597 लिखा गया है। शाके व विक्रम संवत में (57+78=135 वर्ष) का अंतर होना चाहिए लेकिन इसमें यह अंतर नहीं है। शाके 1440 स्थान पर 1462 होना चाहिए। तत्पश्चात इस अभिलेख में राव जैता की वंशावली व कुटुंबियों का वर्णन मिलता है, इसके अनुसार जैता के पिता पंचायण, पितामह अखैराज और प्रपितामह राव रणमल थे। इस बावड़ी का निर्माण कार्य विक्रम संवत 1594 माघशीर्ष बदि रविवार को प्रारंभ होकर तथा विक्रम संवत 1597 कार्तिक बदि 15 रविवार को समाप्त हुआ था। इस

बावड़ी के निर्माण में 1,25,111 फदिये खर्च हुए थे।[14] डॉ गोपीनाथ शर्मा ने फदिये (चांदी के सिक्के) का मूल्य दो आने के बराबर बताया है।[15] रेऊ ने 'मारवाड़ का इतिहास' नामक पुस्तक में ख्यातों के अनुसार बावड़ी निर्माण में 15000 रुपए खर्च होने बताए हैं।[16]

इस बावड़ी के निर्माण कार्य में 521 मण लोहा, 121 मण पटसन, 25 मण घी, 121 मण पोस्ट (अफ़ीम डोडा), 721 मण नमक, पुनः 1121 मण घी, 2555 मण गेहूं, 11121 मण अनाज तथा 5 मण अफ़ीम व्यय हुआ था। इस कार्य को संपन्न करने में 121 कारीगर, 171 पुरुष श्रमिक और 221 महिला श्रमिक लगे थे। निर्माण सामग्री को देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। यहां पर दी गई सामग्री अतिशयोक्ति पूर्ण जान पड़ती है, फिर भी अनाज, घी, नमक, अफीम आदि मजदूरों को मजदूरी के बदले दिए जाते होंगे। वही घी का प्रयोग ग्रीस की जगह भी किया जाता होगा। साथ ही खाद्य सामग्री निर्माण कार्य में काम आने वाले पशुओं के लिए भी रही होगी। शिलालेख में सूत्रधार के नाम सिलावट फरसा, सूत्रधार ईबा तथा सूत्रधार हसन मिलता है। साथ ही इसके लेखक का नाम सुहधा उत्कीर्ण है।[17] लगभग 80 मीटर लंबी तथा 95 फुट गहरी इस बावड़ी के अंतिम भाग में कुआं बना है जहां उसकी अधिकतम गहराई हैं। इस बावड़ी में क्रमशः तीन *प्रतोलिया* (ठहराव के स्थान या पोल) बने हुए हैं। प्रत्येक *प्रतोली* (पोल) आठ (दो-दो के जोड़े में) अलंकृत स्तंभों से युक्त हैं।

7. प्रथम प्रतोली में काला और गोरा भैरू के रूप में पूजे जाने वाली मूर्तियाँ

प्रथम *प्रतोली* एक मंजिला, दूसरी दो मंजिला तथा तीसरी तीन मंजिला बनी हुई है। तीसरी *प्रतोली* तक सीधी सीढ़ियां बनी हुई है तथा इसके पश्चात सीढ़ियां घुमावदार हैं। प्रथम *प्रतोली* में दोनों तरफ की दीवार पर देवी स्थान बना हुआ है इनमें एक तरफ गणेश जी व दूसरी तरफ माता दुर्गा का स्थान जान पड़ता है लेकिन गांव वाले इन्हें काला और गोरा भैरू मानकर पूजा करते हैं। इस कारण इस बावड़ी का धार्मिक महत्व भी बहुत अधिक है। बावड़ी में जगह-जगह दीवारों पर हाथियों, स्त्रियों आदि के चित्र देखने को मिलते हैं।[18] *प्रतोलियों* (पोलों) के अलंकृत स्तंभों से बावड़ी के स्थापत्य में चार चाँद लग जाते हैं।

रजलानी के स्थापत्य कला का अन्य प्रमुख केंद्र ठाकुर नाहरसिंह की छतरी तथा शिवनाथ जी का मंदिर है। परम योगी संत श्री शिवनाथ जी महाराज का जन्म विक्रमी संवत सोलह सौ के आरंभ में मारवाड़ रियासत के नागौर के प्राचीन गांव चंगावड़ा (हरसोलाव) में हुआ। 15 वर्ष की आयु में ही घर परिवार को छोड़कर निर्जन पहाड़ों में रहकर परमपिता परमेश्वर की भक्ति, भजन और योग साधना में लग गए। वह अपना गुरु नाथ योगी गोरखनाथ जी को मानते थे।[19] आसोप के ठाकुर राजसिंह का पुत्र पृथ्वीसिंह था। मारवाड़ महाराजा जसवंतसिंह जब शाहजहां के दरबार में सेवा दे रहे थे उस समय पृथ्वीसिंह भी उनके साथ ही था। शाहजहां की इच्छानुसार पृथ्वीसिंह ने जंगली नाहर (शेर) को मार दिया। इसी कारण बादशाह ने पृथ्वीसिंह का नाम 'नाहर खान' रख दिया।[20] विक्रम संवत 1703 में तापी बावड़ी के पास जोधपुर में महाराजा जसवंत सिंह पर प्रेत ने आक्रमण किया। महाराजा जसवंत सिंह बेहोश हो गया। उनके स्थान पर पृथ्वीसिंह अपने प्राण देने को तैयार हो गए, लेकिन उन्होंने पहले ही बता दिया कि मेरे शव का दाह संस्कार ना करके रजलानी गांव के पास स्थित शिवनाथ नाम के योगी के स्थान पर ले जाना। पृथ्वीसिंह की इच्छानुसार उनका मृत शरीर नाथ योगी शिवनाथ जी के वहां रजलानी ले जाया गया। कहा जाता है कि योगीराज शिवनाथ ने अपनी आयु के 8 वर्ष नाहर खान को देने का निश्चय किया और उनके पास उपस्थित अन्य योगी सुजाणनाथ ने भी अपनी आयु में से 4 वर्ष देने का निश्चय किया। इस प्रकार इन योगियों की कृपा से नाहरखान पुनर्जीवित हो गए। जो आगे 12 वर्ष तक जीवित रहे।[21]

धिन्न प्रथीसिंह स्यांमध्रम, जसवंत लियो जिवाय।
सो यो दीठो महापुरुष, मरण सयारे मांय।।
ऊमर दीधी आपरी, आयुस रीझ अख्यात।
जोगी सिस्य जिवाड़ियो, सिध सुजांण सिवनाथ।।[22]

नाहर खान की आयु पूर्ण होने पर उनका मृत शरीर पुनः रजलानी शिवनाथ के तपोस्थली के यहां लाया गया, जहां आज भी छतरी बनी हुई है। यह छतरी

8. नाथ योगी शिवनाथजी का समाधि स्थल। 9. नाहरखान (पृथ्वीसिंह) की छतरी।

हिलाने पर हिलती रहती है। नाथ संप्रदाय के योगी शिवनाथ जी ने आगे चलकर यही जीवित समाधि ली। यहां प्रतिवर्ष भादवा सुदी तेरस की रात्रि को सत्संग का आयोजन होता है तथा दूसरे दिन मेला लगता है।[23]

इस प्रकार हीरावाड़ी (रजलानी) गांव धार्मिक स्थापत्य कला का महत्वपूर्ण केंद्र हैं। यहां के प्रमुख धार्मिक स्थलों में गौ रक्षक लोक देवता छोड़सिंह जी का स्थान प्रमुख है, जहां आज भी प्रतिवर्ष पशु रक्षा के लिए कामना करने हेतु हजारों श्रद्धालु आते हैं। वही इस गांव में निर्मित जैता बावड़ी अपने आप में अद्वितीय हैं जो न केवल स्थापत्य कला का प्रमुख नमूना है बल्कि धार्मिक आस्था का भी केंद्र हैं, जहाँ लोग काला व गोरा भैरव की पूजा करते हैं। बावड़ी के पास ठाकुर जी व जोगमाया का मंदिर भी है जिसका उल्लेख हमें इस गांव की *तवारिख* में भी मिलता है। नाथ योगी शिवनाथ जी के धार्मिक स्थल पर बनी नाहर खान की छतरी अद्वितीय हैं, जो रजलानी गांव के

धार्मिक स्थापत्य में चार चांद लगाती है। इस प्रकार रजलानी गांव धार्मिक स्थापत्य की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण केन्द्र हैं, जहां ग्रामीण धार्मिक पर्यटन की भी अपार संभावनाएं है।

संदर्भ सूची :

1. विश्वेश्वर नाथ रेऊ, *मारवाड़ का इतिहास*, भाग-1, आर्कियॉलॉजीकल डिपार्टमेंट, जोधपुर, 1938, पृ. 117
2. रजलानी ग्रामवासी सुमेर राम द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार।
3. राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर ऑनलाइन रिकॉर्ड, नॉन-आर्काइवल रिकॉर्ड्स, जोधपुर, बस्ता बी 13, जी. 16, इमेज संख्या 30-31, तथा भोपालगढ़ शासकों के वंशज दलपतसिंह जी द्वारा दी गई मौखिक जानकारी के अनुसार।
4. राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर ऑनलाइन रिकॉर्ड, नॉन-आर्काइवल रिकॉर्ड्स, जोधपुर, बस्ता बी 13, जी. 16, इमेज संख्या 24।
5. भोपालगढ़ शासकों के वंशज दलपतसिंह जी द्वारा दी गई मौखिक जानकारी के अनुसार।
6. राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर ऑनलाइन रिकॉर्ड, नॉन-आर्काइवल रिकॉर्ड्स, जोधपुर, बस्ता बी 13, जी. 16, इमेज संख्या 22।
7. वही, इमेज संख्या 23
8. व्यक्तिगत सर्वे के आधार पर प्राप्त जानकारी।
9. रजलानी ग्रामवासी सुमेर राम द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार।
10. वही
11. मेरी माताजी श्रीमती जैना देवड़ा द्वारा रात्रिजगा का बताया गया लोक गीत।
12. विश्वेश्वर नाथ रेऊ, पूर्वोक्त, पृ. 117
13. जैता बावड़ी में उत्कीर्ण विक्रमी संवत 1597 (1540 ई.) के शिलालेख के दूसरे भाग का मूलपाठ।
14. जैता बावड़ी में उत्कीर्ण विक्रमी संवत 1597 (1540 ई.) के शिलालेख के दूसरे भाग का मूलपाठ का अनुवाद एवं रेऊ, विश्वेश्वर नाथ : पूर्वोक्त, पृ. 117
15. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पुरातत्व भाग 1, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1983, पृ.165
16. विश्वेश्वर नाथ रेऊ, पूर्वोक्त, पृ. 118

17. गोविंद लाल श्री माली, राजस्थान के अभिलेख भाग 1, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केंद्र, जोधपुर, 2000, पृ. 330। एवं शिलालेख के मूलपाठ के अनुसार।
18. व्यक्तिगत सर्वे के आधार पर प्राप्त जानकारी।
19. निर्मल दास स्वामी (संपादक), श्री शिवनाथ जी जीवन परिचय, लक्की प्रिण्टर्स गोटन, 2010, पृ. 5।
20. पं. रामकरण आसोपा, *आसोप का इतिहास*, जोधपुर, पृ. 71-72
21. वही, पृ. 73
22. वही, पृ. 74
23. निर्मल दास स्वामी (संपादक) : पूर्वोक्त, पृ. 12

डॉ. भरत देवड़ा
सहायक आचार्य
इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्व विद्यालय
जोधपुर

❑❑❑

शेखावाटी के व्यापारिक वर्ग का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान

• डॉ. कुलवन्त सिंह शेखावत

भारत में राजस्थान का शेखावाटी अंचल अपने व्यापारियों के लिए विश्व प्रसिद्ध है, अपनी हवेलियों एवं भित्ति चित्रों के लिए पर्यटकों का आकर्षण का केन्द्र रहा है। इस अंचल में छोटे उप-अंचल अमरसरवाटी, झुंझुनूंवाटी, उदयपुरवाटी, सीकरवाटी, फतेहपुरवाटी तथा खण्डेलावाटी आदि भाग आते हैं। शेखावाटी में वर्तमान झुंझुनूं एवं सीकर जिलों का क्षेत्र सम्मिलित है। राव शेखाजी एवं उनके वंशजों द्वारा शासित प्रदेश 'शेखावाटी' कहलाता है। अंग्रेज अधिकारी मेजर फोरेस्टर के नेतृत्व में गठित शेखावाटी ब्रिगेड का अधिकार क्षेत्र भी सीकर और झुंझुनूं जिले तक सीमित था। अतः स्पष्ट है कि वर्तमान सीकर और झुंझुनूं जिलों का क्षेत्र इसमें सम्मिलित है।[1]

शेखावाटी मरूस्थलीय धरा पर यहां के व्यापारियों की व्यापारिक कुशलता से शेखावाटी में कई व्यापारिक केन्द्रों का विकास हुआ जो पारगमन व्यापार में महत्व रखते थे। शेखावाटी की हवेलियाँ उनकी धन-सम्पदा, वैभव एवं समृद्धि की कहानी आज भी कह रही हैं।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में औपनैवेशिक एवं सामंतीय नीतियों के फलस्वरूप व्यापारियों का प्रवसन ब्रिटिश क्षेत्र में होने लगा, धीरे-धीरे परम्परागत कस्बे अपना व्यापारिक महत्व खोने लगे। ब्रिटिश राज की ओर से व्यापारियों को कई प्रकार की सुविधाएं एवं आश्वासन प्रदान किये जाते थे। नगरश्री, चूरू के संग्रहालय में पोद्दार सेठों के दस्तावेजों से इसकी पुष्टि होती है। पूर्वोत्तर भारत में शेखावाटी के व्यापारी लोग बैंकिंग, दलाली, जूट, कपास तथा कपड़ा आदि वस्तुओं के व्यवसाय में दक्ष हो गए।[2]

शेखावाटी में पिलानी का बिड़ला घराना, चिड़ावा का डालमिया, केडिया, लक्ष्मणगढ़ का तोदी, सरावगी, मुकुन्दगढ़ का कानोड़िया, बगड़ का

रूंगटा, पीरामल, डूंडलोद का गोयनका, रामगढ़ का पोद्दार, रूईया, काशी का बास (सीकर) का बजाज, नवलगढ़ के पोद्दार, मोरारका, फतेहपुर का चमड़िया, बिसाऊ का खेमका, झुंझुनूं का झुंझुनूवाला आदि प्रमुख व्यापारिक घराने प्रसिद्ध हुए।[3]

राजस्थान के राजपूत शासकों ने बाह्य आक्रान्ताओं से सदैव जमकर संघर्ष किया। पूर्वमध्यकाल में मरू प्रदेश में गुर्जर-प्रतिहार शासकों ने अरबों से सतत् संघर्ष करते हुए उन्हें आगे नहीं बढ़ने दिया। सल्तनतकाल में चौहान, गुहिल शासकों ने दिल्ली सुल्तानों से अपने स्वाभिमान के लिए लोहा लिया। मुग़ल सत्ता की स्थापना के पश्चात् उनके सहयोगी बनकर मुग़ल साम्राज्य के प्रशासन के आधार-स्तम्भ रहे। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मराठों एवं पिंडारियों की लूटमार के परिणामस्वरूप ब्रिटिश संरक्षण स्वीकार किया। ब्रिटिश सरकार ने राज्यों के आंतरिक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु राजस्थान के राज्यों का तीव्र शोषण करना आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप राजस्थान में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध तीव्र आक्रोश उत्पन्न हो गया। अत: राजस्थान में 1857 ई. की क्रांति की अग्नि प्रज्वलित होने से पूर्व ही राजस्थान के जनमानस में ब्रिटिश सत्ता के प्रति तीव्र आक्रोश विद्यमान था।[4]

शेखावाटी के बढोट के सरदार डूंगजी—जवाहरजी शेखावत बन्धुओं ने अद्भुत साहस और शौर्य का परिचय देते हुए अंग्रेज सत्ता से लोहा लिया। *महाराजा तखतसिंह री ख्यात* में विशेषत: डूंगजी के क्रियाकलापों और अंग्रेजों की कार्यवाही का विगतवार विवरण प्राप्त होता है। डूंगसिंह अंग्रेजों के अनुचित हस्तक्षेप के विरोध में 1834 ई. में विद्रोही होकर शेखावाटी बिग्रेड के घोड़े व ऊँट लेकर निकल गए। बीकानेर क्षेत्र में लूटमार कर अपना रोष प्रकट किया। अंग्रेजों ने धोखे से कैद कर आगरा भेजा जहाँ से उनके भाई जवाहर सिंह ने मुक्त करवाया तत्पश्चात् दोनों भाईयों ने नसीराबाद छावनी पर डाका डाला और खजाने से 26000 रुपये नकद सिक्के ऊँटों पर लादकर ले गए। इस प्रकार स्पष्ट है कि शेखावाटी क्षेत्र के सपूतों ने अंग्रेजी सत्ता का जमकर विरोध किया।[5] जब 1857 की क्रांति अखिल भारतीय स्तर पर हुई तब सभी अंचलों का अपना योगदान रहा। तत्कालीन दस्तावेजों के साथ लोकसाहित्य, गीतों में ब्रिटिश राज के विरुद्ध संघर्ष का उल्लेख मिलता है। 1857 की क्रांति के दौरान क्रांतिकारियों के पत्रवाहक एवं कारिन्दों को शेखावाटी के व्यापारियों ने सहायता मुहैया करवाई थी। यह प्रतीक है कि उनमें व्यापार के साथ-साथ राष्ट्र के प्रति लगाव भी था।[6]

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शेखावाटी व्यापारियों का प्रवसन हुआ तत्पश्चात् बंगाल, बिहार, आसाम एवं मध्यप्रांतों में अधिक संख्या में निवास करने लगे। 20वीं शताब्दी के दौरान राष्ट्रीय आन्दोलन में उन्होंने अपनी भूमिका निभाई। व्यापारियों के स्वाभिमान से यह अवश्य उजागर होता था कि उन्हें ब्रिटिश अधिकारियों का रवैया पसंद नहीं आता था। अत: व्यापार करते हुए भी चाहते थे कि देश पराधीनता से मुक्त हो। स्वयं के शासन में यह अपमान नहीं झेलना पड़े, अत: अग्रपंक्ति के व्यापारियों में बिड़ला, बजाज शामिल थे। इसके अलावा सैंकड़ों की संख्या में अन्य व्यापारियों ने भी अपनी भूमिका निभाई जिनका अध्ययन किया जाना आवश्यक है जिससे शेखावाटी अंचल की राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका का सही आकलन किया जा सके।

शेखावाटी के व्यापारी बंगाल में अपने व्यवसाय का संचालन कर रहे थे। इसी दौरान 1905 ई. में बंगाल विभाजन की घोषणा के विरोध में मारवाड़ी व्यापारियों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। 1906 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में व्यापारियों ने भाग लिया। बंग विभाजन की विरोधी सभाओं में व्यापारियों की भागीदारी रही। नागरमल मोदी, देवीप्रसाद खेतान, बसन्तलाल मुरारका एवं बैजनाथ केडिया ने स्वदेशी आन्दोलन में अपनी भूमिका निभाई।[7]

कलकत्ता में क्रांतिकारियों की गुप्त समितियों का निर्माण होने लगा। अनुशीलन समिति एवं स्वदेश बांधव समितियाँ स्वदेशी आंदोलन एवं बंग विभाजन विरोधी आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभा रही थी। शेखावाटी के व्यापारियों ने इन समितियों तथा संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने के साथ उनसे सम्बन्ध बनाये। मुकुन्दगढ़ के बसन्तलाल मुरारका ने शरतचन्द्र बोस को एक लाख ग्यारह हजार रूपये की आर्थिक मदद की थी। कलकत्ता में मारवाड़ी नवयुवक मंडल द्वारा सक्रिय रूप से मारवाड़ी क्लब (राजस्थान क्लब) ने 1918 में बड़ा बाजार यंगमैन एसोसिएशन जैसे संगठनों के निर्माण के द्वारा सक्रिय रूप से क्रांतिकारियों की गतिविधियों में संलग्न रहते हुए अपनी भूमिका निभाई।[8]

महात्मा गांधी 1915 में भारत भ्रमण पर निकले इसी कड़ी में जब वह कलकत्ता गए तो वहाँ गांधीजी का जोरदार स्वागत किया गया एवं व्यापारियों ने उनकी नीतियों से प्रभावित होकर उनके बताए गए मार्ग से राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका निभाने का प्रण लिया। राजस्थान के घनश्यामदास बिड़ला, जमनालाल बजाज के अतिरिक्त सीताराम सेकसरिया, भागीरथ कानोडिया, रामेश्वरदास बिड़ला, बसन्तलाल मुरारका आदि व्यापारी नेताओं ने गांधी जी के कार्यक्रमों

एवं आन्दोलनों में भागीदारी निभाने का संकल्प लिया एवं इसे अपने जीवन का ध्येय बना लिया।

महात्मा गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में मारवाड़ी व्यापारिक वर्ग के लोगों ने आर्थिक सहायता के साथ विदेशी वस्त्रों का भी बहिष्कार किया। 1921 ई. में महात्मा गांधी जब तिलक स्वराज फण्ड के लिए धन संग्रह के लिए कलकत्ता आए तब शेखावाटी के व्यापारियों ने 'तिलक स्वराज फण्ड' में धन दिया जिसमें नवलगढ़ के पोद्दार घराने के आनन्दीलाल पोद्दार ने 2 लाख रुपये दिए। सेठ जुगलकिशोर बिड़ला ने मैनचेस्टर एवं लीवरपुल से आयातित वस्त्रों का बहिष्कार किया, उन्होंने जापान से साड़ियाँ एवं धोतियों का आयात किया।[10]

असहयोग आन्दोलन में शेखावाटी के व्यापारियों में मुकुन्दगढ़ के बसन्तलाल मुरारका, सीताराम सेकसरिया, बैजनाथ केडिया, रमादेवी मुरारका ने कलकत्ता में, कमलापत सिंघानिया ने कानपुर में, खेतड़ी के सेठ थानमल पुत्र परमानन्द ने दरभंगा, चिड़ावा के सेठ रामकृष्ण डालमिया ने बम्बई में प्रिंस ऑफ वेल्स का बहिष्कार किया, विदेशी वस्त्रों की होली जलाई, खादी प्रचार के लिए प्रशिक्षण एवं ब्रिटिश शासन के विरूद्ध जुलूस निकालने एवं सभाओं का आयोजन किया गया।[11] जमनालाल बजाज की अग्रणी भूमिका रही। मुहम्मद अली जिन्ना ने बधाई तार भेजकर बधाई दी थी—मेरे बहादुर बनिया, तुमने खूब किया, तुम्हारे पैर छूने के लिए तरस रहा हूँ।[12] 1930 के नमक सत्याग्रह आन्दोलन में शेखावाटी व्यापारियों की सक्रिय भूमिका रही। सेठ जमनालाल बजाज, बसन्तलाल मुरारका, राधाकृष्ण नेवटिया एवं सेठ रामगोपाल आदि ने नमक सत्याग्रह, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया था। कलकत्ता के बड़ा बाजार के नमक सत्याग्रह आन्दोलन में लगभग 1400 लोग जेल गए।[13] महात्मा गाँधी एवं कांग्रेस ने 1938 से पूर्व देशी रियासतों में प्रत्यक्ष कांग्रेस के द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन संचालन नहीं करने का संकल्प ले रखा था। ऐसी परिस्थितियों में गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा जनमानस में चेतना जाग्रत करने में व्यापारियों ने मुख्य भूमिका निभाई। शेखावाटी के व्यापारियों ने खादी प्रचार-प्रसार, हरिजनोद्धार कार्यक्रम एवं शिक्षा प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य किया। शेखावाटी क्षेत्र में व्यापारियों के प्रोत्साहन के कारण फतेहपुर, मुकुन्दगढ़, पिलानी, रींगस, लोसल, मण्डावा, सीकर एवं नवलगढ़ आदि स्थानों पर खादी केन्द्र, खादी आश्रमों की स्थापना की गई[14] जो खादी का प्रचार-प्रसार करते थे।

पिलानी के शेखावाटी के घनश्यामदास बिड़ला ने दिल्ली में अखिल

भारतीय हरिजन सेवक संघ की स्थापना की थी।[15] गुरुवायर मन्दिर, दिल्ली के लक्ष्मीनारायण मन्दिर में हरिजनों को प्रवेश दिया गया।[16] शेखावाटी के व्यापारियों ने हरिजन बच्चों के लिए स्कूलों की स्थापना की थी। शेखावाटी के व्यापारियों द्वारा अपने मूल स्थानों में शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई। जिसमें पिलानी का बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट, चिड़ावा का सोमानी एजूकेशन ट्रस्ट, नवलगढ़ का आनन्दीलाल पोद्दार एजूकेशन ट्रस्ट, मुकुन्दगढ़ का कानोडिया एजूकेशन ट्रस्ट एवं फतेहपुर शेखावाटी का जी.आर. चमड़िया एजूकेशन ट्रस्ट ने शिक्षा जगत में उल्लेखनीय कार्य किया।

शेखावाटी के व्यापारियों ने 1942 ई. के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान ब्रिटिश भारत एवं देशी रियासतों में एक साथ जन-संघर्ष प्रारम्भ हुआ। देशी रियासतों को आन्दोलन में प्रत्यक्ष भूमिका निभाने का पहली बार मौका मिला। प्रजामंडल की स्थापना इस समय तक प्रत्येक रियासत में हो चुकी थी और वह गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों का संचालन कर रही थी। 8 अगस्त, 1942 में आन्दोलन उद्घोषणा के साथ ही कांग्रेस के बड़े नेताओं को गिरतार कर लिया गया। इसी कड़ी में जमनालाल बजाज के परिवार के सदस्य जानकी देवी बजाज, कमलनयन बजाज, राधाकृष्ण बजाज, सावित्री बजाज, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, सेठ भागीरथ कानोडिया, बसन्तलाल मुरारका एवं सीताराम सेकसरिया को जेल भेज दिया।[17] इनके अलावा शेखावाटी के व्यापारियों ने, जो जेल नहीं गये, कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं को गुप्त रूप से आर्थिक सहायता करने और आन्दोलन के संचालन में योगदान दिया।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि गांधीजी ने व्यापारिक वर्ग के महत्व को राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए आर्थिक शक्ति प्रदान करने वाला बताया हैं। गांधीजी के व्यक्तित्व का प्रभाव मारवाड़ी व्यापारियों के व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन पर पड़ा। जिसे हम उनके द्वारा किये गए रचनात्मक कार्यों एवं विभिन्न आन्दोलन में निभाई गयी भूमिका में देख सकते हैं।

सन्दर्भ

1. हरफूलसिंह आर्य, *शेखावाटी के ठिकानों का इतिहास एवं योगदान,* पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 1
2. डी.के. टकणैत, *इण्डिस्ट्रयल एन्टरप्रेन्योर्शिप ऑफ शेखावाटी मारवाड़ी,* कुमार प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 179-201
3. वही
4. प्रकाश व्यास, *'राजस्थान में 1857 ई. की क्रांति में तात्यां टोपे की*

भूमिका'; डॉ. रामप्रसाद व्यास, (सम्पादक), स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थान का योगदान, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2004, पृ. 29-36

5. हुकुम सिंह भाटी, *'स्वतंत्रता सेनानी डुंगजी-जवाहरजी सम्बन्धी नवीन तथ्य'*; रामप्रसाद व्यास, (सम्पादक), पूर्वोक्त, पृ. 24-28
6. डी.के. टकणैत, *मारवाड़ी समाज और बृजमोहन बिड़ला*, जयपुर, 1993, पृ. 26
7. राधाकृष्णन नेवटिया, *राजनीति क्षेत्र में मारवाड़ी समाज की आहुतियाँ*, कलकत्ता, 1948, पृ. 90-96
8. लक्ष्मीनारायण लाल, *स्वराज और घनश्यामदास*, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1987, पृ. 76
9. एस.एन. तिवाड़ी, *रोल ऑफ बिजनैस कम्यूनिटी इन फ्रीडम मूवमेंट*, जयपुर, 1991, पृ. 97
10. राधाकृष्णन नेवटिया, *बड़ा बाजार के कार्यकत्ता स्मरण एवं अभिनन्दन*, कलकत्ता, 1982, पृ. 7
11. राधाकृष्णन नेवटिया, पूर्वोक्त, पृ. 55, 70, 76
12. वही, 1948, पृ. 282-83
13. डी.के. टकणैत, *मारवाड़ी समाज*, जयपुर, 1990, पृ. 200
14. मोहन सिंह शेखावाटी में *स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास*, झुंझुंनूं, 1990, पृ. 281-85
15. लक्ष्मीनारायण लाल, *पूर्वोक्त*, पृ. 188-90
16. वही
17. राधाकृष्णन नेवटिया, *पूर्वोक्त*, पृ. 116-22, 316

डॉ. कुलवन्त सिंह शेखावत
सहायक आचार्य
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

❑❑❑

नाता प्रथा : एक पुनर्विवाह या खरीद फरोख्त की व्यवस्था?

• डॉ. लालाराम जाट

राजस्थान कई प्रथाओं एवं कुप्रथाओं के कारण भारतीय समाज में चर्चित रहा है। यह वही राजस्थान है जहां पर सती प्रथा की रोकथाम के लिए कानूनी जंग लड़ी गई थी। दूसरी तरफ राजस्थान में आखातीज पर बाल विवाह होने का रिकार्ड आज भी कायम हैं। आज भी कानूनी प्रावधानों के बावजूद हजारों की संख्या में बाल विवाह का आयोजन होता है। इसी कड़ी में नाता प्रथा एक ऐसी प्रथा जो कही न कही महिला अधिकार एवं पुनर्विवाह की भावनाओं के साथ विकसित हुई। वर्तमान सन्दर्भ में यह प्रथा एक कुप्रथा के रूप में उभर कर सामने आयी है। नाता प्रथा जाति पंचायतों तथा पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था की कठपुतली बन कर रह गई है। जिस पंचायत में महिला को न बोलने न ही बैठने का अधिकार दिया है, उसे उनके निर्णय का अधिकार मानकर खरीद फरोख्त एवं मूल्य निर्धारण के विवादों का निर्णय करती है। पुरुष अपने पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था का लाभ उठाते हुए इस प्रथा की आड़ में महिला के बदले एक बड़ी धन राशि हासिल करता है।

राजस्थान के हिन्दू समाज में प्रचलित यह प्रथा मुख्यतः जाट, गुर्जर, डांगी, अनुसूचित जाति एवं जनजाति समुदायों में बहुतायत रूप से प्रचलित है। यह प्रचलन मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित है। राजस्थान में ब्राह्मणों एवं राजपूत जातियों को छोड़कर लगभग सभी जातियों में नाता प्रथा का प्रचलन किसी न किसी रूप में हो रहा है। ब्राह्मण एवं राजपूत जातियों के संदर्भ में इस प्रथा का प्रचलन न होने के पीछे यह कारण रहा है कि इन दोनों जातियों में महिलाओं के लिए पुनर्विवाह वर्जित माना गया है। यह व्यवस्था महिलाओं के जीवन जीने के अधिकार को समाप्त कर देती है। इस प्रथा का प्रचलन पुनर्विवाह की व्यवस्था का ही हिस्सा माना जा रहा है। वैसे तो विवाह के क्षेत्र में कई तरह के परिवर्तन

भारतीय सन्दर्भ में देखे गये हैं। अब विवाह सम्बन्धों के निर्धारण, सम्बन्धों की क्षेत्रीय परिधि को लेकर काफी शिथिलता आई है। वैवाहिक सम्बन्ध आजीवन रिश्ते माना जाता रहा है वो अब परिस्थितियों के अनुसार खत्म करने की व्यवस्था सामाजिक तथा कानूनी दोनों स्तर पर विकसित हुई है। नाता प्रथा इस व्यवस्था को बढ़ावा देने का हिस्सा रही है। विवाह के रिश्ते की अमर जोड़ी की मान्यता होने लगी है। स्वतन्त्रता के अधिकार को प्रमुखता देते हुए अमर जोड़ी को चन्द दिनों में तलाक एवं नाता प्रथा के माध्यम से वैवाहिक पृथक्करण कर लिया जाता है। यह सही भी है कि यदि वैवाहिक रिश्तों में स्वतन्त्रता नहीं मिल पा रही है तो इससे छुटकारा पाना गलत भी नहीं हो सकता हैं।

नाता प्रथा वर्तमान सन्दर्भ में कुछ हद तक सही भी है तथा इसका एक व्यापक पैमाने पर विकृत स्वरूप भी प्रचलित है जो सभ्य, शिक्षित एवं प्रजातान्त्रिक समाज के लिए कलंक भी है। भारत का संविधान मूल अधिकारों के माध्यम से जाति, लिंग, भाषा एवं स्थान के आधार पर होने वाले भेदभावों का निषेध करता है तो दूसरी तरफ नाता प्रथा को लिंग आधारित भेदभाव के रूप में सामाजिक स्तर पर स्वीकारा गया है। जब कोई पुरुष महिला का त्याग करता है तो इस प्रथा में पुरुष द्वारा उस परित्यक्त महिला को भरण पोषण की राशि नहीं देनी पड़ती है। यदि महिला पर होने वाली हिंसा से मुक्ति, सम्मान एवं स्वतंत्रता के लिए पुरुष का त्याग करती है तो ऐसी स्थिति में त्याग करने के पश्चात् जिस व्यक्ति से विवाह किया जाता है उस व्यक्ति को उस महिला को पत्नी बनाने के लिए एक मोटी राशि देनी पड़ती है अर्थात् यह व्यवस्था पुरुषों को धन अर्जन का हथियार प्रदान करती है तथा महिला को आयात एवं निर्यात की वस्तु के रूप में प्रस्तुत करती है। नाता प्रथा के सकारात्मक पक्षों से कतई यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि उसमें कुछ अच्छाई है तथा अच्छाई के गुनगाणों में उसकी अमानवीय बुराइयों को अन्ध भक्ति के रूप में स्वीकार्य नहीं करना चाहिए। हमें उन अल्पसंख्यक बुराइयों पर खुल कर चर्चा करनी चाहिए। हमे स्वच्छ प्रथाओं के निर्माण के लिए प्रथाओं के नाम पर ढोई जा रही बुराइयों को स्वतंत्र मस्तिष्क से बहस कर उसे बाहर करना चाहिए तथा जाति व्यवस्था के उपर उठकर स्वच्छ प्रथाओं के लिए बात आगे चलानी होगी। हमें इन कथनों पर चर्चा करना इसलिए भी आवश्यक है कि हम उसके तह तक पहुचने से पूर्व ही अपने मस्तिष्क के वैचारिक विमर्श के रास्ते बन्द कर देते हैं इसको रोकने के लिए विश्लेषण किया है।

नाता प्रथा राजस्थान में विवाह से सम्बन्धी एक अनूठा रिवाज सदियों से चला आ रहा है। इस प्रथा के तह तक जाकर इसके वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत

करने के व्यक्तिगत प्रयास नहीं हुए हैं। इसे दहेज एवं बालविवाह की भांति उभरती हुई कुप्रथा के रूप में नहीं देखा गया है तथा इसे अत्यन्त सामान्य प्रथा के रूप में देखा जाता रहा है। मिडिया एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका इस क्षेत्र में बहुत सीमित रही है। इस पर व्यापक चर्चा करने से पूर्व नाता प्रथा के अर्थ को समझना नितान्त आवश्यक हैं जो इस प्रकार है—

नाता प्रथा का अर्थ

नाता प्रथा को लेकर समाजशास्त्रियों द्वारा कोई सर्वमान्य परिभाषा निरूपित नहीं की जा सकी है। हम इसे सामान्य अर्थों के रूप में इस तरह समझ सकते हैं—

'नाता प्रथा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें महिला एवं पुरुष के जीवन में विवाह होने के पश्चात् उस प्रथम विवाह को त्याग कर दूसरे पुरुष अथवा महिला के साथ बिना वैवाहिक रीति-रिवाजों के पति-पत्नी के रूप में एक दूसरे को स्वीकार कर लेते हैं तथा सामाजिक स्तर पर झगड़े की व्यवस्था के माध्यम से एक निश्चित राशि का आदान प्रदान कर दिया जाता है तब यह विवाह सामाजिक स्तर पर वैध विवाह का दर्जा प्राप्त कर लेता है।'

'दूसरे स्वरूप में हम नाता प्रथा के अर्थ को इस प्रकार देख सकते हैं : नाता प्रथा में एक विवाहित अथवा विधवा या परित्यक्ता स्त्री किसी दूसरे पुरुष के साथ पत्नी के रूप में रह सकती है या रहने के लिए मजबूर किया जाता है यदि दूसरा पुरुष उसके पूर्व पति को अथवा पिता या परिवार को एक निर्धारित धन राशि का भुगतान कर देता है तो उसे पत्नी का सामाजिक दर्जा प्राप्त हो जाता है।'

दोनों अर्थों के सार रूप में कह सकते हैं कि नाता एक रूढीवादी परम्परा है जिसमें पूर्व पति या परिवारजन द्वारा अपनी बेटी या पत्नी या बहन या अन्य सम्बन्धी को नकद धन के बदले में महिला को पत्नी बनने के लिए बेचा जाता है या मजबूर किया जाता है या लेन देन के माध्यम से महिला को सुपुर्द किया जाता है। दूसरी तरफ विवाहित पुरुष पुनः विवाह कर सकता है या फिर नाता प्रथा के माध्यम से दाम्पत्य जीवन का सुख भोग सकता है।

केस-1

राम लाल जाट व केसर दोनों अपना दाम्पत्य जीवन हंसते खेलते बिता रहे थे। दोनों अपने पैतृक गांव से रोजगार के लिए नाथद्वारा के पास एक किराये का

मकान लेकर रह रहे थे। इनका विवाह बाल विवाह था। रामलाल की बहन का विवाह भी राम लाल के साले के साथ कर रखा था अर्थात् दोनों परिवारों में आटा-साटा के आधार पर विवाह हुआ। दोनों परिवारों की बहू को लाने व ले जाने को लेकर विवाद हुआ। यह विवाद लगभग एक वर्ष चलता रहा। अन्ततः केसर किसी अन्य पुरुष के यहां नाते के आधार पर चली गई। जैसे ही केसर नाता गयी तो जाति पंचायत की बैठक का आयोजन हुआ एवं पंचायत ने यह निर्णय किया कि दोनों परिवारों के मध्य आटा-साटा हुआ है इस कारण नाता के झगड़े की राशि दोनों परिवार अपने पास रख सकते हैं तथा रकम जो जिसकी है वह उसे सुपुर्द कर देवे। इस पर दोनों पक्ष सहमत हो गये। अन्ततः केसर जिस व्यक्ति के यहा पर रह रही थी उस व्यक्ति से केसर के पिता व भाई द्वारा झगड़े की राशि के रूप में 16,0000 रुपये प्राप्त किये। इस राशि की प्राप्ति के पश्चात् केसर को सामाजिक रूप से पत्नी के रूप में रहने का अधिकार दे दिया गया।

केस-2

सीता का विवाह जालोर जिले के रामपूरा गांव में 3 साल पहले रमेश के साथ में हुआ था। रमेश पेशे से मुम्बई में मोबाईल शोप पर काम करता है। सीता विवाह के पश्चात् अपने ससुराल रामपुरा में रहने लगी। इस दौरान सीता के जेठ तथा ससुर के द्वारा सीता के साथ मे सम्बन्ध बनाने का प्रयास किया गया। इस बात से सीता ने नारजगी जतायी और सारी बात अपने पति को बतायी परन्तु उसने कोई जवाब नहीं दिया। सीता ने अपने पीहर में जाकर अपने माता-पिता के साथ में अपनी आप बीती बतायी तो सीता के माता-पिता ने सीता को ससुराल भेजने से मना कर दिया और उस दिन से सीता पीहर में रहने लगी। सीता के ससुराल वाले सीता को लेने उसके पीहर पहुंचे तो सीता ने अपने ससुराल पक्ष तथा पीहर वालों को ससुराल नहीं जाने की बात बतायी। इसके बाद में सीता को 1 साल पीहर में रहने के बाद में पड़ौस के गांव में नाते पर दे दिया गया। सीता के नाते जाते ही पूर्व ससुराल पक्ष वालों ने जाति पंचायत बुलाई और जाति पंचों ने सीता के पीहर पक्ष तथा नये ससुराल पक्ष पर 11,000,00 रुपये का झगड़ा भरने का फरमान सुनाते हुए समाज से बहिष्कृत कर दिया। सीता के नाते के एक माह बाद जब सीता के नये ससुराल पक्ष वालों की तरफ से 11 लाख रुपये झगड़े की राशि पंचों की दी गई तब उनको पुनः समाज में सम्मिलित किया गया।

केस-3

रेलमगरा निवासी श्यामलाल का विवाह बाल्यकाल में कमला गायरी के साथ हुआ था। श्यामलाल शहर में रहकर अपनी पढ़ाई का कार्य करता रहा। इस दौरान उसकी नौकरी लग गई। दूसरी तरफ कमला अशिक्षित एवं ग्रामीण परिवेश में पली-बढी थी। कभी-कभार उसे श्यामलाल के माता पिता वार-त्यौहार लाया करते थे। इससे श्यामलाल खुश नहीं था परन्तु पारिवारिक दबाव के कारण खुलकर कभी विरोध नहीं कर सका। जैसे ही उसकी नौकरी लगी उसने अपने माता-पिता के माध्यम से कमला के घर वालों को सूचना भिजवा दी कि वह कमला को नहीं रखना चाहता है। कमला के भाई का विवाह श्यामलाल की बहन से करवा रखा था। इस तरह दोनों परिवारों में आटे-साटे का सम्बन्ध था जिस कारण दोनों परिवार चाहते थे कि यह परिवार जैसे-तैसे टूटने से बच जाये। मान-मनवार की यह प्रक्रिया एक वर्ष तक चलती रही अन्ततः श्यामलाल नहीं माना दूसरी तरफ कमला ने भी दूसरे विवाह का निश्चय कर लिया। कमला बिना बताये किसी अन्य के नाते चली गयी। इस बात को लेकर श्यामलाल के परिवार वालों ने जाति पंचों की बैठक में उठाया। इस पर जाति पंचों की बैठक में ही कमला के माता-पिता सामाजिक स्तर पर ही इस विवाद को सुलटाना चाहते थे तथा अपने पुत्र का दाम्पत्य जीवन भी बचाना चाहते थे। इसलिए उन्होंनें कमला जिस व्यक्ति के साथ रहने लग गयी थी उससे झगड़े की राशि दिलाने का पंचों को आश्वासन दिया। पंच-पटेलों द्वारा झगड़े की राशि दो लाख रुपये निर्धारित की गई। जिसे दो माह के भीतर श्यामलाल के परिवार को सौंपने का निर्णय किया। दो माह के अन्दर ही कमला के नये पति ने यह झगड़े की राशि श्यामलाल के परिवार को देकर कमला को सामाजिक रूप से अपनी पत्नी का दर्जा दिलाया।

नाता प्रथा के तत्व

- नाता प्रथा वैवाहिक सम्बन्धों में असंतुष्ट पक्ष को दूसरे व्यक्ति के साथ वैवाहिक बन्धनों की व्यवस्था उपलब्ध करवाता है।
- नाता प्रथा व्यवस्था में दाम्पत्य जीवन छोड़कर अन्य के साथ दाम्पत्य जीवन बिताने के लिए महिला की एवज में झगड़े के नाम पर एक धन राशि पूर्व पति या पिता या उसके रिश्तेदार द्वारा ली जाती है।
- पुरुष को दो प्रकार के अधिकार प्रदान करने वाली व्यवस्था है प्रथम पुरुष पुनः विवाह कर सकता है दूसरा पुरुष किसी अन्य की पत्नी या विधवा या परित्यक्ता को नाते पर लाकर अर्थात् पत्नी बना सकता है।

- पुरुष द्वारा जब भी नाता लाया जायेगा तो उसे तब तक दाम्म्पत्य का दर्जा नहीं मिल सकता जब तक वह उस महिला के बदले झगड़े का निपटारा सामाजिक स्तर पर नहीं कर लेता है अर्थात् पैसे का भुगतान नहीं कर देता है।
- नाता प्रथा के विवादों का निपटारा केवल मात्र जाति पंचायत द्वारा ही निर्णीत होता हैं।
- नाता प्रथा में महिला के लेन देन में मोटी राशि वसूल की जाती है जिसमें महिला को किसी प्रकार की राशि का हिस्सा या राशि उसे नही दी जाती है। तथा राशि का एक बड़ा हिस्सा दलालों में भी बट जाता है।
- नाता प्रथा को एक संगठित गिरोह द्वारा भी अब किया जा रहा है जिसका हिस्सा झगड़े की राशि में निश्चित रहता हैं।
- लिंगानुपात गिरने के कारण यदि विवाह नहीं हो पाया तो उसे एक काल्पनिक विवाह का आयोजन कर बाद में नाता प्रथा से पत्नी लाई जाती है।
- नाता प्रथा के साथ ही कई बार बच्चो के मूल पिता का दर्जा भी खत्म हो जाता है।
- एक से अधिक बार नाता व्यवस्था से पति या पत्नी बदलने की व्यवस्था भी प्रदान करती है।

नाता प्रथा के सकारात्मक पक्ष

1. अमानवीय दाम्पत्य जीवन से छुटकारा पाने का आसान एवं कम खर्चीली व्यवस्था।
2. पुनर्विवाह की आसान प्रक्रिया जो समाज द्वारा सहज रूप से स्वीकार तथा मान्य है।
3. पूर्व में हुए बाल विवाह का वयस्क होने पर पुनः एक विकल्प के रूप में की गई यह व्यवस्था है।

नाता प्रथा के नकारात्मक पक्ष

1. नाता प्रथा पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था को ओर अधिक मजबूती प्रदान करती है।
2. महिलाओं को वस्तु की तरह खरीद फरोख्त करने का बाजार उपलब्ध कराती है।

3. महिला के मानवीय अधिकारों के साथ यह व्यवस्था कुठाराघात करती है।
4. जाति पंचायत खांप पंचायतों के रूप में कार्य करती है जिसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया असंवैधानिक एवं अलोकतान्त्रिक होती है।
5. जेन्डर आधारित भेदभाव व्यवस्था को जीवित रखने की व्यवस्था है। इस व्यवस्था में पुरुषों को एक तरफा अधिकार सुपुर्द करती है।
6. पुनः दाम्पत्य जीवन में आने के लिए कर्ज का सहारा लेना पड़ता है।
7. यदि बच्चे हैं तो उन्हें मूल प्राकृतिक अधिकारों से भी कई बार वंचित कर दिया जाता है तथा उनके साथ तो दोयम दर्ज का व्यवहार किया जाता है।
8. यह प्रथा संगठित गिरोह की आय का एक जरिया बन गयी है इसके लिए महिलाओं का अपहरण, बहला-फुसला कर या धोखे में रख कर उनका उपयोग किया जाता हैं।

जाति पंचायत की भूमिका

नाता प्रथा में जाति पंचायत की भूमिका बहुत व्यापक क्षेत्र में देखी जा सकती है। इस व्यवस्था को ऐतिहासिक काल से लेकर वर्तमान काल तक परिवर्तित रखने तथा पीढी दर पीढी हस्तानान्तरण के कार्य में जाति पंचायत की ऐतिहासिक भूमिका रही है। नाता प्रथा का वर्तमान जो स्वरूप उभरा है उसके लिए भी जाति पंचायत व्यवस्था की भूमिका रही है। नाता प्रथा से जुड़े समस्त विवादों की अन्तिम निर्णायक संस्था जाति पंचायत ही है। इसके द्वारा सुनाये गये निर्णय पर किसी प्रकार की अपीलीय ऐजन्सी नहीं होती है अर्थात् इसका निर्णय एक फरमान है जिसे चाहने या न चाहने की इच्छा का विकल्प नहीं प्रदान करती है।

नाता प्रथा की आड़ में ली जाने वाली धन राशि को झगड़ा कहां जाता है। झगड़ा अर्थात् नाता की धनराशि के निर्धारण में किसी प्रकार का विवाद उत्पन्न होता है या फिर उस महिला के बच्चों के सम्बन्ध में विवाद उत्पन्न होता है या उसकी सौदेबाजी या अनुपयुक्त धनराशि या सुपुर्दगी सम्बन्धी विवादों का निपटारा जाति पंचायत द्वारा किया जाता है। जाति पंचायत में सर्वप्रथम दोनों गांव के पंचों की उपस्थिति में जाति पंचायत का आयोजन होता है। यदि विवाद का निवारण यहां पर नहीं हो पाया तो चौखले स्तर पर जाति पंचायत का आयोजन किया जाता है। इस स्तर पर हुए निर्णय को मानना अनिवार्य है। इसके लिए विवादित पक्षों के समक्ष किसी प्रकार का विकल्प नहीं बचता है। यदि

विवाद का निवारण जाति पंचायत के द्वारा रखे गये विकल्पों के अनुरूप नहीं हो पाया तो जाति पंचायत द्वारा एक निर्णय सुनाया जाता है। उस निर्णय के पश्चात् यदि किसी पक्ष द्वारा लागू नहीं किया गया तो दुबारा जाति पंचायत का आयोजन कर जिस पक्ष द्वारा निर्णय की अवेहलना हुई है उसके खिलाफ कई तरह के फतवे अर्थात् आदेश पारित किये जाते हैं जिसमें समाज से बहिस्कृत करने, वैवाहिक एवं अन्य सामाजिक कार्यक्रमों में भाग नहीं लेने, बातचीत नहीं करने, गांव छोड़ने जैसे अमानवीय निर्णय भी सुना दिये जाते हैं ऐसे निर्णयों के पश्चात् उस व्यक्ति को दुबारा बहाल करने के लिए जाति पंचायत अर्थदण्ड भी दे देती है तथा सार्वजनिक माफी भी मंगवाने का निर्णय कर बैठती है। नाता के मामलों में जाति पंचायत ही सर्वोपरि है इसमें किसी प्रकार की कानूनी दखलन्दाजी नहीं है।

नाता प्रथा में दलालों की भूमिका :

वर्तमान स्वरूप में कई दलाल व गिरोह हैं जो इस व्यवस्था को आय का जरिया बना लिया है। ये दलाल महिलाओं को बहला-फुसला कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर विवाह व नाता करवाने का कार्य करते है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में दोनों पक्षों से अपनी दलाली निर्धारित कर अपनी हिस्सेदारी प्राप्त करते हैं। लिंगानुपात गिरने के कारण ग्रामीण समाज में कंवारें व्यक्ति इन दलालों के माध्यम से विवाह बन्धन में बन्धने के लिए दलाली देने से नहीं चूकते हैं। काल्पनिक विवाह कर ये कंवारे (अविवाहित) संगठित गिरोह के माध्यम से नाता कर लेते हैं। कुछ गिरोह तो समाज में इस तरह की पैठ जमा चुके हैं जिनसे लोग नाता विवाह हेतु सम्पर्क करने लगे हैं। यह गिरोह पैसों के बलबूते पर जाति पंचों की खरीद फरोख्त करने में भी सफल रहते हैं तथा अपने पक्ष में निर्णय करवाने में भी काफी हद तक सफल हो जाते हैं। जाति के ही दलाल होने के कारण ये लोग आसानी से अपना कारोबार चला रहे हैं।

नाता प्रथा एवं बाल विवाह :

नाता प्रथा का प्रचलन कहीं न कहीं बाल विवाह के साथ जुडा हुआ है। बाल विवाह के पश्चात् जब दोनों पक्ष वयस्क हो जाते हैं तो उनमें आपसी वैचारिक मेल-मिलाप नहीं हो पाता है या फिर एक पक्ष जिद्दी और सामाजिक परिवेश का हिस्सा हो जाता है अर्थात् कुछ ग्रामीण परिवेश से शहरी परिवेश में बस जाते हैं तब भी इस रिश्ते में टकराव उत्पन्न हो जाता है। बाल विवाह के कारण ही इस प्रथा का प्रचलन बढ़ा हैं। बाल विवाह की समाप्ति पर यही सामाजिक व्यवस्था है जो उसे पुनः दाम्पत्य जीवन में लाती है।

महिलाओं पर प्रभाव

ऐतिहासिक परिदृश्य में नाता प्रथा एक रूढिवादी परम्परा है जो वर्तमान समाज में महिलाओं की स्थिति को कमजोर बनाती है तथा पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था को मजबूती प्रदान करती है। इस व्यवस्था को पुरुष वर्चस्व की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। ऐतिहासिक सन्दर्भ में नाता प्रथा की उत्पति या प्रारम्भ दाम्पत्य जीवन में असन्तुलन या एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष पर अत्याचार करने या दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष की मृत्यु हो जाती है तो ऐसी स्थिति में पुन: विवाह करने के उद्देश्य से हुआ होगा। वर्तमान संदर्भ में यह प्रथा एक कुप्रथा के रूप में लगभग स्थापित हो चुकी है। ग्रामीण समाज में नाता व्यवस्था एक सामान्य प्रथा की भांति प्रचलित हैं। सामाजिक स्तर पर कभी भी इस व्यवस्था को खरीद फरोख्त की व्यवस्था के दृष्टिकोण से देखने या उसका अध्ययन करने का प्रयास नहीं हुआ है। इस प्रथा से महिला को एक विक्रय की वस्तु के रूप में उपयोग किया जाता है। जिस महिला को दूसरे की पत्नी बनना है तो दूसरा पति बनने के लिए जो व्यक्ति तैयार हो उसे पहले एक मोटी राशि चुकानी पड़ती है जब एक ग्रामीण किसान एक मोटी रकम चुकाने के लिए कर्ज का सहारा लेता है। यह कर्ज उन दोनों को बाद में अमानवीय कष्ट सहते हुए कर्ज उतारने के लिए वर्षों-वर्षों तक कार्य करना पड़ता हैं।

यह व्यवस्था महिला के मानव होने के नाते जो मानव अधिकारों की हकदार होती है उससे वंचित करता है साथ ही भारत के संविधान द्वारा महिलाओं के लिए जिन मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है इससे वंचित करता है। महिला की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बाधित होती है तथा उसे लिंग आधारित भेदभाव की व्यवस्था का शिकार होना पड़ता है।

बच्चों पर प्रभाव

नाता प्रथा के कारण कई बच्चों के प्राकृतिक अधिकारों से वंचित होना पड़ता है। इस व्यवस्था में जाति पंचायत द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि बच्चे किसके पास रहेंगे। पंचायत अपने ही हिसाब से इसका निर्धारण कर लेती है। इसमें इस बात पर कभी चर्चा नहीं कि जाती है कि इन बच्चों के लिए सबसे अच्छा गुजारा कहां पर हो सकता है। कई बार पिता द्वारा बच्चों का त्याग कर दिया जाता है तो कही बच्चों को मां नाता जाते समय अपने साथ ही ले जाती है। कई बार बच्चे अपने मां के पीहर पक्ष में बड़े होने के लिए मजबूर होते हैं। इस तरह बच्चों के भविष्य को ध्यान में रखते हुए इस प्रथा में कोई प्रावधान

देखने को नहीं मिलता है। नाता की राशि में भी इन बच्चों की हिस्सेदारी नहीं होती है न ही पूर्व पिता द्वारा बच्चों के भरण पोषण के लिए कोई व्यवस्था की जाती है। इस तरह से बच्चों के साथ अमुमन सौतेला व्यवहार होता है। उनका विकास बाधित होता है तथा नकारात्मक सामाजीकरण होने की सम्भावना अधिक प्रबल हो जाती हैं।

नाता प्रथा की वैधानिकता

वैधानिक दृष्टि से नाता प्रथा रूढिगत विधि के अन्तर्गत मान्य हैं क्योकि भारतीय संविधान एवं विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत प्रथागत रूढि को वैधानिकता का दर्जा प्रदान किया गया है। जिस कारण से नाता विवाह वैध विवाह के रूप में माना गया हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने गोपाललाल बनाम राजस्थान राज्य[1] मामले में नाता प्रथा द्वारा रूढिगत विवाह के विधिक साक्ष्य तथ्यों की स्वीकृती को एक वैध विवाह की श्रेणी के अन्तर्गत मानते हुए इसे वैध विवाह का दर्जा प्रदान किया गया। राजस्थान उच्च न्यायालय ने आत्माराम बनाम शांति देवी[2] तथा रूपसिंह बनाम राजस्थान राज्य[3] एवं अन्य मामले में नाता विवाह को एक वैध विवाह के रूप में माना गया हैं।

नाता प्रथा एवं मानव अधिकार

मानव अधिकारों का सम्बन्ध मानव की गरीमा से हैं जो हर मानव के व्यक्तित्व विकास के लिए अनिवार्य हैं। नाता प्रथा का वर्तमान स्वरूप जेन्डर आधारित भेदभाव एवं शोषण पर आधारित व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुका हैं। नाता प्रथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित अन्तरराष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा पत्र के अनुच्छेद 1 का उल्लघंन करती है। इस अनुच्छेद में उल्लेखित किया गया है कि सभी मनुष्यों को गरिमा एवं अधिकारों सम्बन्धी जन्मजात समानता प्राप्त है। इसी तरह विभिन्न अनुच्छेदों के बावजूद नाता प्रथा इनका उल्लघंन करती हैं। मुख्य इस प्रकार हैं—

1. नाता प्रथा में लिंग आधारित भेदभाव की समाप्ति की घोषणा का उल्लघंन होता हैं।
2. नाता प्रथा में व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता एवं सुरक्षा के प्रावधानों का उल्लघंन करती हैं।
3. नाता प्रथा अब मानव की गरीमा विरुद्ध प्रथा के रूप में होने के कारण इसे कानूनी प्रावधान के माध्यम से प्रतिबन्धित किया जाना था।

4. व्यक्ति को विवाह करने, विवाह के बाद बसने, विवाह विच्छेद का मौलिक अधिकार है जो नाता प्रथा में घोर उल्लंघन किया गया है।

5. बालिंग स्त्री-पुरुष को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म को रूकावटो के विवाह करने एवं परिवार बसाने की स्वतंत्रता है जबकि नाता प्रथा में महिला अधिकार समाप्त कर दिये जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सन् 1979 में समाज के भीतर महिलाओं के खिलाफ होने वाले सभी प्रकार के भेदभाव से मुक्ति दिलाने के लिए एवं अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा को स्वीकार किया गया। इस प्रसंविदा के आधार पर महिलाओं का रेखांकन अलग किया जाना या बहिष्कृत करना या प्रतिबंध करना जो लिंग के आधार पर किया गया हो और जिसके कारण किसी भी महिला की पहचान, अधिकारों का उपभोग व उसका उपभोग बाधित अथवा निष्क्रिय होते है उन्हें निषेध घोषित किया गया हैं। नाता प्रथा में महिला की स्वतंत्र पहचान ही समाप्त कर दी जाती हैं। यदि वह स्वतंत्र पहचान स्थापित करने का प्रयास करती है तो उस महिला तथा उसके परिवार को समाज से बहिष्कृत करने जैसे फरमान जारी कर दिये जाते हैं। इस दबाव में महिला अपने अधिकारों का उपभोग दबाव के कारण नहीं कर पाती हैं। इस तरह नाता प्रथा मानव अधिकारों के घोषणा पत्र एवं लिंग आधारित भेदभाव की व्यवस्था के खिलाफ हैं।

निष्कर्ष

नाता प्रथा का वर्तमान संदर्भ में एक विकृत स्वरूप के रूप में उभरा है जिसे किसी भी तरह से इस व्यवस्था से छुटकारा पाना होगा। वैसे तो कानूनी रूप से पुनः विवाह की व्यवस्था उपलब्ध है इसलिए हमें इस तरह की प्रथाओं पर कानूनी प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता है। इस प्रथा के कारण आज महिलाओं के साथ अमानवीय व्यवहार हो रहा है तथा भारत में घटते लिंगानुपात के कारण यह प्रथा और व्यापक स्वरूप धारण कर सकती है। इस प्रथा के सकारात्मक पक्ष गिने चुने ही बचे है बाकी असंख्य नकारात्मक पक्ष हैं। ऐसी स्थिति में हमें इस प्रथा पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। यह पूर्णतया अब महिलाओं की खरीद फरोख्त के साथ जुड़ चुकी है। अब असामाजिक तत्वों द्वारा सामाजिक व्यवस्था की आड़ में अपना कारोबार स्थापित कर लिया गया है। आजादी के 74 वर्ष बाद भी इस तरह की प्रथाएं समाज में व्याप्त है तथा उस सम्बन्ध में किसी प्रकार के कानून का निर्माण अभी नहीं बन पाना निश्चित रूप से यह विचारणीय बिन्दु है। लोकतान्त्रिक देश में इस तरह की

प्रथाओं पर वैचारिक स्तर पर चर्चा न होना भी एक विचारणीय बिन्दु है। जो भी हो हमें इस पर तुरन्त सामाजिक मुद्दा बनाते हुए एक व्यापक पैमाने पर पैरवी करने की आवश्यकता है। इसके लिए वैचारिक मतभेद का त्याग कर स्वच्छ एवं समतामूलक व्यवस्था के लिए पहल करना नितान्त आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. 1979 SCR (2) 1171: 1979 AIR 713
2. 1997 Cr. L.R. (Raj) 753
3. Decided on Oct 14, 1998

डॉ. लालाराम जाट
सह आचार्य
उदयपुर स्कूल ऑफ सोशल वर्क
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय
उदयपुर

❑❑❑

बस्तर में 1824 ई. का परलकोट विद्रोह एवं गेंदसिंह

• डॉ. डिश्वरनाथ खुटे

बस्तर रियासत छत्तीसगढ़ प्रभाग (मध्यप्रांत) की एक प्रमुख रियासत थी। यह रियासत छत्तीसगढ़ की सभी 14 रियासतों में सबसे बड़ी थी जिसकी राजधानी जगदलपुर थी।[1] यह रियासत 17°46' से 20°14' उत्तरी अक्षांश और 80°45' से 82°1' पूर्वी देशांश के मध्य 13062 वर्गमील क्षेत्र में विद्यमान थी।[2] रियासत की उत्तर से दक्षिण की लंबाई 180 मील एवं पूर्व से पश्चिम तक 125 मील चौड़ाई थी।[3] छत्तीसगढ़ के सुदूर दक्षिण में स्थित बस्तर भारत की स्वतंत्रता के बाद 1 जनवरी 1948 को जिला तथा 20 मार्च 1981 में संभाग बना। यह संभाग भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से केरल राज्य से भी बड़ा है।

बस्तर, छत्तीसगढ़ राज्य का एक महत्वपूर्ण संभाग है। इसके इतिहास का अध्ययन इसलिए आवश्यक है क्योंकि वह सम्पूर्ण इतिहास को जोड़ने वाली कड़ी है। क्षेत्रीय इतिहास की जानकारी राष्ट्रीय चेतना की आधारशिला होती है। ज्ञान के अभाव में विद्वानों ने बस्तर को भारत का सोया हुआ दैत्य कहा है। अपनी सांस्कृतिक, पुरातात्विक तथा भौगोलिक विशिष्टताओं के कारण यह संभाग सभी के लिये आकर्षण का केन्द्र है। अपनी अपार वनसंपदा, खनिज संपदा, जलप्रपातों, गुफाओं और जनजातियों के कारण बस्तर संभाग न केवल देश में वरन् विदेशों में भी प्रसिद्ध है।

बस्तर की राजनैतिक धरा में नल, गंग, नाग व काकतीय राजवंश का वर्चस्व रहा जिसमें काकतीय राजवंश का शासनकाल 1324 ई. से 1947 ई. तक बना रहा। यद्यपि हैहय, मराठे और अंग्रेजी सत्ता समयानुसार इन पर नियंत्रण रखती रही। बस्तर रियासत में 13 प्रमुख जमींदारियां भी थी। 'बस्तर रियासत में जमींदारी प्रथा का आरंभ काकतीय वंश की स्थापना के साथ हुआ

था। प्रारंभ में इसे सामन्तवादी प्रथा कहा जाता था। राजा जमींदारों को अपने राज्य की कुछ भूमि दे देते थे, भूमि प्राप्त करने वाले जमींदार कहलाते थे। इसी परंपरा के अनुसार बस्तर रियासत का आधे से अधिक भाग जमींदार क्षेत्र के अंतर्गत आता था। ये जमींदार 'छोटे राजा' के नाम से विख्यात थे।'[4]

परलकोट जमींदारी

बस्तर रियासत की जमींदारियों में परलकोट जमींदारी की गणना सबसे पुरानी जमींदारी में की जाती है। यह जमींदारी बस्तर रियासत के उत्तर पश्चिम में 19°38' व 20°2' उत्तरी अक्षांश तथा 80°27' व 81°10' पूर्वी देशांश के मध्य स्थित थी। 1908 ई. में इसका कुल क्षेत्रफल 640 वर्गमील था तथा 1901 की जनगणना के अनुसार यहां की जनसंख्या 5,920 थी। यहां कुल 165 गांव थे जिनमें 98 गांव जनशून्य थे। इस जमींदारी का मुख्यालय परलकोट गांव था।[5]

लाल कालीन्द्र सिंह (1908) तथा डी.ब्रेट (1909) के अनुसार- परलकोट के जमींदार की उपाधि 'भूमिया' राजा की थी। ठाकुर केदारनाथ (1908) के अनुसार यहां के जमींदार अबूझमाड़ियाँ है जो स्वयं को सूर्यवंशी क्षत्रीय मानता है। जब से माड़िया लोग पैदा हुए तब से यह राज्य करता है। यह वीरान इलाका है तथा चांदा-भण्डारा जिला में मिला हुआ है।[6] काकतीय वंश के प्रथम शासक अन्नमदेव के समय यहां का जमींदार जम्बूनाथ भतरा कोरमी वंश का था। उसके बाद उसका पुत्र भल्लू नाथ कोरमी को जमींदार बनाया।[7] परलकोट तीन नदियों कोटरी, नीब्रा तथा गुडरा के संगम पर स्थित है।[8] यहां की कोटरी प्रमुख नदी है।

बस्तर शान्त सरल प्रकृति पुत्रों की अरण्य स्थली रही है। इस प्राकृतिक धरा के निवासियों की अस्मिता पर जब कभी भी प्रहार हुआ है, तो स्थिति विस्फोटक रही है। साथ ही एक विशेष तथ्य यह भी है कि आदिवासी जन की भावनायें अपने देवी-देवताओं और राजाओं के प्रति गहरी आस्थाबद्ध भी रही है जिसके प्रभाव स्वरूप विद्रोह को सदैव एक भावनात्मक आधार मिलता रहा है।

सन् 1757 ई. का वर्ष भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सन् 1757 में प्लासी के मैदान में जहां भारत के भाग्य का फैसला हुआ, उसी वर्ष छत्तीसगढ़ का राजनैतिक भाग्य का भी फैसला हुआ। कलचुरि साम्राज्य का सूर्यास्त हो गया था और यहां के क्षितिज पर मराठा प्रशासन का एक पुच्छल तारा उदित हुआ।[9]

छत्तीसगढ़ के मुख्यालय रतनपुर में 1745 ई. से मोहनसिंह शासन कर रहा था जिसका बीमारी के उपरांत 23 जनवरी 1757 ई. में निधन हो गया। इसके पश्चात् भोंसले शासक ने राजकुमार बिंबाजी भोंसले को यहां का शासक नियुक्त किया। बिंबाजी ने रतनपुर के प्राचीन महल में प्रवेश कर छत्तीसगढ़ के शासन की बागडोर संभाल ली।[10]

बिंबाजी भोंसले का बस्तर राजा से संबंध अनिश्चित प्रकार का था। पहाड़ी जंगली प्रदेश होने के कारण बस्तर से सतत् संपर्क नहीं हो पाता था। जब मराठा सैनिक बस्तर पहुंचते थे, तब राजा उन्हें बाध्य होकर राशि चुकाता था। रतनपुर से बस्तर की दूरी अधिक थी। प्रतिवर्ष लगान वसूल करना ही रतनपुर के शासक का उद्देश्य होता था, बाकी सभी मामलों में बस्तर राजा स्वतंत्र था।[11]

छत्तीसगढ़ में ईस्ट इंडिया कम्पनी सरकार की स्थापना की चाहत अंग्रेजों के मन में 1765 ई. में पैदा हुई थी, जब उनको उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हो गयी थी। कम्पनी सरकार के *हरकारे* 1774 ई. से ही इस जुगत में थे कि एक-एक करके छत्तीसगढ़ के राज्यों को हड़प लिया जाय।[12] 7 दिसंबर 1787 को बिंबाजी भोंसले की मृत्यु हो जाने के उपरांत व्यंकोजी भोंसले को छत्तीसगढ़ की प्रशासनिक जिम्मेदारी मिली। उन्होंने एक नवीन नीति अपनायी, नागपुर से ही छत्तीसगढ़ के शासन को सूबेदार के माध्यम से चलाने का निश्चय किया। यह पद्धति 'सूबा शासन' के नाम से इतिहास में चर्चित है। यह शासन प्रणाली 1787 से 1818 ई. तक विद्यमान रही। यह प्रणाली मराठों की उपनिवेशवादी नीति का परिचायक थी।[13]

सूबा शासन व्यवस्था दुर्बल, अव्यवस्थित और अनैतिकतापूर्ण थी। रघुजी भोंसले स्वयं मंत्रियों से धनराशि संग्रह करने तथा जनता से अधिकाधिक राशि वसूल करने के आदी थे। उनके अधिकारी भी लालची और जनता का शोषण करने वाले थे। इसके परिणामस्वरूप राज्य की आर्थिक स्थिति हमेशा शोचनीय रहती थी और शासकीय सेना के वेतन का भुगतान भी नियमित नहीं हो पा रहा था। अधिकारीगण रिश्वत के बल पर बड़ी आसानी से अंग्रेजों के पक्ष में कर लिये जाते थे तथा उन्हें राज्य की गुप्त सूचनाएँ भी दिया करते थे।[14]

भोंसले शासक रघुजी द्वितीय यद्यपि अपने राज्य में ब्रिटिश हस्तक्षेप और उनकी विस्तारवादी नीति के विरोधी थे। 22 मार्च 1816 ई. को रघुजी द्वितीय का निधन हो गया इसके बाद सत्ता संघर्ष का दौर शुरू हुआ। जेनकिन्स के षड्यंत्र तथा अप्पा साहब के विश्वासघात ने नागपुर राज्य में अंग्रेजी प्रभाव के

विस्तार को संभव बनाया।[15] 27 मई 1816 ई. को अंग्रेजों ने अप्पा साहब के साथ सहायक संधि की जो निश्चित रूप से अंग्रेजों के हित में थी।[16] लार्ड वेलेजली की साम्राज्य विस्तारवादी सहायक संधि भारत वर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार तथा भारतीय नरेशों के दरबार और राजनीति में अंग्रेजी प्रभाव को बढ़ाने के लिये एक महत्वपूर्ण राजनीतिक चाल थी। अप्पा साहब ने अपने स्वार्थ को पूरा करने के ध्येय से अंग्रेजों की शर्तों को स्वीकार कर लिया। नागपुर राज्य में ब्रिटिश सेना का रखा जाना अंग्रेजों के लिये लाभकारी सिद्ध हुआ। 21 अप्रेल 1817 को अप्पा साहब का राज्यारोहण हुआ। राज्यारोहण के बाद उसने अंग्रेजी नियंत्रण से मुक्त होने का प्रयास किया, परन्तु 27 नवंबर 1827 को तृतीय आंग्ल-मराठा के सीताबर्ड़ी के युद्ध में उसे पराजित होना पड़ा। इस समय अंग्रेज अधिकारी लार्ड हेस्टिंग्ज थे। 1818 में नागपुर की संधि हुई जिसमें छत्तीसगढ़ में अंग्रेजों का अप्रत्यक्ष शासन स्थापित हुआ। 21 जून 1818 को अंग्रेजों ने 10 वर्षीय रघुजी तृतीय को नागपुर की राजगद्दी पर बैठाया तथा रेजीडेन्ट जेनकिन्स को उनका संरक्षक बनाया। इस तरह नागपुर व उसके अधीनस्थ क्षेत्र का शासन ब्रिटिश संरक्षण में चला गया। मि. एडमंड को छत्तीसगढ़ का प्रशासक नियुक्त किया गया, जिसे अधीक्षक कहा गया। सन् 1818 ई. से 1830 ई. तक छत्तीसगढ़ ब्रिटिश संरक्षण में शासित रहा।[17]

छत्तीसगढ़ में सूबा शासन एक बोझिल प्रणाली थी। सूबेदारों ने यहां के विकास की ओर ध्यान न देकर निजी स्वार्थों की पूर्ति में लगे रहकर केवल धन संचय हेतु प्रयत्नशील रहे। छत्तीसगढ़ में आतंक, अराजकता, अव्यवस्था और अनिश्चितता की स्थिति बनी रही।[18] शोषण और अव्यवस्था अपने चरमोत्कर्ष पर थी। कृषि की दशा दयनीय हो गई थी। सूबा सरकार के समय राज्य की आमदनी 6 लाख से गिरकर 3 लाख रुपये हो गई थी।[19] अंग्रेजों ने पहली बार जमींदारों व केन्द्रीय शक्ति के बीच के संबंधों को लिखित, स्पष्ट और नियमित बनाया।[20] जमींदारों के अधिकार व कर्तव्य सुनिश्चित किये गये। एक इकरारनामा पर उनसे हस्ताक्षर लिये गये। बस्तर के राजा महिपाल देव 1819 ई. में छत्तीसगढ़ के अधीक्षक मि. एगेन्यू से जो इकरारनामा किया उसकी शर्ते निम्नानुसार थी—

1. बस्तर राजा ने नागपुर राजा का आश्रित होना स्वीकार किया। उसकी भावी पीढ़ी भी आश्रित होगी।
2. नागपुर राजा ने बस्तर राजा (जमींदार) को सुरक्षा प्रदान की।
3. बस्तर राजा व उसके उत्तराधिकारी नागपुर राज्य के सहयोगी के रूप में कार्य करेंगे।

4. नागपुर राजा के अलावा अन्य राज्यों से स्वतंत्रतापूर्वक व्यवहार नहीं करेंगे। अपने विवादों का निपटारा नागपुर राजा के माध्यम से करेंगे।
5. बस्तर से व्यापारियों को बिना कर चुकाए व्यापार करने व सुरक्षा देने का वचन दिया गया।
6. नागपुर राजा के किसी शत्रु को बस्तर राजा शरण नहीं देंगे।
7. बस्तर राजा निर्धारित टकोली को तीन किश्तों में जमा करेगा।
8. बस्तर राजा पर पिछले वर्षों में न चुकाई गई टकोली की राशि माफ की गई।

इस इकरारनामे पर दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों के द्वारा हस्ताक्षर होने के बाद इसे सील कर दिया गया।[21]

यह उल्लेखनीय है कि बस्तर के काकतीय शासक दरियावदेव के समय से 1778 ई. में वह मराठों का आश्रित राज्य बना, तभी से वह केन्द्रीय सरकार का आश्रित राज्य बना, और केन्द्रीय सरकार को 5000/- रुपये टकोली प्रतिवर्ष देता रहा।[22]

ब्रिटिश संरक्षण काल भी छत्तीसगढ़ के लिये भारी परेशानी का था। मराठा अधिकारियों की लूट-खसोट के साथ-साथ अब अंग्रेजी अधिकारी भी हिस्सा मांगने आ गए। शोषण और दमन का अभूतपूर्व दौर चला। मराठा शासकों व अंग्रेजों की शासन नीति की चक्की के दो पाट के मध्य छत्तीसगढ़ की प्रजा पीस रही थी, उनकी नौकरशाही व्यवहार ने यहां के जन जीवन को त्रस्त कर दिया। सुख शांति और वैभव प्राय: लुप्त हो रहा था। नागपुर दरबार को सिर्फ रूपया चाहिए था और वे छत्तीसगढ़ को पके फल के वृक्ष की तरह समझते थे, जब मन में आया हिला लिया और जितना चाहे उठा लिया। जनता को उपज का एक बहुत बड़ा भाग बेचकर कर देना पड़ता था। अनाज सस्ता हो गया। धान के कटोरे का चांवल नागपुर जाने लगा और वहां से फिर आगे बहुत दूर छत्तीसगढ़ की जनता का शोषण शुरू हुआ। जब आवश्यकता हुई अंग्रेज अधिकारी दौरे पर निकले, जमींदारों को बुलाया और वसूली की। जमींदार खिझकर अपने इलाके की जनता से वसूली करता था। इस प्रकार एक आर्थिक शोषण का युग आरंभ हुआ। छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी शासन के प्रारंभिक दौर से ही विरोध व प्रतिकार प्रारंभ हुआ।

यह उल्लेखनीय है कि भारत में अंग्रेजी राज का सर्वाधिक विरोध आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासियों के द्वारा ही किया गया है। जन्म व परंपरा से

स्वच्छन्द तथा स्वतंत्र रहने वाले आदिवासी किसी भी प्रकार के बंधन के विरोधी रहे।

अंग्रेजी सरकार ने जानबूझकर वनों के क्षेत्र में उनकी स्वतंत्रता व अधिकारों को कम करने का प्रयास किया। आदिवासियों ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए परंपरागत अस्त्र-शस्त्र उठाए। स्वतंत्रता का बीज, रक्त का सिंचन चाहता है जिसके लिये आदिवासी तत्पर रहता है। भूखे पेट और नंगी पीठ के साथ भी वह स्वतंत्रता आकांक्षी है।[23]

बस्तर में मराठों और अंग्रेज अधिकारियों की उपस्थिति अबूझमाड़ियों को अच्छी नहीं लग रही थी। परदेशी सभ्यता के प्रवेश से वे बड़े चिंतित थे, तथा उनसे खतरा महसूस करने लगे थे। दोनों की शोषण नीति से भी अबूझमाड़िये तंग हो गए थे। वे परलकोट के जमींदार गेंदसिंह के माध्यम से लूट-खसोट व शोषण मुक्त समाज की रचना करना चाहते थे। जमींदार अपनी प्रजा का साथ देने के लिए तैयार हो गए। वह स्वयं भी शोषण व उत्पीड़न का विरोधी था। मांझियों की पंचायत के माध्यम से वह शासन का विकेन्द्रकरण चाहता था। गेंद सिंह में संगठन की विलक्षण क्षमता थी। मांझी मुखियों का उस पर विश्वास था और उसकी आदिवासी प्रजा जिसे वह सन्तान वत स्नेह देता था उसके लिये सब कुछ अर्पित करने को तैयार थी।[24]

अंग्रेज व मराठों के विरुद्ध गेंदसिंह के नेतृत्व में 24 दिसंबर 1824 को परलकोट में आदिवासी एकत्र हुए तथा विद्रोह का शंखनाद कर दिया एवं वे चांदा तक फैल गये।[25] आदिवासियों के मध्य संचार माध्यम हेतु धवरा वृक्ष को चुनकर एक स्थान से दूसरी स्थान तक पूरी जमींदारी में इसे घुमाया गया। यह संदेश भी दिया जाता था कि रहनी के पत्तों के सूखने के पहले ही विद्रोही दल को केन्द्रीय नेतृत्व के पास पहुंच जाना है।[26]

विद्रोहियों ने मराठा और अंग्रेजी फौज को रसद की पूर्ति करने वाले बंजारों को पहले लूटा। इसके बाद अंग्रेज व मराठा अधिकारियों पर घात लगाकर आक्रमण किया गया। उनके आक्रमणों से लोगों में भय की भावना उत्पन्न हो गयी। गैर आदिवासी भी इनके निशाने पर थे। चांदा से संलग्न क्षेत्र में इनका बहुत अधिक आंतक था। यहां के गैर आदिवासियों ने अपने-अपने घरों के पास सुरंगे खोद ली थी, जिससे वे इनके आक्रमणों के समय अपने को छिपा सके।[27] विद्रोही धनुष-बाण, कुल्हाड़ी तथा भाला लेकर, हजारों की संख्या में निकलते थे तथा लोगों के घरों को जलाकर रक्तरंजित हाथों से वापस लौटते थे। छत्तीसगढ़ के तत्कालीन ब्रिटिश अधीक्षक एगेन्यू ने इस विद्रोह को कुचलने का

उपाय किया। उसके आदेश से चांदा की सेना को विद्रोह को दबाने के लिए वहां भेजा गया। ब्रिटिश सेना के आगमन के बाद विद्रोहियों ने छापामार युद्ध प्रारंभ कर दिया। वे अनेक महिलाओं के साथ 500 से 1000 की संख्या में इकट्ठे होते और दूर से ही मराठा-अंग्रेजी सेना की ओर अपने कुल्हाड़ियां चमकाते और इनके समीप आने पर वे जंगलों में छिपकर वार करते थे। वे पहाड़ियों व पेड़ों पर चढ़कर नगाड़ा बजाकर अबूझमाड़ियों को एकत्रित कर मराठों व अंग्रेजी सेना को घेर कर उन पर बाणों की बौछार करते थे। सम्पूर्ण माड़ अंचल में इस विद्रोह की चिंगारी फैलने लगी थी।[28]

विद्रोह का संचालन अलग-अलग टुकड़ियों में मांझी लोग करते थे। अनेक विद्रोही टुकड़ियों का नेतृत्व आदिवासी महिलाओं के द्वारा भी किया जाता था। रात्रि में सभी विद्रोही किसी घोटुल में एकत्र होते थे और वहीं से अगले दिन की योजना निश्चित होती थी। जब वे किसी मराठा या अंग्रेज तथा गांव के ठेकेदार को पकड़ते थे तो वे उसे मार डालते थे। ये उन लोगों को नहीं सताते थे, जो इन्हें बराबरी का दर्जा देते थे।[29]

ये सभी विद्रोही मराठा सरकार द्वारा लगाए गए नए करों का विरोध कर रहे थे। इनका विरोध इस बात पर भी था कि बस्तर के राजा को जमींदार की स्थिति में लाकर बिठा दिया गया था तथा बस्तर के पुराने जमींदारों की अस्मिता पर प्रहार किया गया था। संक्षेप में यह विद्रोह विदेशी सत्ता को नुकसान पहुंचाने की गरज से आरंभ हुआ था।[30]

ऐसी स्थिति में छत्तीसगढ़ के अंग्रेज अधीक्षक, एगेन्यू व बस्तर का प्रभारी अधीक्षक फ्रीट जराय परेशान हो गया था। एगेन्यू ने 4 जनवरी 1825 को चांदा के पुलिस अधीक्षक केप्टन पेव को निर्देश दिया कि विद्रोह को तत्काल दबाएँ। ऐसी स्थिति में मराठों और अंग्रेजों की सम्मिलित सेना द्वारा 10 जनवरी 1825 को परलकोट को घेर कर जमींदार गेंदसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। उसे जेल में रखा गया तथा उन पर राजद्रोह का अभियोग चलाया गया। न्यायिक कार्यवाही का नाटक अंग्रेजों द्वारा किया गया और गेंदसिंह को मृत्युदंड देने का आदेश हुआ। गेंदसिंह को 20 जनवरी 1825 को दोपहर 12.30 बजे परलकोट में उनके महल के सामने ही फांसी पर लटका दिया गया।[31] इसके साथ ही परलकोट विद्रोह का पूरी तरह से दमन हो गया। कुछ समय बाद एगेन्यू ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

संगठन क्षमता के धनी गेंदसिंह बहादुर व्यक्ति थे। उन्हें असफलता इसलिए

मिली क्योंकि बंदूकों के सामने उनके पारंपरिक हथियार प्रभावहीन सिद्ध हुए। फिर भी उसका बलिदान बस्तर भूमि के लिये बड़ा महत्व रखता है।[32] डॉ.राम कुमार बेहार के अनुसार 'अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम का प्रथम शंखनाद करने वाले गेंदसिंह का आत्मोत्सर्ग अनूठा अविस्मरणीय है।'[33]

निष्कर्ष

बस्तर के प्रकृति पुत्रों ने भारत के राष्ट्रीय जागरण में अपनी भूमिका का उतनी ही जिम्मेदार से निर्वहन किया है जितना बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब आदि के माटी पुत्रों ने किया था। इसकी उपलब्धियां आंदोलनकालीन संघर्ष और उसके बाद नव निर्माण के इतिहास का सृजन करती है। इसके विचारों और कार्यो में समकालीन राष्ट्रीय विचारों तथा कार्यवृत्तों का जीवंत आलेख ढूंढा जाता है। यह नेतृत्व वर्ग ही युग-दृष्टा इतिहास पुरुष एवं जन नायक कहलाता है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के छत्तीसगढ़ अंचल में प्रथम शहीद गेंदसिंह थे, जिन्होंने आदिवासी, कृषक, मजदूर एवं शोषित-पीड़ित जनता का नेतृत्व किया, अन्याय, अत्याचार व शोषण के विरुद्ध ब्रिटिश एवं मराठा शासन का खुलकर विरोध किया। उस युग में जबकि अधिकांश राजा, जमींदार, अपने खोये हुए अधिकारों की प्राप्ति के लिये संघर्षरत् थे। छत्तीसगढ़ के अरण्यांचल परलकोट में गेंदसिंह ने जनहित में उनके अधिकार की लड़ाई हेतु अपनी जमींदारी दांव पर लगा दी, अपना सुख न्यौछावर कर दिया और जंगल-जंगल भटकते रहे लोगों को संगठित कर उन्होंने एक मोर्चा बनाया तथा आदिवासी सैनिकों जिनमें महिलाएं भी थीं, के साथ अंग्रेजों की ताकत को ललकारा।

इस अंचल ने जनजागृति की जो चेतना जागृत की वह आजादी के दीवानों के लिए प्रेरण स्त्रोत बनी रहीं। गेंदसिंह की शहादत व्यर्थ नहीं गई, उन्होंने गिरीजनों को अपनो अधिकार के लिये लड़ना सिखाया, जमाखोर व्यापारियों व ठेकेदारों को अपने कर्त्तव्य का बोध कराया। जनता की मनोबल, आत्मबल के आधार पर बड़ी से बड़ी ताकत के खिलाफ अन्याय के प्रतिकार स्वरूप संघर्षरत रहने की प्रेरणा दी। गेंदसिंह का कार्य एक शासक के कर्तव्य के अनुकूल 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का था। उनमें एक ईमानदार, कर्त्तव्यनिष्ठ और प्रजावत्सल जमींदार की आत्मा का वास था।

छत्तीसगढ़ के बस्तर अंचल में चेतना के विकास का कार्य गेंदसिंह ने किया वह अविस्मरणीय है। इतिहास के पृष्ठों पर छत्तीसगढ़ में शहीद गेंदसिंह

का योगदान पूर्व में विस्मृत सा रहा है। अन्वेषणान्तर्गत इस प्रस्तुति के माध्यम से अंचल का योगदान उजागर हुआ है। उत्तर भारत एवं मध्य भारत पर व्यापक अन्वेषण हुए है किन्तु छत्तीसगढ़ के दक्षिण भाग पर इस प्रयास का अभाव रहा है।

संदर्भ

1. राम कुमार बेहार, *छत्तीसगढ़ का इतिहास*, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, 2010, पृ. 172.
2. डी. ब्रेट, ई.ए., द *सेंट्रल प्राव्हिसेंस गजेटियर द छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स,* 1909, पृ. 25.
3. लाला जगदलपुरी, *बस्तर इतिहास एवं संस्कृति*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2007, पृ. 01.
4. जे.आर. वर्ल्यानी एवं व्ही.डी.साहसी, *बस्तर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* दिव्या प्रकाशन कांकेर 1998, पृ. 146.
5. डी.ब्रेट, ई.ए., पूर्वोक्त, पृ. 346.
6. केदारनाथ ठाकुर, *बस्तर भूषण*, नवकार प्रकाशन कांकेर, पुनर्मुद्रित, 2005, पृ. 117.
7. जे.आर. वर्ल्यानी एवं व्ही.डी., साहसी पूर्वोक्त, पृ. 154.
8. वही
9. रमेन्द्र नाथ मिश्र, *वीरनारायण सिंह*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 1998, पृ. 25.
10. राजेन्द्र वर्मा संपादक, *रायपुर गजेटियर*, 1973, पृ. 57.
11. रामकुमार, बेहार, पूर्वोक्त, पृ. 124.
12. हीरालाल शुक्ल, *छत्तीसगढ़ का जनजातीय इतिहास,* मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2007, पृ. 137.
13. भगवान सिंह वर्मा, *छत्तीसगढ़ का इतिहास*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2003, पृ. 54-55.
14. वही, पृ. 83.
15. वही, पृ. 84.
16. एचीसन, *ट्रीटीज सनद्स एण्ड इनगेजमेंट्स,* पार्ट 4, पृ. 419.

17. भगवान सिंह वर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 93.
18. जे.एफ.के. डेविट, *रिपोर्ट ऑन द लैंड रेवेन्यू सेटलमेंट आफ द रायपुर डिस्ट्रिक्ट,* 1868, पृ. 20.
19. *रिपोर्ट अर्ली यूरोपियन ट्रेवलर्स इन नागपुर टेरटरीज डिपेन्टेड फ्राम्स ओल्ड रिकॉर्ड्स,* नागपुर, 1930, पृ. 20.
20. जे.डब्ल्यू चिशोम, द रिपोर्ट आन द सेटलमेंट आफ द बिलासपुर डिस्ट्रीक्ट इन द सी.पी., 1868, पृ. 99.
21. फारेन् पॉलिटिकल कारेसपाण्डेंस फाईल नं. 33 ,1830.
22. एचीसन, पूर्वोक्त, पृ. 438.
23. रामकुमार, बेहार, पूर्वोक्त, पृ. 253-54.
24. पूर्वोक्त, पृ. 255.
25. हीरालाल शुक्ल *बस्तर का मुक्ति संग्राम,* पूर्वोक्त, पृ. 105.
26. रामकुमार, बेहार, पूर्वोक्त, पृ. 255.
27. हीरालाल, शुक्ल, *आधुनिक बस्तर, परतंत्रता और प्रतिकार,* बी.आर. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 36.
28. वही, पृ. 37.
29. हीरालाल, शुक्ल, *बस्तर का मुक्ति संग्राम,* पूर्वोक्त, पृ. 106.
30. भगवान सिंह वर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 240.
31. रामकुमार बेहार, पूर्वोक्त, पृ. 256.
32. भगवान सिंह वर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 256
33. रामकुमार बेहार, पूर्वोक्त, पृ. 256.

डॉ. डिश्वर नाथ खुटे
सहायक प्राध्यापक
इतिहास अध्ययनशाला
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर (छ.ग.)

❑❑❑

झालावाड़ नरेश राजेन्द्र सिंह सुधाकर और सामाजिक जागरण

• डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल

राजेन्द्र सिंह सुधाकर का जन्म झालावाड़ नरेश भवानीसिंह के घर में 15 जुलाई 1900 को हुआ था। उनकी शिक्षा सन् 1907 से 1919 तक मेयो कॉलेज में हुई और सितम्बर 1920 में उनका विवाह कोटड़ा सांगनी (काठियावाड़) के ठाकुर की बेटी हीरा कुंवर से हुआ और इसके बाद उन्होंने आगे की शिक्षा ऑक्सफोर्ड, लंदन से प्राप्त की।[1] श्री राजेन्द्रसिंह ने सन् 1929 में अपने पिता की मृत्यु के बाद से लेकर सन् 1943 तक झालावाड़ नरेश के रूप में शासन किया। यह वही मेयो कॉलेज था जिसकी स्थापना राजपूत राज्यों के भावी शासकों में ब्रिटिश ताज के प्रति स्वामिभक्ति को मजबूत करने के लिए की गई थी तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कॉलेज में पढ़ने वाले छात्रों को विद्याबुद्धि, तर्कशैली, रहन-सहन तथा आचार-विचार में सर्वथा अंग्रेज बनाने का प्रयत्न किया जाता था। उन्हें ऐसे वातावरण में पोषित किया जाता जो उनके देश की संस्कृति से सर्वथा भिन्न था।[2] ऑक्सफार्ड तो पाश्चात्य बौद्धिकता और संस्कृति का केन्द्र था ही। उस दौर के राजस्थान के राजघरानों के हालात ऐसे थे कि ब्रिटिश संरक्षण मिलने के बाद वे शासन के प्रति उदासीन होकर आमोद प्रमोद एवं भोगविलास का जीवन जी रहे थे जिसका वर्णन श्यामलदास ने *वीर विनोद* में विस्तार से किया है।[3] सुधाकर को न अंग्रेजी शिक्षा एवं पाश्चात्य परिवेश अंग्रेज बना पाया और न ही वे ब्रिटिश संरक्षण में रह कर निज शासन के प्रति उदासीन हुए। उन्होंने अपने विद्वान, प्रजावत्सल एवं उदार पिता भवानीसिंह के पदचिह्नों पर चलकर इस छोटे से राज्य को नई ऊँचाईयां दी।

सामाजिक जागरण में सुधाकर अपने पिता ही नहीं बल्कि देश के तत्कालीन कई बड़े राज्यों के शासकों से आगे थे। जिस दौर में राजपुताना के

शासक अपनी निरीह प्रजा पर गोलियां बरसा रहे हों, लाग-बाग के रूप में नए-नए कर लगा रहे हों, प्रजा से कई तरह की बेगार करा रहे हों उसी दौर में झालावाड़ राज्य का एक उदारमना, कविहृदय, प्रगतिशील शासक अपनी प्रजा के सर्वांगीण उत्थान में लगा हो तो वह शोध का विषय होना स्वाभाविक है। एक कवि के रूप में सुधाकर की रचनाओं, एक शासक के रूप में उनके द्वारा किये गए निर्णयों और कार्यों के माध्यम से सामाजिक जागरण में उनकी भूमिका का मूल्यांकन किया जा सकता है। उनकी राष्ट्रभक्ति एवं स्वराज्य की लालसा एकांगी नहीं थी। वे भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उद्गाता थे लेकिन समय के साथ उसमें आई विकृतियां उन्हें स्वीकार नहीं थीं। वे अंग्रेजी भाषा एवं संस्कृति के गढ़ में पले बढ़े थे लेकिन हिन्दी भाषा में कविता करते थे और राष्ट्र की अस्मिता के अंग के रूप में राष्ट्र भाषा की पैरवी करते थे। शासक होने के नाते परम्परा, परिवेश एवं राज्याधिकार के रूप में वे अपनी प्रजा पर मनमाने कर लगा सकते थे लेकिन सुधाकर अपने ग्रामीण दौरों में खुले रूप में बेगार एवं अन्य प्रजा विरोधी प्रथाओं को न मानने का आह्वान करते थे। राजस्थान की समाज व्यवस्था दोहरे गतिरोधों से अवरूद्ध थी—एक ओर कठोर जन्मजात जातिगत बंधनों से ओर दूसरी और सामंतवादी विशेषाधिकारों से। उन्नीसवीं सदी में दयानन्द सरस्वती ने राजाओं तथा यहां की जनता के नाम संदेश में समाज सुधार का आह्वान किया था जिसने राजपुताना में सामाजिक परिवर्तन की पहली लहर पैदा की थी लेकिन जाति एवं छुआछूत की दीवारे फिर भी कायम रहीं। सुधाकर राजसी वर्ग एवं प्राचीन सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप उच्च क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्धित होने के बावजूद उन्होंने छुआछूत को मिटाने के जो प्रयास किये वे राजपुताना ही नहीं, राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता की प्रतीक्षा में हैं। अतः यहां हम सुधाकर के सामाजिक जागरण सम्बन्धी विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन करेंगे।

भारतीय समाज में आई बुराइयों को दूर कर युगानुरूप समानता पर आधारित नए समाज की स्थापना के लिए अधिकांश तत्कालीन समाज सुधारक वर्णाश्रम एवं जाति व्यवस्था को समाप्त करने के पक्ष में थे लेकिन दयानन्द सरस्वती ने जाति व्यवस्था का विरोध करते हुए वर्णाश्रम व्यवस्था की पुनर्स्थापना की पैरवी की थी। बीसवीं सदी के महानायक महात्मा गांधी ने भी जाति व्यवस्था को खारिज करते हुए कर्म पर आधारित वर्णाश्रम व्यवस्था को वैज्ञानिक माना था।[4] इन दोनों विचारकों के समानसुधाकर का भी प्राचीन वर्ण व्यवस्था में विश्वास था। वे समय के साथ चारों वर्णों में आई बुराइयों तथा कर्त्तव्यविमुखता

के आलोचक थे और वे पुनः प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था के कर्माधारित आदर्श स्वरूप की स्थापना के पक्षधर थे। यथा[5]—

मंत्रों का मनन नित्य सत्य का ग्रहण सदा, असत्य का परित्याग चर्चा तत्वज्ञान की।
जीव ईश प्रकृति के भेदों का सुनिरूपण, कर्मों की स्वतंत्रता पै सत्ता भगवान की।
सुधाकर सामाजिक नियमों के पालने में, दृढ़ता अनूठी लोक चरित महान की।
सर्वोत्तम सुन्दर व्यवस्था वर्णाश्रम की, बलिहारी बार-बार वैदिक विधान की।

उन्होंने राजाओं से आग्रह किया कि वे अपने पूर्वजों के आदर्श मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने युवराज कुमारों कों राज्य सौंप कर बुढ़ापे में वानप्रस्थ आश्रम का आनन्द लेवें—

कभी मत भुलों कोई सनातन प्रणाली को, सनातन प्रणाली के सत्य तत्व सारे हैं।
बढ़े-बढ़े महीपों ने राज्य दे युवासुत को, वानप्रस्थ आश्रम के धर्म संवारे हैं।
सुधाकर हिन्द के महीपों कौन हेतु आज, अपने बड़े बूढ़ों के मारग बिसारे हैं।
युवक कुमारों को राज दे बुढ़ापे में, आनन्द मनाओं ईश रक्षक तुम्हारे हैं।

उनको ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुषसूक्त में विश्वास था जिसमें वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति परम पुरुष से मानी गई है। उन्होंने कहा था कि अपने शरीर में आप देखिए तो सर ब्राह्मण है, दोनों भुजाएं क्षत्रिय हैं, धड़ और उदर वैश्य हैं तथा चरण शूद्र हैं और ये चारों जीवन यात्रा में आपस में एक दूसरे के सहायक हैं।[6] वर्ण व्यवस्था की परिधि में ही उन्होंने विभिन्न वर्णों को अपने दायित्वों को निभाने की बार-बार याद दिलाई। भुजाओं के प्रतीक क्षत्रियों को उन्होंने अन्याय पर आक्रमण करने, दीन-दुखियों को बचाने तथा अछूतों को उठाने के लिए कहा। उन्होंने उन्हें अपने सभी दुर्व्यसन, प्रमाद एवं आलस्य त्याग कर समाज की सेवा (रक्षा) के कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होने के लिए इस प्रकार प्रेरित किया[7]—

आँख उठा देखो रण-रंग चारों ओर छाया, लगी हुई जातियाँ हैं सभी खींचतानी में।
उपयोग उत्तम अवसर का करे कौन, तुममें उमंग नहीं चढ़ती जवानी में।
चढ़ते तुमसे हैं न कमान पर आज बान, बाहू में न दीखे बल ओज है न बानी में।
शान है न मान है न आनबान है न नेक, डूब मरों सारे तुम चुल्लू भर पानी में।

तत्कालीन देशी राज्यों में दशहरें पर यह परम्परा थी कि मिट्टी तथा कागज से बनाये गये रावण के पुतले पर तीर चलाकर उसे भस्म करने के लिए शौर्य एवं वीरता के प्रतीक देशी नरेश गाजों-बाजों, ध्वजपताका के साथ सवारी सजाकर जाते थे। इस नकली वीरता पर व्यंग करते हुए कवि ने कहा—

मिट्टी और कागज का करकै ततूँबा खड़ा, वार कर तापै आज फूले न समाते हो।
बड़ा तीर मारा यदि रावन को ऐसे मारा, झूठा अभिमान धार धूम सी मचाते हो।
सवारी सजाते गाजे-बाजे चतुरंग संग, ध्वजा औ पताका उड़ा आनन्द मनाते हो।
सुधाकर क्षत्रवीरों देश की थे नाक तुम, आज निज हाथों नाक यों कटाते हो।

सुधाकर ने क्षत्रिय होने के नाते अपने वर्ण में आई खामियों को बहुत करीब से देखा था। शायद इसीलिए क्षत्रियों के प्राचीन गौरव, वर्तमान पतन एवं नवीन उत्थान पर उन्होंने अनेक छन्दों की रचना की लेकिन सामाजिक नवनिर्माण के लिए ब्राह्मणों एवं वैश्यों की खामियां भी उनकी कलम से न बच पाई, अछूतोद्धार तो उनका जग जाहिर है ही। झालावाड़ राज्य के दरबार में ब्राह्मण राजगुरु एवं राजपुरोहितों जैसे प्रतिष्ठित पदों पर यथोचित सम्मान पाते थे। राजगुरु गिरधर शर्मा नवरत्न को दी गई जागीर उनकी विद्वता एवं पाण्डित्य का पुरस्कार थी लेकिन नरेश सुधाकर ब्राह्मणों का सम्मान गुण कर्म के आधार पर करते थे, जन्म के आधार पर नहीं। धर्म के आधार पर छल प्रपंच, पाखण्ड, आडम्बर एवं कर्मकाण्ड कर धन कमाने वाले ब्राह्मणों पर उन्होंने खुला प्रहार किया है[8]—

रहकै रहकै उपवासीव्रती शुचि धर्मकथा कहकै कहकै।
दहकै दहकै डर दोष सबै, दुख दुद लखौं सहकै सहकै।
चहकै चहकै श्रुतिमंत्र सबै, प्रभू नाम सदा गहकै गहकै।
द्विजराज सुधाकर आप हुये, किस ओर चले बहकै बहकै।

धज कैसी बनाई है आपने ये, उर भाव भरे हैं ये क्यों हलके।
हिय छाप लगा उर टीका दिये, कर काम रहे हो महा खल के।
सब माया तजो हिय में धरलो, जग में तुम हो अतिथि पल के।
यह सीख सुधाकर की सुन लो, करलो प्रभुभक्ति बिना छल के।

❑ ❑ ❑

छापा औ तिलक लगा पूजा पाठ ढोंग रचैं, छुप छुप करैं काज भारी नीचताई को।
वेद शास्त्र रीति नीति काव्यकला जानैं नहिं, जहाँ तहाँ जाकै बोल बोलैं पंडिताई को।
अधर्म राचै रहें लोगों में डलावैं फूट, फैला द्वेष प्रण लेवैं भोली जनताई को।
सुधाकर सौ सौ बार धिरकार ताको दे, जो व्हैकै द्विजराज काज करत कसाई को।

निम्न कविता में तो उन्होंने साधुवेष में कुकर्म करने वालों से बेहतर

असामाजिक तत्व अर्थात् गुन्डों को बेहतर बताकर क्रान्तिकारी सामाजिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है[9]—

सुख छाँह में जाके न जीव गहैं, उन वृक्षनतैं तरू डुंडे भले।
जिनके वचनोंतै न शान्ति मिलै, उनसे तो मनुष्य अतुंडे भले।
धरि साधु को भेस कुकर्म करैं, उनसे तो सुधाकर गुंडे भले।
जिनको निज मूँछ की जान नहीं, उनतैं तो सदा मुछमुंडे भले।

पूजा-पाठ के नाम पर लोगों से भारी दानराशि वसूलने वाले तथा अपने स्वार्थ एवं सुविधा के अनुरूप कर्मकाण्ड रचने वाले ब्राह्मणों का सरस चित्रण करते हुए कवि ने कहा कि यदि ठंड में स्नान की बात आये तो पंडित कंकर को शंकर बनाकर उसे गंगा में डूबा लायेगा और शंकर के स्नान में ही अपना और सबका स्नान बताकर बिना नहाये ही पूजापाठ करा देगा[10]—

ब्राह्मण की मैं एक अनोखी सुनाऊँ कथा, इसका हमारा एक वो ही भागवान है।
ठगता है पूजापाठ कर नर नारियों को, ढोंग रच, धोखा दे, कराता खूब दान है।
पूजा हेत एक बार प्रात लगा सोचने यों'कौन भाँति न्हाऊँ शीत पड़ता महान है।'
सुरसरि तीर दंत देह सब कंपते थे, एकाएक आया उसे ऐसा तब ध्यान है।
पंडित ने कंकर को डारि जल मांहि कहा, 'कंकर नहान सोई शंकर नहान है।'
पूजा कर लौटे मग दूसरो मिल्या है विप्र बोला—'मित्र! सीत से तो संकट महान है।
यार बतलाओ करैं पूजा किहीं भाँति आज, सुन, झुँझलाय कहा—बड़ा तू अजान है।
गंग डारि कंकर निल्हाये शंकर न्हाये हम, हमरो नहान यही तुमरो नहान है।'

इसी प्रकार कवि ने वैश्य वर्ण को धन लूटने में वैश्या के समान बताया है जो धन के लिये चापलूस स्वार्थी और अपने ही मित्र का खून चूसने वाला है। रात-दिन, धूप-छाँह, सर्दी-गर्मी में प्राणों की बाजी लगाकर कमाई करने वाले किसानों का खून महाजन और जमींदार मिलकर चूसते हैं अतः कवि सुधाकर अपना संकल्प बताते है कि अब उनके कृषक हितैषी शासन में किसानों के सब दुख दूर हो जायेंगे[11]—

वैश्या के समान वैश्य नामी धन लूटने में वशीकरण मंत्र इसे अद्भुत आवै है।
नम्रता दिखावै पड़ै पायन में कूकर ज्यों, द्रव्य हरने में दीन दास बन जावै है।
जोंक के समान चेंठ मित्रन को पीवै रक्त, संपत्ति को साथी काम भीड़ में न आवै है।

सुधाकर कोऊ मित्र बनिया बनाय देखो, और तो कहूँ क्या ओसे राम ही बचावै है।
ऊँची नीची खरीखोटी भली बुरी धूप छाँह, शीत उष्ण सहें सभी लगा बाजी प्रानों की।

❑ ❑ ❑

कुमति पिशाचिनी निरन्तर नसावे देत, सदा रहे, ताक में जो भोली भाली जानों की।
भाँति भाँति महाजन जमीदार चूसे लेत, मदद नहीं है सहकारी नीतिमानों की।
कृषक हितैषी अब सुधाकर राज बन्यो, अवश मिटेगी सब कसक किसानों की।

उन्होंने विभिन्न वर्णों की कमजोरियों को रेखांकित करने के साथ ही जातिगत एवं धार्मिक एकता पर बहुत बल दिया। उनका मानना था कि देश की तरक्की के लिए समाज की सभी जातियों एवं धर्मों में परस्पर एकता और सहचर की भावना का होना आवश्यक है। उन्होंने कण कण में व्याप्त भिन्नताओं को स्वीकार करते हुए सामाजिक एकता पर बल दिया[12]—

परिपूर्ण सुधाकर जांच करो, लखि भेद परे कन में कन में।
सब आँगुलियाँ इकसार नहीं, भरी भिन्नता है जन में जन में।
जब जीवन में नहीं एक्य कहीं, अति अंतर है मन में मन में।
बहुरूपता जान पड़े न कहाँ, छिन में छिन में कन में कन में।

❑ ❑ ❑

मंदिर और मस्जिद को एक कर मानो सदा,
मंद भाव भरे शब्द यूँ पै ने क लाओ ना।
चारों वर्ण वालों को न जो लौं एक कर पाओ,
भारत सपूतों तो लौं चित्त चैन पाओ ना।
कंधे से भिड़ाकै कंधा रहो सुखदुख माहिं,
जो लौं विश्व बीच सीस ऊँचा कर पाओ ना।
हथेली पै सीस लिये फिरना है देशकाज
सुधाकर प्यारे वीरों सुबीड़ा उठाओं ना।

सुधाकर के शासन काल में दोनों धर्मों के त्यौहारों को राज्य की ओर से समान प्रतिष्ठा प्राप्त थी। ईद के अवसर पर नरेश स्वयं भवानी नाट्यशाला में मुस्लिम समुदाय की नजर (उपहार) स्वीकार करते थे और उन्हें इस मुबारक मौके पर संबोधित भी करते थे।[13] वे हिन्दी में सुधाकर और उर्दू में मखमूर के नाम से कविताएं लिखते थे। राज्य में कई बार जब कवि सम्मेलन होते तो उसके

बाद मुशायरों की महफिलें भी होती थी[14] अर्थात् हिन्दू मुस्लिम समन्वय उनके शासन तंत्र का अभिन्न अंग था।

उल्लेखनीय है कि अंग्रेज अधिकारियों की पहल और प्रयासों से राजपूताने के अन्य राज्यों के साथ झालावाड़ राज्य में भी उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी शिक्षा की शुरूआत हो गई थी। स्वयं नरेश उच्च स्तरीय अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त थे लेकिन उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा में डिग्रियां प्राप्त कर पश्चिमी वेशभूषा पहनकर अपने को परम विद्वान और शिक्षित समझने वाले भारतीय युवकों के कई शब्द चित्र अपनी कविताओं में खींचे और अंग्रेजी शिक्षा के खोखलेपन तथा दुष्परिणामों को भी उजागर किया[15]—

पढ़लिख ग्रेजुएट हो राखे कपटाचार, तिन्हें सुधाकर देत है कोटि कोटि धिक्कार।
चश्मा, चुस्तकोट, पतलून से सजाया ठाठ, रिस्टवाँच सूखी सी कलाई में लगाता है।
नीच सर, तंग भाल, गाल पिचकाये हुये, बोल 'सिली' 'आस' निज इंग्लिश बताता है।
कागा चला हंस चाल भूल अपनी भी गया, काँटे छुरी चम्मच से मेज पर ही खाता है।
कुछ भी सुधाकर जू आता है न जाता इसे, सिर्फ टोप सरपै दे बी.ए. कहलाता है।

❑ ❑ ❑

न्यू लाइट वाले तो सुधाकर भारत बीच 'डेमफूल' कहते हैं अपने फादर को।
कोटपेन्ट धारण कर बाबू बनते नित्य, 'यूज़लेस क्रीचर' कहते हैं मदर को।
'यह लाओ वह लाओ' के सिवा न बोलैं कुछ, घर से निकालते हैं अपने ब्रदर को।
'कैसे रहें माई गॉड इन दिस आफुल प्लेस,' यों कहकै छोड़ते हैं हाय निज दर को।

उनका मानना था कि शिक्षा आवश्यक तो है लेकिन वह सच्ची शिक्षा हो न कि नकली जिससे यह न कहना पड़े[16]—

तालीम पाके फिर भी न आई उसे तमीज़, अफसोस की यह बात है शर्मो हिजाब की।
महरो वफा का नाम नहीं बाहमी ज़रा, ऐ अहले हिन्द बात है शर्मो हिजाब की।
'मखमूर' देख देख के तालीम का ये हाल, आता है दिल में फूँक दूँ जिल्द किताब की।

शिक्षा के सन्दर्भ में धर्म को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा था कि 'मन, वचन एवं तन की शुद्धि ही धर्म है जिसका आजकल की तालीम में अभाव है जब हम धर्म को ही नहीं जानते तो उसकी शिक्षाओं को कैसे जान सकते हैं?' शिष्टाचार, समयनिष्ठा, सफाई आदि को वे शिक्षा का आवश्यक हिस्सा मानते थे। समाज में और विशेष रूप से राजपूतों में प्रचलित बालविवाह, पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, दहेज आदि कुप्रथाओं को मिटाने के लिए वे स्त्री शिक्षा को

आवश्यक मानते थे।[17] स्वच्छताओं के समाज सुधार का अभिन्न हिस्सा थी क्योंकि ग्रामीण समाज में स्वास्थ्य सम्बन्धी अज्ञान के कारण ही क्षय जैसे रोग से सालाना लाखों लोग मर रहे थे।[18] उन्होंने इस पर कविता के माध्यम से इस प्रकार चिंता जताई[19]—

जितै देखो तितै चारों ओर गंदगी का राज, जहाँ तहाँ कूड़ा पड़े, शहर सफाई ना।
गलियाँ हैं गंदी भारी, सड़के नहीं है स्वच्छ, कीचड़-सा हो रहा है, साफ कुए खाई ना।
जमघट मच्छरों का साँपों का औ बिच्छुओं का, खटमल पीते खून ठीक चटाई ना।
हैज़ा प्लेग जूड़ी आदि बीमारी के जुड़े जर्म, सुधाकर होवे कैसे हिन्द की पिटाई ना।

यही नहीं, राज्य की शिक्षा व्यवस्था के उन्नति के मामले में सुधाकर ने महाराज राणा भवानीसिंह के काल से ही रुचि लेना शुरू कर दिया था। विद्यालयी शिक्षा को अधिक उपयोगी, समाजोन्मुखी एवं सहभागी बनाने के लिए दरबार हाईस्कूल झालरापाटन में पूर्व छात्र परिषद् का गठन किया गया था। जिसको एक सक्रिय एवं जीवन्त संस्था के रूप में इस विद्यालय की शैक्षणिक एवं गैर शैक्षणिक गतिविधियों में सक्रिय सहयोग किया था। इस पूर्वछात्र परिषद् के उपसंरक्षक के रूप में रूचिपूर्वक मार्गदर्शन दिया।[20] सन् 1929 में शासक बनने के बाद उन्होंने सर्वोच्च सत्ता के प्रति अडिग राजभक्ति का वचन दिया था।[21] लेकिन उनकी जन निष्ठा भी उतनी ही प्रबल थी। उन्होंने अपने पिता की तरह ही दी राज्य में शिक्षा की उन्नति को प्राथमिकता दी परिणामस्वरूप सन् 1929 में विद्यमान 22 विद्यालयों की संख्या सन् 1938-39 में बढ़कर 47 हो गई, पंजीकृत विद्यार्थियों की संख्या भी 2074 से बढ़कर 3646 हो गई थी।[22] झालावाड़ राज्य के आकार, राजस्व एवं अन्य संसाधनों की न्यूनता को देखते हुये महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि सन् 1921 के समान ही सन् 1931 एवं सन् 1941 में राजपुताना में झालावाड़ राज्य की साक्षरता दर सर्वाधिक थी।[23] राज्य के हर 1000 व्यक्तियों में 76 साक्षर थे जबकि 9 व्यक्ति अंग्रेजी में साक्षर थे। शिक्षा सामाजिक बदलाव एवं व्यक्तिगत उन्नति का प्रमुख साधन होने के कारण उन्होंने इसे प्रोत्साहन दिया तथा उनकी यह मनोभावना कविता में भी झलकी[24]—

अपिठत नागरिक रहने न पावे कोई, साक्षर हों छोटे बड़े सीखैं विद्या काम की।
वयः प्राप्त नर नारी सत्यमतदाता होवैं पचायत कायम हो सुमति ललाम की।
कहकै लिखकै जिस रीति बनै, निज देश दशा को सुधारत है।
समुझायकै अन्तर की बतियाँ, सब द्वेष कलेश निवारत है।

राज्य में शिक्षा नि:शुल्क दी जाती थी, होनहार विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी दी जाती थी। आजाद भारत में न्यायाधीश का पद पाने वाले श्री मांगीलाल जैन तथा झालावाड़ के डग विधानसभा से विधायक बनने वाले दलित जाति के, बी.ए. की उपाधि पाने वाले श्री रामचन्द्र यहीं के स्थानीय विद्यालयों की उपज थे। परम्परागत शिक्षा के लिए ब्रजनगर हाई स्कूल में दो पंडित, दो मौलवियों के अलावा विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के शिक्षक नियुक्त किये जाते थे।[25] सुधाकर का यह भी मानना था कि 'राजपुताना में उच्च शिक्षा के लिए एक विश्वविद्यालय की सख्त जरूरत है और मेयो कॉलेज को विश्वविद्यालय में रूपांतरित कर यह काम कम लागत में किया जा सकता है।'[26]

एक राजा के रूप में उन्होंने उन प्रचलित व्यवस्थाओं का विरोध किया जो व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण और भेदभाव करने की इजाजत देती थी। उन्होंने राज्य की गंगधार निजामत के किसानों को संबोधित करते हुए कहा था 'आजकल के समय में अगर झालावाड़ जैसी छोटी जगह में राज्य और प्रजा का पहले वाला प्रेम होगा तो मुझे यकीन है कि आप लोगों के नाम भारतवर्ष के इतिहास में लिखे जाने के काबिल होंगे। मैं हुक्म देता हूँ कि बेगार का नाम झालावाड़ से बिल्कुल उठ जाये और आप लोगों पर कोई नाजाइज सख्ती न की जाये। अगर आपको किसी अफसर या अमले के खिलाफ शिकायत का मौका आवेगा, जो परमात्मा न करे कभी ऐसा हो, तो मैं आपको उम्मीद दिलाता हूँ कि मुनासिब तहकीकात की जावेगी और सख्त से सख्त सजा दी जावेगी।' इस मौके पर उन्होंने किसानों की सामाजिक-आर्थिक उन्नति के लिए निजामत स्तरीय काश्तकार 'जमींदार हितकारिणी सभा' के गठन की भी घोषणा की जिसे निम्नलिखित प्रमुख दायित्व सौंपे गये थे[27]—

1. गाय एवं बेल के लिए घास व कड़बी का गाँव के अन्दर इन्तजाम करना।
2. अकाल के मौके पर मुनासिब इन्तजाम करना।
3. गाँव में अमन व अमान (शांति एवं सुरक्षा) रखना।
4. आपस में एक-दूसरे के त्यौहारों खुशियों और ग़म में शामिल होना।
5. सब जातियों को भाई-भाई की तरह रखना।
6. सामाजिक रीति-रिवाजों-शादी, नुक्ता एवं गंगोज वगैरह के मौको पर गरीब काश्तकारों को कर्ज करने से बचाना।
7. गांव की सफाई कराना एवं सड़कें ठीक कराना।

इसके बाद उन्होंने जो कुछ कहा वह इस क्षेत्र के लिए किसी सामाजिक

क्रान्ति से कम न था 'इस मौके पर मैं अपनी अछूत रियाया के लिए भी कुछ अल्फाज़ कहूँगा। मेरे लिए अपनी रियाया में कोई अछूत नहीं है। जिनको लोग अछूत कहते है उनकी उन्नति और तरक्की मेरे लिए उतनी ही जरूरी जितनी की मेरी दूसरी रियाया की। मुझको मालूम हुआ है कि गंगधार में बहुत से लड़के है जिन्हें आप अछूत कहते हैं और जो पढ़ने के शौकीन हैं। मैं चाहता हूँ कि मेरे अफसर एवं अन्य लोग मिलकर इन लोगों की तालीम के लिए एक नाइट स्कूल खोलें। इस काम में मेरी गवर्नमेन्ट की ओर से हर तरह की मदद खुशी से दी जाएगी।'[28]

राजेन्द्र सिंह सुधाकर के सामाजिक जागरण के प्रयासों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग उनके छुआछूत निवारण सम्बन्धी कार्य हैं जिन्हें देशी रियासतों में कोल्हापुर शासक शाहू जी महाराज के बाद रखा जाना चाहिए। सुधाकर राजनीतिक क्षेत्र में गांधी की सत्य अहिंसा से प्रभावित नहीं दिखाई देते, वे परम्परागत क्षत्रीय वीरता के पोषक है लेकिन ऐसा लगता है कि गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम का उन पर कहीं न कहीं प्रभाव था। सुधाकर गुजरात जाते रहते थे और ऐसा कहा जाता है कि उनके रिश्तेदारों में गांधी का अच्छा प्रभाव था। गांधी का हरिजनों के लिए केरल में गुरूवायूर मंदिर प्रवेश आन्दोलन चर्चा में था। इन सब बातों का प्रभाव उन पर पड़ा।[29] गांधी ने सन् 1932 में हरिजनोत्थान के लिए 'हरिजन अखिल भारतीय सेवा संघ' की स्थापना की थी। इसकी शाखा अजमेर में स्थापित हुई और हाड़ौती में स्वतंत्रता सेनानी नयनूराम शर्मा ने इसका दायित्व संभाला। झालावाड़ में भी हरिजन सेवक समिति स्थापित की गई और हरिजन पाठशालाऐं खोली गईं।[30] राज्य की ओर से इसे पूरा समर्थन और प्रोत्साहन मिला। राज्य के स्वतंत्रता सेनानी मांगीलाल भव्य को शिक्षा इंस्पेक्टर श्री सन्तराम ने ही इन विद्यालयों में अध्यापक नियुक्त किया था। हरिजन सेवक समिति के उपमंत्री भव्य थे जबकि मंत्री रामचन्द्र बने थे। आगे चलकर इन पाठशालाओं को रियासत ने ही ले लिया[31] जो अछूतोद्धार की दिशा में राज्य के जमीनी प्रयासों का प्रमाण है। सुधाकर देख रहे थे कि गांधी के नेतृत्व में सारा देश सारे मतभेद भुलाकर एकजुटता से लड़ रहा था। ऐसे में उनका मानना था कि फिर यह छुआछूत का जहर क्यों घोला जाये। यथा[32]—

अब देश ही एक हुआ जब है, तब ऊँच औ नीच क्यों बोलते हैं।
यह छूत अछूत की क्या है बला, यह भिन्नता कैसी टटोलते हैं।
जनप्रीति की रीति अभेद सुधाकर भेद की काहे सतोलते हैं।
जग, मोहन मानवता का प्रवाह है, क्यों रस में विष घोलते हैं।

वे सनातन धर्म के पुजारी थे लेकिन हिन्दू धर्म में शास्त्रों के नाम पर छुआछूत को दी गई मान्यता के कारण उन्होंने ऐसे धर्म पर प्रश्नचिह्न लगाया। धर्म की निर्ममता को उन्होंने निम्न मार्मिक शब्दों में अभिव्यक्ति दी[33]—

अछूत

है कैसा यह सत-पथ भगवान,
होगा इससे उन्नत जीवन ?
चाहभरी हिय से लिपटाऊँ,
पर अछूत लख हट जाऊँ।
वह तड़प रहा है पड़ा हुआ,
मैं देख रहा हूँ खड़ा हुआ।

क्या शुद्ध सनातन धर्म यही ?
या वेद शास्त्र का मर्म यही ?
या आँखों की है शर्म यही ?
या सुजनोचित है कर्म यही ?
वह तड़प रहा है पड़ा हुआ,
मैं देख रहा हूँ खड़ा हुआ।

ऐसी अन्य और कई कवितायें हैं जिनके माध्यम से कवि ने संदेश दिया है कि छुआछूत को मिटाकर ही सामाजिक एकता एवं प्रेम स्थापित किया जा सकता है और इसी में स्वराज्य सिद्धि का मूलमंत्र नीहित है। मधुशाला-मधुबाला में कवि ने इस प्रकार कहा है[34]—

जातपाँत का प्रश्न नहीं कुछ, जो आवे पीले प्याला।
जिसको जैसी भावे वैसी निज हाथों में ले ले हाला।
ऊँच नीच का भेद नहीं है, सब मस्तों का स्वागत है,
जातपाँत सबको भड़काती, प्रेम बढ़ाती मधुशाला।

वे अपने जीवन में प्राप्त हर अवसर को छुआछूत मिटाने के लिए उपयोग में लाये। राज्य में शासन संचालन के अलावा उसके बौद्धिक, साहित्यिक, सामाजिक उत्थान एवं प्रगति के लिए उन्होंने अलग से समितियाँ बनाई। उनमें एक समिति हरिजन उत्थान के लिए भी बनी थी जिसका दायित्व श्री सन्तराम और अटलबिहारी को सौंपा गया था।[35] देश में व्याप्त राष्ट्रवादी और सुधारवादी वातावरण में सुधाकर ने अपने राज्य के लिए भी एक बड़ा निर्णय लिया। झालरापाटन स्थित राज्य के द्वारकाधीश मंदिर में वे हरिजनों के प्रवेश के लिए खुद उन्हें लेकर गये। ऐसा कहा जाता है कि राज्य के सनातनी एवं रूढ़िवादी वर्ग ने इसे स्वीकार नहीं किया। पुजारी मंदिर छोड़कर भाग गये, झालरापाटन के वैश्य वर्ग ने दुकाने बंद कर सुधाकर के इस ऐतिहासिक कदम का विरोध किया। हिन्दू सवर्णों द्वारा हरिजनों को इस प्रकार बहिष्कृत करने से सुधाकर इतने आहत हुए कि रोज मंदिर जाने वाले इस शासक ने यह शपथ ली कि यदि हरिजनों को मंदिर

में प्रवेश नहीं करने दिया जाता तो वे भी कभी इस मंदिर में पैर नहीं रखेंगे। उन्होंने जीवन भर इस संकल्प का पालन किया और वे फिर कभी मंदिर नहीं गये।[36] उनके हरिजन मंदिर प्रवेश सम्बन्धी इस कार्य की देश में प्रशंसा हुई। राजस्थान के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी रामनारायण चौधरी ने कहा था कि राजपुताना की सबसे छोटी रियासत होते हुए झालावाड़ जागृति में कई बड़ी रियासतों से आगे है। शासक राजेन्द्रसिंह ने समाज सुधार के क्षेत्र में अपने पिता भवानीसिंह के काम को आगे बढ़ाया है। हरिजन मंदिर प्रवेश सम्बन्धी उनका काम अभिनन्दनीय है।[37] इस प्रकार सुधाकर ने हरिजनों को हिन्दू समाज के साथ एकाकार करने का गांधीवादी प्रयास किया लेकिन कट्टरपंथियों द्वारा अस्वीकार किये जाने पर भी वे अपनी क्षत्रियोचित प्रतिज्ञा पर अटल रहे।

नरेश के हरिजन मंदिर प्रवेश की तिथि को लेकर अभी और खोजबीन की आवश्यकता है लेकिन इतना स्पष्ट है कि नरेश के हरिजनोद्धार सम्बन्धी कार्यों से प्रभावित होकर हरिजन सेवक संघ की राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्रीमती रामेश्वरी नेहरू स्वयं 21 दिसम्बर 1938 को झालावाड़ आईं थीं।[38] उनके साथ हाड़ौती हरिजन सेवक समिति के अध्यक्ष एवं प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी श्री नयनूराम शर्मा तथा अन्य कार्यकर्ताओं ने भाग लेकर नरेश के कार्यों का अभिनन्द किया था। छुआछूत ही नहीं सुधाकर तमाम तरह की मानव निर्मित असमानताओं और ऊँच नीच के खिलाफ थे। इसीलिए उनके कवि हृदय ने उद्घोष किया[39]—

जहँ ऊँच औ नीच को भेद नहीं, जहँ रंग को सेत औ श्याम नहीं।
जहँ द्वेष कलेश को लेश नहीं, जहँ छूतअछूत को नाम नहीं।
जहँ पूजन पाठ नमाज नहीं, जहँ जाति औ पांति को काम नहीं।
जहँ मन्दिर मस्ज़िद चर्च नहीं, हमरो है 'सुधाकर' धाम वहीं।

देश भर में राष्ट्रवादियों ने सुधाकर के हरिजन मंदिर प्रवेश कार्यक्रम का स्वागत किया लेकिन झालावाड़ राज्य के सनातनियों ने इसके खिलाफ पूरी हाड़ौती में लामबन्दी करने की कोशिश की। उन्होंने हरिजन मंदिर प्रवेश के खिलाफ एक प्रस्ताव सरकार को भेजा तथा दूसरा प्रस्ताव कोटा की सनातन सभा को भेजा कि वह भी इसी प्रकार के प्रस्ताव पास कर झालावाड़ नरेश को भेजे। कोटा से सनातन सभा का सचिव कन्हैयालाल सनाढ्य ब्राह्मण एवं गोपाल दत्त 14 अक्टूबर 1937 को बूँदी गये ताकि झालावाड़ में हरिजनों के मंदिर में प्रवेश को रोकने के लिये झालावाड़ नरेश को प्रस्ताव भिजवाया जाये।[40] इस प्रकार हाड़ौती के सनातन धर्मियों ने हरिजन मंदिर प्रवेश के मामले में झालावाड़ नरेश पर दबाव बनाने की पूरी कोशिश की लेकिन वे पीछे नहीं हटे। राज्य के

अन्य कवियों ने नरेश के छुआछूत निवारण सम्बन्धी कार्यो को देश एवं समाज के हित में बताते हुये कवितायें लिखीं। बजरंग लाल भंडारी ने लिखा[41]—

जाति के हितैषी कोऊ देश के हितैषी होय, बातें ही बघारे दशा देश ना सुधारी है।
एकता को नाम लेत फूट को फैलाय देत, भारत निवासिन की गई मति मारी है।
एक तात एक मात एक है हमारी जात, तापै करै छूत छात नेक न बिचारी है।
ऐसी या दशा को देख भूप श्री राजेन्द्रसिंह, दीनन उर लायो तू सर्वाहित कारी है।

राजेन्द्रसिंह सुधाकर स्वयं सनातन धर्म के उपासक थे लेकिन धर्म के नाम पर छुआछूत को कायम रखने के खिलाफ थे। सनातनियों ने द्वारकाधीश मंदिर के दरवाजे अछूतों के लिये बन्द कर लिये थे लेकिन नवनीत लाल बोहरा द्वारा हरिजनों को समर्पित मंदिर के द्वार झालावाड़ नरेश ने 11 सितम्बर 1939 को खोलकर दलितों के लिए एक और अभिनव विकल्प की पहल की।[42] हरिजनोत्थान उनके लिये कोई औपचारिकता अथवा दिखावा नहीं था। उन्होंने अछूतों की सेवा तथा समाज पर उनके उपकार को अन्त:करण से अनुभूत किया था। वे हरिजनों के साथ खड़े थे क्योंकि वे मानवता में विश्वास करते थे। उनका एक और गीत 'हरिजन' जो उस समय बहुत लोकप्रिय हुआ था[43]—

नित उठ डगर बुहारत हरिजन।। टेक
कंकर पत्थर दूर करत हैं, कंटक शूल निवारत हरिजन। नि.
नगरन को कर स्वच्छ प्रात से, मैलापन हर डारत हरिजन। नि.
सकल अशुचि निज हाथन झारत, जग आरोग्य विचारत हरिजन। नि.
जनसेवा में हरिसेवा है, यही भाव उर धारत हरिजन। नि.
रूखा सूखा जो मिल जावे तासों भूख निवारत हरिजन। नि.
कहत 'सुधाकर' हरि करूणा से, रहें सुखी यह भारत हरिजन। नि.[44]

सुधाकर को उनके अछूतोद्धार सम्बन्धी कार्यों के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा मालवा ने 'पतित पावन' की उपाधि भेंट की थी।[45] उनके समाज सुधार सम्बन्धी समस्त कार्यों का सर्वाधिक विश्वसनीय पक्ष यह है कि जागृत प्रजा का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य के प्रजामण्डल ने बाद में सुधारक की पत्नी और राज माता हीराकुंवर बा को भेजी गई अर्जी में स्वीकार किया था कि स्व. राजेन्द्रसिंह की बदौलत राज्य के हरिजनों को आजादी से पहले ही वे सब अधिकार प्राप्त थे जो ऊँचे से ऊँचे खानदान वालों को प्राप्त थे,[46] समय-समय पर राज्य का दौरा करने वाले ब्रिटिश अधिकारियों ने अपनी रिपोर्टों में लिखा है

कि राजेन्द्र सिंह एक लोकप्रिय शासक थे,[47] उन अधिकारियों ने नरेश के साथ क्षेत्रों पर जाकर देखा था कि उनका अपनी प्रजा के साथ गहन सम्पर्क था, उनके प्रजा से मधुर सम्बन्ध थे, वे एक प्रगतिशील एवं मिलनसार शासक थे।[48]

इस प्रकार राजेन्द्रसिंह सुधाकर के शासक के रूप में किये गये कार्यों एवं कवि के रूप में सृजित काव्य से मालूम होता है कि एक राजतंत्रीय एवं सामन्तवादी व्यवस्था का मुखिया, वर्ण व्यवस्था एवं सनातन धर्म का समर्थक होते हुए भी उन्होंने समाज सुधार को प्राथमिकताऐं दी। समाज के कमजोर तबकों किसान, गरीब, एवं दलितों का उत्थान करना उनकी प्रशासनिक नीति का अंग था। वे यह समझते थे कि शिक्षा से ही अज्ञान एवं दरिद्रता दूर हो सकती है। उन्होंने राज्य में शिक्षा की प्रगति के बहुआयामी प्रयास किये किन्तु अधकचरी और सतही अंग्रेजी शिक्षा के खतरों से भी अवगत कराया। धर्म, जाति, वर्ग के आधार पर समाज में विद्यमान फूट को समाप्त कर एकता की स्थापना को वे स्वराज्य का मूलमंत्र समझते थे। उन्होंने गांधी के राजनीतिक कार्यक्रम को महत्त्व नहीं दिया किन्तु बदलते समय के साथ समता एवं आपसी प्रेम पर आधारित समाज के नवनिर्माण के लिए उन्होंने हिन्दू समाज पर कलंक के रूप पर विद्यमान छुआछूत व्यवस्था को समाप्त करने की हर संभव कोशिश की। भले ही राज्य के सनातनियों ने हरिजन मंदिर प्रवेश के क्रान्तिकारी कार्यक्रम का विरोध किया हो लेकिन इसके लिए सुधाकर द्वारा की गई पहल ही उन्हें समाज सुधारक से आगे, सामाजिक क्रान्तिकारी बनाती है।

सन्दर्भ

1. द *रूलिंग प्रिन्सेज, चीफ्स एन्ड लीडिंग फेमिलीज इन राजपूताना एण्ड अजमेर*, गवर्नमेन्ट प्रेस, कलकत्ता, 1924, पृ. 169
2. कालूराम शर्मा, *उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन*, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1974, पृ. 146
3. श्यामलदास, *वीर विनोद*, द्वितीय खण्ड, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986, पृ. 1306-1439
4. मोहनदास करमचन्द गाँधी, *मेरे सपनों का भारत*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2012, पृ. 226
5. सुधाकर (सम्पा.) *कुमारी शकुन्तला*, सुधाकर काव्य कला, स्टेट प्रेस, ब्रजनगर, 1945, पृ. 119
6. राजेन्द्रसिंह सुधाकर, अखिल भारतवर्षीय क्षत्रिय महासभा के 37 वें अधिवेशन के अन्तर्गत राँची में दिया गया अध्यक्षीय भाषण, 27 दिस. 1935, पृ. 9

7. सुधाकर, सुधाकर काव्य कला, पूर्वोक्त, पृ. 134
8. वही, पृ. 89, 118
9. वही, पृ. 179, 181, 182
10. वही, पृ. 181, 182
11. वही, पृ. 178
12. वही, पृ. 90, 124
13. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ द झालावाड़ स्टेट,* 1938-39, पृ. 4
14. सुकवि, *कानपुर झालावाड़* कवि सम्मेलन, नवम्बर 1939, पृ. 43
15. सुधाकर, सुधाकर काव्य कला, पूर्वोक्त, पृ. 103, 177, 182
16. राजेन्द्रसिंह झालावाड़ नरेश का अध्यक्षीय भाषण, अखिल भारतवर्षीय क्षत्रिया महासभा, लखीमपुर, 38 वाँ अधिवेशन, 27 दिस. 1936, पृ. 14
17. वही, अध्यक्षीय भाषण, अखिल भारतवर्षीय क्षत्रिय महासभा, 37 वाँ अधिवेशन, राँची, 27 दिस. 1935, पृ. 18-19
18. वही, पृ. 12-13
19. सुधाकर, सुधाकर काव्य कला, पृ. 113
20. *एनुअल रिपोर्ट ऑफ दरबार स्कूल,* ऑल्ड ब्वायज़ एसोसिएशन, झालरापाटन, फोर द सेकन्ड इयर, एंडिंग 31 दिस. 1926, पृ. 6
21. श्री राजेन्द्रसिंह का भाषण, राज्याभिषेक समारोह, 26 अप्रैल 1929, *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ झालावाड़ स्टेट,* 1929, पृ. 9
22. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ झालावाड़ स्टेट,* 1929, पृ. 29, एन्ड रिपोर्ट 1938-39, पृ. 37
23. *सेन्सस ऑफ 1941,* विपेज डायरेक्ट्री ऑफ द झालावाड़ स्टेट, पृ. 1
24. सुधाकर, सुधाकर काव्य कला, पृ. 125, 129
25. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ झालावाड़ स्टेट,* 1938-39, पृ. 37
26. जनरल इम्प्रेशंस-झालावाड़ फाईल नं. 104-पी/39, कॉन्फिडेन्शयल, ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स एजेन्सी, रिपोर्ट, 13-15 दिस. 1942, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली
27. झालावाड़ नरेश राजेन्द्रसिंह द्वारा गंगधार में प्रजा के समक्ष दिये गये भाषण की प्रति, 13 नवम्बर 1933, नवरत्न संग्रह, नवरत्न सरस्वती भवन, झालरापाटन
28. उपर्युक्त

29. मांगीलाल भव्य, संस्मरण, (सम्पा.) महेन्द्र खड़गावत, उषा गोस्वामी, राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी, ग्रन्थांक 44, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 2007, पृ. 146-147

30. हरिजन सेवक समिति, झालावाड़ राज्य प्रजामण्डल पत्रावली, झालावाड़ रिकॉर्ड, बस्ता नं. 20, फाइल नं. 10, पृ. 13-42 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

31. मांगीलाल भव्य, पूर्वोक्त, पृ. 147

32. सुधाकर काव्य कला, पूर्वोक्त, पृ. 81

33. राजेन्द्रसिंह सुधाकर, *अछूत, सुकवि*, कानपुर, नवम्बर 1939, वर्ष 12, अंक 7, पृ. 22

34. राजेन्द्रसिंह झालावाड़ नरेश (सम्पा.) गिरधर शर्मा नवरत्न, *मधुशाला मधुबाला*, प्रकाशक परमेश्वर शर्मा, झालरापाटन, सम्वत् 2005 (सन् 1945), पृ. 9

35. ज्ञानेन्द्र पथिक की साहित्यिक डायरी, पृ. 4

36. लोकसेवक साप्ताहिक, कोटा, 22 मार्च 1943, पृ. 2, ज्ञानेन्द्र पथिक, मुँह *बोलता झालावाड़*, रत्ना प्रिन्टर्स, झालरापाटन, 1984, पृ. 6

37. रामनारायण चौधरी, 'नीड फॉर ओपनिंग टेम्पल्स टू अनटचेबल्स', हिन्दुस्तान टाइम्स, 28 सितम्बर 1933, पृ. 10, पेपर कटिंग्स, क्रम सं. 1, बस्ता नं. 362, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

38. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ झालावाड़ स्टेट*, 1938-39, पृ. 4

39. राजेन्द्रसिंह सुधाकर, सुकवि, नवम्बर दिसम्बर 1941, वर्ष 14, अंक 7, पृ. 1

40. बूँदी पुलिस की महकमा खास को खुफिया रिपोर्ट, बूँदी रिकॉर्ड, फाइल नं. 32 ए, 15 अक्टूबर 1937, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

41. बजरंग लाल भण्डारी, समस्या पूर्ति, काव्य मञ्जरी, झालावाड़ कवि समाज की मुख पत्रिका, वर्ष 1, संख्या 2-3, काती सम्वत् 1990 (सन् 1933), पृ. 36

42. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ झालावाड़ स्टेट, 1938-39, पृ. 4

43. माधवसिंह दीपक, झालावाड़ का इतिहास, अप्रकाशित, पृ. 53

44. श्री राजेन्द्रसिंह सुधाकर, हरिजन, मतवाला (पत्रिका), लाहौर, 15 दिस. 1939, पृ. 1

45. विविध, सुकवि, कानपुर, नवम्बर 1939, वर्ष 12, अंक 7, पृ. 43

46. झालावाड़ राज्य प्रजामण्डल का प्रार्थना पत्र माजी साहिबा (हीरा कुँवर बा) के

नाम, पत्र क्रमांक 164, 1 मार्च 1947, बस्ता नं. 20 फाइल 10, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

47. ए.सी. लोथियन, विजिट टू झालावाड़ रिपोर्ट टू थामसन, पो. ए., ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, डी.ओ. नं. 76/27 — गोपनीय/41, फाइल नं. 104-पी/1939, पृ. 13, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली

48. टी.बी. क्रुग कॉन, कोटा कैम्प राजपूताना रेजिडेन्ट के नाम रिपोर्ट, गोपनीय डी.ओ. नं. 1488/104-पी 39, 17 सितम्बर 1941, फाइल नं. 104-पी 1939, पृ. 16-17, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली

डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल
विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
झालावाड़ (राजस्थान)

❑❑❑

महात्मा गाँधी और नेताजी सुभाष चंद्र बोस के वैचारिक संघर्ष के विविध आयाम

पूजा शर्मा • डॉ. डी.एन. खुटे

नायक की संज्ञा सामान्यत: उसे दी जाती है जो यथास्थितिवाद और असफलता के भय से परे अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करता है। हमारा स्वतंत्रता संघर्ष भी इससे अछूता नहीं रहा है, पूर्व में प्रयोग की गयी विचारधाराओं के वांछित परिणाम न मिलने, तत्कालिक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों तथा यथार्थपरकता के प्रति रूचि ने हमारे स्वतंत्रता नायकों को भिन्न-भिन्न मार्गो के अनुसरण हेतु प्रेरित किया, परन्तु एक समान ध्येय के होते हुए भी इनमें वैचारिक मतभेदों का उत्पन्न होना स्वाभाविक था।

इन वैचारिक असहमतियों का मूल तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित था। सन् 1920-21 का वर्ष (जब नेताजी लंदन से वापस आए) जनता में असंतोष के अस्फुट स्वरों से प्रतिध्वनित था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद अंग्रेजों का अपेक्षा के विपरीत व्यवहार, अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम, आर्थिक समस्याओं, संवैधानिक कार्यों की असफलता ने जनता को उद्वेलित किया। तिलक और गोखले के निधन ने जो रिक्तता उत्पन्न की, उसे दोनों विचारधाराओं के उत्तराधिकारी के रूप में महात्मा गाँधी ने पूर्ण किया। कदाचित एक वर्ग ऐसा भी था जो तत्कालीन क्रांतिकारी विचारधारा, समाजवाद, अधिक व्यावहारिक मार्ग का समर्थक हुआ। इनमें से कुछ को नेताजी का भी समर्थन मिला। अपनी पुस्तक 'द इंडियन स्ट्रगल' में उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि महात्मा गाँधी से प्रथम साक्षात्कार के बाद ही वे उनसे असहमत थे। स्वाभाविक है एक ओर अहिंसा सत्याग्रह के कई सफल प्रयोग किये हुए, गाँधी जी अपने सिद्धांतों के प्रति दृढ़ थे। वही स्वतंत्रता के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर आए युवा सुभाष के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति के अतिरिक्त कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं था।

समय के साथ महात्मा गाँधी ने अपने विचारों में कुछ परिवर्तन किये परंतु

मूल सिद्धांत यथावत बने रहे। वही नेताजी महात्मा गाँधी से प्रथम साक्षात्कार के समय से ही आदर्शवाद के स्थान पर अधिक व्यवहारपरक होने पर बल देते रहे। व्यक्तिगत रूप से एक-दूसरे के प्रति स्नेह और सम्मान होते हुए भी वे निरंतर देशहित में परस्पर वैचारिक असहमति प्रकट करते रहे, जो तत्कालीन घटनाओं में दृष्टिगोचर होता है।

महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता के लिये अनवरत प्रयास किया, परन्तु उनके लिये साध्य के साथ-साथ साधन भी महत्वपूर्ण थे। उन्होने कहा था 'अगर सुभाषचंद्र बोस जापानी सैन्य सहायता से भारत को अंग्रेजी पराधीनता से स्वतंत्र कराने में सफल हो जाते है तो ऐसी हिंसात्मक स्वतंत्रता मुझे और कांग्रेस को कतई स्वीकार नहीं होगी ....। मैं अहिंसा का पुजारी हूँ और मुझे अहिंसा द्वारा प्राप्त स्वतंत्रता ही मान्य है।'[1] नेताजी सुभाष चंद्र बोस का मानना था कि एक ओर महात्मा गाँधी थे, जो अहिंसा और सत्याग्रह के सफल प्रयोगकर्ता थे, अतः उन्हे अपने मार्ग पर आत्मविश्वास था। वही इस सिद्धांत से सहमत होते हुए भी अंग्रेजों के संबंध में वे इसे पर्याप्त नहीं मानते थे। इतिहास के उदाहरणों तथा तत्कालीन राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं को देखते हुए उनका मानना था कि 'जिस राष्ट्र के पास सैनिक शक्ति नहीं है वह अपनी आजादी की सुरक्षा कदापि नहीं कर सकता।'[2]

महात्मा गाँधी का 'राष्ट्रवाद' अनेक तत्वों को समाहित किये हुए था।

भारतीय परिपेक्ष्य में उनका विचार था कि 'अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ब्रिटिश सरकार को उसकी गलतियों का एहसास कराने का प्रयास होना चाहिये तथा सत्याग्रह द्वारा हृदय परिवर्तन का भी।'[3] इस प्रकार गाँधीजी 'राष्ट्रवाद' सामूहिक समरसता, धर्मनिरपेक्षता, औपनिवेशिक संघर्ष, वंचित वर्गों का हित, सह अस्तित्व के समायोजन का समर्थक थे। यद्यपि नेताजी इन सबसे सहमति तो रखते थे, किन्तु उनका राष्ट्रवाद पूर्णत: स्वतंत्रता प्राप्ति पर केंद्रित था। नेताजी प्रारंभ से ही पूर्ण स्वाधीनता की वकालत करते थे, जबकि कांग्रेस कमेटी में अधिकांश इसे औपनिवेशिक स्वराज्य के द्वारा चरणबद्ध रूप से प्राप्त करना चाहते थे ..... भले ही बोस और गाँधी की विचाराधारा भिन्न थी, बाद में 1942 में बोस को उन्होंने 'देशभक्तों का राजकुमार' कहा[4]

सुभाषचंद्र बोस के लिये स्वतंत्रता एक मात्र ध्येय होने के कारण ही इसके लिये उन्होंने विदेशी सहायता लेने में भी संकोच नहीं किया। वे तत्कालीन अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य और विश्व के देशों के स्वतंत्रता इतिहास से भली-भांति परिचित थे। उन्होंने घोषणा की कि 'उन्हें इतिहास का कोई भी उदाहरण ऐसा नहीं मिला, जिसमें विदेशी सहायता के बिना मुक्ति प्राप्त हुई हो।'[5] वही दूसरी ओर गाँधीजी राष्ट्रवाद और अंतर्राष्ट्रीयतावाद को पूरक मानते थे परंतु तत्कालीन साम्राज्यवादी तथा फासीवादी शक्तियाँ उनके नैतिक सिद्धांतों के कारण उनके लिये त्याज्य थीं। गांधीजी ने यहाँ तक कहा कि 'यदि सुभाषचंद्र बोस हिंसात्मक रूप से स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं तो ऐसी परिस्थितियों में, मैं अंग्रेजी सेना की तरफ से संपूर्ण भारत की शक्ति से सुभाषचंद्र बोस से युद्ध करने के लिए कृत संकल्प हूँ।'[6] उन्होंने हिंद स्वराज में लिखा—'शरीर बल का प्रयोग करना, गोला-बारूद काम मे लाना, हमारे सत्याग्रह कानून के खिलाफ हैं इसका अर्थ तो यह हुआ कि हमें जो पसंद है वह दूसरे आदमी से हम जबरन करवाना चाहते हैं।'[7]

अत: विदेशी सहायता से सैन्य मार्ग के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति को भी गांधीजी ने नकार दिया। इस संबंध में नेताजी ने कहा था कि 'यदि स्थितियाँ हमें भारत के भीतर ही सशस्त्र संघर्ष संगठित करने की सुविधाएँ देती, तो यह हमारे

लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग होता, लेकिन महात्माजी आप किसी अन्य की अपेक्षा भारत की स्थितियों को बेहतर समझते हैं। जहाँ तक मेरा संबंध है, भारत में बीस साल तक सार्वजनिक जीवन में रहने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि भारत के बाहर बसे भारतीयों की मदद और कुछ विदेशी शक्तियों की मदद के बिना भारत में संघर्ष करना असंभव है।'[8]

स्पष्ट है कि महात्मा गाँधी और नेताजी का ध्येय एक ही होने के बाद भी स्वतंत्रता प्राप्ति की उनकी पद्धतियों में बहुत अंतर था। 'गाँधीजी की पद्धति का उद्देश्य था—प्रेम और धैर्यपूर्वक कष्ट सहन करना कि, विरोधी का हृदय रूपांतरित हो जाए।'[9] वे कष्ट सहकर विरोधी को अपराधबोध का भान कराकर नैतिक रूप से दबाव उत्पन्न करने में सक्षम थे और इस मार्ग के कई सफल प्रयोग भी उन्होंने किये। नेताजी भी इस मार्ग का सम्मान करते थे परंतु इसे अंग्रेजों पर प्रभावकारी नहीं मानते थे उन्होंने महात्मा जी को संबोधित करते हुए कहा था कि 'भारत और भारत के बाहर अनेक भारतीय हैं जो यह मानते हैं कि ..... ब्रिटिश सरकार नैतिक दबावों अथवा अहिंसक प्रतिरोध के समक्ष घुटने नहीं टेकेगी।'[10] वे स्वतंत्रता पर अपना अधिकार मानते थे और उनका मानना था कि 'आजादी मांगी नहीं जाती, ली जाती है और हम उसे प्राप्त करके दम लेंगे।'[11]

यही कारण था कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में प्रचलित तत्कालीन विभिन्न विचारधाराओं के प्रति महात्मा जी और नेताजी के विचारों में अंतर था। 1923 में जब स्वराज दल की स्थापना हुई तब 'सुभाषचंद्र ने स्वराजवादी

विचारधारा का खुलकर समर्थन किया तथा स्वराज के उद्देश्यों की प्रशंसा की।'[12] 'गाँधी विधान परिषदों का सदस्य बनने और उसकी कार्यवाही में बाधा पहुँचाने की नीति के विरोधी थे।'[13] उन्होंने नेताओं से बातचीत की ..... कि वह इससे कतई सहमत नहीं हैं ..... उनका मानना था कि 'स्वराजियों के कार्यक्रमों का सार्वजनिक रूप से विरोध करने पर नतीजे गलत निकलेंगे।'[14] यहाँ यह बात विचार करने योग्य है कि यद्यपि महात्मा गाँधी ने स्वराजियों का बाहरी तौर पर समर्थन किया, जो परिस्थितियों की मांग थी, परंतु वैचारिक रूप से यह अहिंसा के विरुद्ध तथा असहयोग आंदोलन के मानक सिद्धांतों के विपरीत था। वही नेताजी शत्रु पर दबाव बनाने के लिये इस व्यवस्था से सहमत थे क्योंकि उनके विचार से साध्य महत्वपूर्ण थे साधन नहीं।

इसी प्रकार अपनी पुस्तक 'द इण्डियन स्ट्रगल' में समाजवादी पार्टी का समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा था 'आर्थिक मुद्दों की स्पष्टता के कारण पार्टी कांग्रेस तथा जनता के बीच और भी अधिक वैज्ञानिक रूप से संगठित होगी।'[15] उनका मानना था कि कांग्रेसी वामपंथी लोग न केवल साम्राज्यवाद विरोधी थे अपितु ये अपने राष्ट्रीय जीवन का निर्माण समाजवादी आधार पर चाहते थे। इसके लिये उन्हें दो और युद्ध करने थे एक विदेशी साम्राज्यवादियों और उनके भारतीय मित्रों से, और दूसरे छिछले राष्ट्रवादियों से जो साम्राज्यवाद से समझौता करने को उद्यत थे।'[16] ऐसा इसलिए था क्योंकि इस समय कांग्रेस में समाजवाद, साम्यवाद, वामपंथ आदि विभिन्न विचारधाराओं को लेकर भिन्न-भिन्न असहमतियाँ थीं। स्वयं महात्मा गाँधी के आर्थिक मूल्यों के अंतर्गत 'न्यासिता' का विचार महत्वपूर्ण है, गाँधी जी ने इस विचार के अंतर्गत बड़े उद्योगों का संचालन व स्वामित्व में मजदूरों व अन्य कार्यकर्ताओं की भागीदारी की संरचनात्मक व्यवस्था पर बल दिया। मार्क्स के विचार के ठीक विपरीत गाँधी ने स्वेच्छा व हृदय परिवर्तन के आधार पर भागीदारी व स्वामित्व की संरचना का निर्माण करना चाहा था। इस विचार के माध्यम से शोषण की प्रक्रिया का अंत हो सकता है तथा कार्य-कौशल भी अधिक सुचारू रूप से संपन्न

किया जा सकता है।[17] अत: उनके मत में समाजवाद के पारंपरिक रूप से उनका पूरी तरह सरोकार नहीं था।

इसी दौर में युवा जो सक्रिय गतिविधियों और विरोध में विश्वास रखते थे, क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के रूप में सामने आए। चूँकि सुभाष चंद्र स्वयं क्रांतिकारी विचारों के थे, इसलिये उनके हमारे देश के क्रांतिकारी युवाओं से सीधे संबंध और सहानुभूति थी।[18] यद्यपि इनकी कार्यप्रणाली अहिंसा के सिद्धांतों के विपरीत थी फिर भी महात्मा गाँधी इनके त्याग, बलिदान के प्रति नतमस्तक महसूस करते थे। फिर भी उन्होंने इस मार्ग का समर्थन नहीं किया। क्रांतिकारियों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए नेताजी ने कहा था कि 'क्या वर्तमान परिस्थितियों में क्रांतिकारियों के प्रति समझ विकसित कर पाना संभव है?.... यह आवश्यकता उत्पन्न नहीं होती, यदि महात्मा गाँधी या कोई अन्य जननेता उनकी ओर से वक्ता होता।'[19] क्रांतिकारियों को यदि अखिल भारतीय नेतृत्व महात्मा गाँधी जैसा मिलता तो क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास कुछ और होता।

अत: विभिन्न विचार धाराओं की कार्यप्रणाली में भिन्नता होते हुए भी उनका लक्ष्य था 'स्वराज्य'। परन्तु यहाँ यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि हम कैसा स्वराज्य चाहते थे 'पूर्ण या औपनिवेशिक'। 1928 में जब नेताजी ने यह विश्वास जताया कि अंग्रजों को बाहर करना संभव है, वे केवल हमारे सहयोग से ही हम पर शासन कर रहे हैं। तब उन्हे कोई संतोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। महात्मा गाँधी औपनिवेशिक स्वराज्य की सर्वदलीय समिति की सिफारिशों को स्वीकार करने को तैयार थे। इस विचार से लड़ने के लिये नेताजी द्वारा 'इंडिपेंडेंट लीग' की स्थापना का विचार जो उन्होंने जवाहर लाल नेहरू से साझा किया, गाँधीजी को पहली खुली चुनौती थी।'[20] वस्तुत: यह नेहरू रिपोर्ट की संवैधानिक योजना का एक अंश था। तत्कालीन परिस्थितियों में उन्होंने इसका समर्थन भी किया परन्तु नेहरू और नेताजी के विरोध के कारण गाँधीजी ने एक समझौता प्रस्ताव सामने रखा कि 31 दिसम्बर 1930 तक सरकार इसे स्वीकार नहीं करती है तो कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनता के लिये एक असहयोग आंदोलन चलाएगी।'[21] अंतत: लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित हुआ।

न केवल स्वतंत्रता प्राप्ति के मार्ग अपितु स्वतंत्रता के बाद के स्वराज्य के संबंध में भी विभिन्न मतांतर दिखाई पड़ते हैं। 'हिंद स्वराज' में प्रस्तुत मत में वे ब्रितानी शासन का विरोध तो करते ही हैं परंतु साथ ही रेल्वे, डाक एवं तार, चिकित्सा विज्ञान इत्यादि, जो आधुनिक सभ्यता के प्रतीक थे, का भी विरोध करते थे।[22] इस संबंध में नेताजी कहते हैं कि गाँधीवादी दर्शन ऐसा प्रभाव उत्पन्न

करता है जिससे आधुनिकता 'बुरी' और अधिक-उत्पादन 'आपदा' लगती है ..... आत्मा महत्वपूर्ण है तथा भौतिक संस्कृति और सैन्य प्रशिक्षण पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिये।[23] कालान्तर में समय के साथ चलते हुए गाँधीजी ने न केवल आधुनिकता को स्वीकार किया, बल्कि पूंजीपतियों से आन्दोलन के लिए आर्थिक सहयोग किया और ट्रस्ट्रीशिप का सिद्धांत दिया। नेताजी आधुनिकता के विषय में समय के साथ चलने पर विश्वास रखते थे उनका मानना था कि 'हम संसार में अलग-थलग हो कर नहीं रह सकते। जब भारत आजाद हो जाएगा तो वह अपने आधुनिक दुश्मनों से आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में आधुनिक तरीकों से लड़ेगा। .... स्वतंत्र संसार को सभी परिस्थितियों के लिये तैयार रहना है।'[24] परन्तु वे यह भी कहते हैं कि 'औद्योगीकरण का अर्थ यह नहीं कि हम अपने कुटीर उद्योगों की ओर से विमुख हो जाएँ। अपने लोगों के सीमित साधनों को ध्यान रखते हुए हमको बड़े पैमाने के उद्योगों के साथ-साथ कुटीर उद्योगों के विकास का भरसक प्रयत्न करना चाहिये।'[25] वस्तुतः महात्मा गाँधी ने भारत की राजनीतिक, आर्थिक तथा समाजिक दुर्दशा की पृष्ठभूमि में आधुनिकता की भूमिका को देखते हुए तथा अपनी गौरवशाली परंपरा की पुनः स्थापना के विभिन्न ऐसे विचार व्यक्त किये, जबकि नेताजी समय की माँग के अनुसार देश की प्रगति के लिये मार्ग प्रशस्त करना चाहते थे। विचारों में अंतर होने पर भी उनके ध्येय समान थे। अन्तर दोनों में ही समय का था।

यहाँ यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि न सिर्फ स्थापित दर्शन व तत्वों में अपितु कांग्रेस के कुछ कार्यक्रम तथा तात्कालिक घटनाओं के संबंध में महात्मा गाँधी और नेताजी के विचारों में संघर्ष के बिन्दु दृश्यमान होते हैं। उदाहरण के लिये असहयोग आंदोलन स्थगित किये जाने पर नेताजी का मत यह था कि 'जिस समय जनता का उत्साह अपनी चरम सीमा को छूने वाला था उस समय पीछे हट जाने का आदेश देना, किसी राष्ट्रीय अनर्थ से कम नहीं था।'[26] न केवल नेताजी अपितु पूरे देश में उनके इस कदम पर असहमति व्यक्त की गयी, परन्तु इस पर उनका दृष्टिकोण था कि 'बुराई के साथ असहयोग उतना ही पुनीत कर्तव्य है जितना कि भलाई के साथ सहयोग।'[27] गांधीजी के द्वारा असहयोग आंदोलन स्थगित किया जाना कई मायनों में उनकी दूरदर्शिता को प्रस्तुत करता है, लेकिन युवा क्रांतिकारियों के लिए व्यापक लोक उत्साह और समय की कीमत अधिक महत्वपूर्ण थी।

इसी भाँति 'सविनय भंग' शब्द पर विचार व्यक्त करते हुए महात्मा जी ने कहा था कि 'कानून का सविनय भंग उन्ही लोगों द्वारा किया जा सकता है जिन्होंने विनयपूर्वक और स्वेच्छा से कानून का सम्मान किया हो। अधिकतर तो

हम कानून का पालन इसलिये करते हैं कि उसे तोड़ने पर जो सजा होती है उससे हम डरते हैं।'[28] परन्तु नेताजी के लिये यह जनता के उत्साह और राजनीतिक सक्रियता का माध्यम था। सविनय अवज्ञा के वापस लिये जाने पर उन्होंने महात्माजी को असफल बताते हुए दुखी होकर कहा कि 'कांग्रेस ने अपनी संपूर्ण बुद्धि एक व्यक्ति के पास गिरवी रख दी है, उनके सोचने समझने की शक्ति क्षीण हो चुकी है।'[29] उनके लिये तत्कालीन परिस्थितियों में आंदोलन की निरंतरता जरूरी थी, जबकि महात्मा गाँधी का मानना था कि 'रचनात्मक कार्यक्रम के रूप में राजनीतिक सक्रियता का विकल्प उनके समक्ष सदैव खुला रहता है।[30]

न केवल कार्यक्रम अपितु कार्यक्रमों की क्रियाशीलता के संबंध में मतांतर पाये गए। महात्मा गाँधी का मानना था कि 'सत्याग्रह और आत्मबल को अंग्रेजी में 'पैसिव रेजिस्टेंस' कहा जाता है ..... जब मुझे कोई काम पसंद न आए और वह काम मैं न करूँ तो उसमें मैं सत्याग्रह या आत्मबल का प्रयोग करता हूँ।'[31] जबकि सुभाष चंद्र बोस सक्रियता के पक्षधर थे जैसा कि विट्ठल भाई पटेल से कहा कि 'मेरे युवा मित्र बोस का कहना है कि आक्रमण खंजर की तरह पैना होना चाहिये।'[32] नेताजी गांधीजी के आंदोलनों में भी निरंतरता और आक्रामकता चाहते थे। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक किसी भी कीमत पर वह राष्ट्रीय आंदोलन की निरंतरता को भंग नहीं करना चाहते थे, बार-बार आंदोलनों के स्थगन ने भी वैचारिक संघर्ष के महत्वपूर्ण बिन्दू स्थापित कर दिये।

'कांग्रेस कार्य समिति के सदस्यों के त्यागपत्र के पश्चात उन्होंने सोचा कि उन्हें महात्मा जी का सहयोग मिलेगा, परन्तु शायद ऐसा सोचना मूर्खता थी कि वे कांग्रेस संगठन को उनके साथ आगे भी जारी रखना चाहते थे।'[33] महात्माजी समानशील सदस्य चाहते थे जबकि नेताजी विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व। इसी प्रकार विश्वयुद्ध में भारतीयों के संलग्न होने, गोलमेज सम्मेलन, अंग्रेजों के प्रति दृष्टिकोण, उग्र राष्ट्रवाद, संघयोजना, भावी स्वतंत्र भारत की कार्य प्रणाली आदि अनेक मुद्दों पर इनमें वैचारिक मतभेद रहे।

परंतु यह कहना भ्रामक होगा कि इनमें वैचारिक संघर्षों के होते हुए भी सामंजस्य का अभाव था। इनके साध्य समान थे अत: असहमति के बाद भी ये साथ चले। महात्मा जी के रचनात्मक कार्यक्रमों, असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन में नेताजी ने सक्रियता के साथ सहयोग दिया। भारत की संस्कृति से प्रेम तथा वंचित वर्गों के प्रति दोनों के दृष्टिकोण समान थे। दोनों ने साम्प्रदायिक एकता के प्रयास किये। यही कारण है कि यद्यपि महात्मा जी ने आजाद हिंद फौज के सैनिकों को 'गुमराह देशभक्त' कहा परन्तु उनकी ईमानदारी पर कभी संदेह नहीं किया और नेताजी ने यद्यपि महात्मा जी के अहिंसा के मार्ग का अनुसरण नहीं किया किंतु अपने हर कदम में उन्हें शामिल किया। 6 जुलाई 1944 को गाँधीजी के नाम रेडियो से संदेश में उन्होंने कहा कि 'भारत की स्वाधीनता की अंतिम लड़ाई शुरू हो चुकी है। ..... यह सशस्त्र संघर्ष आखरी अंग्रेज को भारत से बाहर निकाल फेंकने और नयी दिल्ली के वायसराय हाउस पर गर्वपूर्वक राष्ट्रीय तिरंगा लहराने तक चलता रहेगा। हे राष्ट्रपिता! भारत की स्वाधीनता के इस पावन युद्ध में हम आपका साथ चाहते हैं।'[34]

गांधीजी भी नेताजी की देशभक्ति की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। यह भी सही है कि उस समय पं. जवाहरलाल नेहरू से नेताजी की तुलना की जाती थी, एक बार गांधीजी ने मोतीलाल नेहरू से कहा था कि 'आज की तारीख में उन जैसे उच्चकोटि के त्यागी और देश सेवा करने वाले नवयुवक दूसरे नहीं है। जवाहर ने आनंद भवन के ऐश्वर्य को लात मारी, तो सुभाष ने आई.सी.एस. की स्वर्ण मुद्रा को त्याज्य पदार्थ मानकर कचरे के डिब्बे में फेंक दिया। दोनों ने ही देश के लिए अपना रक्त अर्पित किया है। एक बैरिस्टर, तो दूसरा आई.सी.एस.। देखने में भी दोनों चंद्र-सूर्य की तरह सुंदर और तेजस्वी हैं।'[35] लेकिन आगे आने वाले वर्षों में यह तुलना नकारात्मक रूप से होने लगी और इसके व्यावहारिक परिणाम गंभीर निकले।

नेताजी ने गाँधीजी को दो रूपों में समझा, जैसा कि उन्होंने कहा कि 'गाँधीजी कुछ अर्थों में जटील व्यक्तित्व हैं। गाँधी के दो पक्ष हैं गाँधी एक राजनेता के रूप में और एक दार्शनिक के रूप में। हम उनका अनुसरण एक राजनीतिक नेता की हैसियत से करते रहे हैं परन्तु उनके दर्शन को स्वीकार नहीं किया है।'[36] इन मतभेदों के बावजूद वे महात्मा गाँधी का विश्वास प्राप्त करने को तत्पर थे। उन्होंने इच्छा व्यक्त की थी कि 'मैं नहीं जानता कि महात्माजी के मेरे बारे में क्या विचार हैं, मेरा लक्ष्य और उद्देश्य यही होगा कि गाँधीजी का विश्वास प्राप्त कर सकूँ। यदि औरों का विश्वास जीत लिया किन्तु भारत के सबसे महान पुरुष

का विश्वास नहीं जीत सका तो बड़े दुर्भाग्य की बात होगी।'[37] गांधीजी उस समय भारत के राष्ट्रपिता और सबसे सम्मानीय नेता थे, भारत का राष्ट्रीय आंदोलन उनके इर्द-गिर्द घूम रहा था।

जब युद्ध धूरी शक्तियों की पराजय के साथ समाप्त हुआ तो गांधीजी ने मित्र राष्ट्रों को विजय गर्व से उन्मत्त न होने की चेतावनी दी। सुभाष ने अपनी सरकार के साथियों से आत्मीय बातचीत करते हुए कहा—'भारतवर्ष में गांधी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो अंग्रेजों को विजय के दूसरे दिन ही ऐसा कहने का साहस कर सके।' यदि उन्हें गांधीजी का विरोध करना होता तो वे बहुत खेद के साथ एवं दुखी मन से ऐसा करते थे। वे अपने विचारों में दृढ़ रहते थे और उनमें उनका अटूट विश्वास था। यदि इसके लिए उन्हें कुछ त्याग भी करना पड़े तो उसके लिए भी वे तैयार रहते थे। उन्होंने अपने विश्वासों का मूल्य चुकाया और बिना विचलित हुए कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात तीन वर्ष तक किसी पद पर निर्वाचन हेतु प्रार्थी न होने का दण्ड भी सहन किया[38]

महात्मा गाँधी ने उनके त्याग, समर्पण और भावनाओं की हमेशा प्रशंसा की और उन्हें स्वयं के विचारों पर ही अमल करने की सलाह भी दी। एन. सी. जोग ने नेताजी की देशभक्ति की चर्चा करते हुए कहा था कि 'हृदय में गाँधी के प्रति श्रद्धा-सम्मान और अनुरागपोषित करने वाला बोस जैसा दूसरा व्यक्ति नहीं था, किन्तु व्यक्ति की महत्ता की अपेक्षा लक्ष्य को वे वृहत्तर मानते थे। .....लक्ष्य उनके लिए महत्वपूर्ण था, प्राप्त करने की पद्धति नहीं। वे गाँधी के नेतृत्व के कायल थे किन्तु दीर्घसूत्री कार्यविधि और अहिंसा के प्रति दुराग्रह के साथ उनकी कोई सहानुभूति नहीं थी। महात्मा ने जब युद्ध का बिगुल बजाया बोस सबसे आगे थे, किन्तु जब गाँधी ने रुकने का बार-बार संकेत या लौटने का संशयपूर्ण आदेश दिया तो बोस रोष से भर उठे।'[39] यह अकाट्य सत्य है कि नेताजी की देशभक्ति पर कोई संदेह कभी नहीं हो सकता था।

कुल मिलाकर साध्य के प्रति प्रतिबद्धता और अपने साधनों पर अटूट आत्मविश्वास ने इनके मध्य वैचारिक द्वंद पैदा किये। भिन्न-भिन्न मार्गों पर भी ये समानांतर ही सही, साथ-साथ चले। इसका कारण था लक्ष्य के प्रति समर्पण को लेकर इनमें एक-दूसरे पर लेशमात्र भी संदेह

नहीं था। अत: वैचारिक संघर्ष तो विद्यमान थे, परन्तु इन्हें वैचारिक विरोधी के स्थान पर परस्पर पूरक के रूप में देखा जाना समीचीन प्रतीत होता है।

संदर्भ

1. श्याम सिंह तंवर, श्रीमती मृदुलता, *'भारतीय स्वतंत्रता के पितामह : सुभाष चंद्र बोस'* साक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 198
2. राजशेखर व्यास, *'सुभाष चंद्र बोस कुछ अधखुले पन्ने'*, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2018, पृ. 21.
3. विद्या जैन, गाँधी दर्शन, 'समसामयिक संदर्भ', रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1998, पृ.338
4. सरोज कुमार सिंह, *'लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ सुभाष चंद्र बोस'* अमोल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. 37.
5. यशपाल ग्रोवर, *'आधुनिक भारत का इतिहास'*, एस चंद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली 2003 पृ. 338
6. श्याम सिंह तंवर, श्रीमती मृदुलता, पूर्वोक्त, पृ. 198
7. मनोज सिन्हा, *गाँधी अध्ययन*, ओरियंट ब्लैक स्वान प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 200
8. राजशेखर व्यास, पूर्वोक्त पृ. 205-6
9. आशा कौशिक, *गाँधी नयी सदी के लिये*, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 139
10. राजशेखर व्यास, पूर्वोक्त, पृ. 204
11. पूर्वोक्त, पृ. 29
12. श्याम सिंह तंवर, पूर्वोक्त, पृ. 44
13. विपिन चंद्र, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष* हि.मा.का.नि., नई दिल्ली, 2002, पृ. 181
14. वही, पृ. 182
15. सुभाषचंद्र बोस, द *इंडियन स्ट्रगल* (1920-42), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997, पृ. 332
16. यशपाल ग्रोवर, पूर्वोक्त पृ. 343
17. आशा कौशिक, पूर्वोक्त, पृ. 66
18. सुभाषचंद्र बोस, *एक भारतीय तीर्थयात्री* (अनुवाद, गौतम मसानिया), बेन्टेन बुक्स पब्लिकेशन, 2015, पृ. 175
19. सुभाषचंद्र बोस, द *इण्डियन स्ट्रगल*, पूर्वोक्त पृ. 338
20. ह्युज टोई, *सुभाषचंद्र बोस-द स्प्रिंगिंग टाइगर*, जैलेको पब्लिशिंग हाउस, 2018, पृ. 65

21. शेखर बंदोपाध्याय, *पलासी से विभाजन तक और उसके बाद आधुनिक भारत का इतिहास*, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 313
22. आशा कौशिक, पूर्वोक्त, पृ. 254
23. जी. डी. बक्शी, *बोस एन इंडियन समुराई*, के. डब्ल्यू पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2015, पृ. 29
24. दिनकर कुमार, *आजाद हिन्द फौज*, प्रभात पेपर बुक्स, प्रभात प्रकाशन, 2019 पृ. 158
25. वही पृ. 165
26. सुभाष चंद्र बोस, *इंडियन स्ट्रगल* पूर्वोक्त, पृ. 82
27. विपिन चंद, *आधुनिक भारत का इतिहास*, ओरियंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 291
28. एम.के. गाँधी, *सत्य के साथ मेरे प्रयोग*, रूपा पब्लिकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2012, पृ. 463
29. ह्यूज टोई, पूर्वोक्त, पृ. 70
30. विपिन चंद्र, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष* पूर्वोक्त, पृ. 228
31. महात्मा गाँधी, *हिंद स्वराज्य*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 103
32. श्याम सिंह तंवर, श्रीमती मृदुलता, पूर्वोक्त, पृ. 65-66
33. गॉर्डन, ए. लियोनार्ड *ब्रदर्स अगेनस्ट द राज*, रूपा पब्लिकेशन्स इंडिया प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, 2015, पृ. 221
34. श्याम सिंह तंवर, श्रीमती मृदुलता, पूर्वोक्त, पृ. 150
35. विश्वास पाटिल, *महानायक*, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 182
36. दिनकर कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 170
37. ए. लियोनार्ड गार्डन, पूर्वोक्त, पृ. 221
38. एस.ए. अय्यर, *आजाद हिन्द फौज की कहानी* नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2019 पृ. 92.
39. श्याम सिंह तंवर, श्रीमती मृदुलता, पूर्वोक्त, पृ. 206

पूजा शर्मा
शोधार्थी, इतिहास अध्ययन शाला,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

डॉ. डी.एन. खुटे
शोध निर्देशक, सहा. प्राध्यापक इतिहास अध्ययन शाला,
पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि., रायपुर (छ.ग.)

❑❑❑

महात्मा गाँधी का नारी विमर्श

• डॉ. पुष्पा कुमारी

भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में बाजार की शर्तों से जूझती आज की स्त्री अर्द्धविजेता अर्द्धपराजित के द्वन्द्व में अपनी पहचान ढूंढ़ रही है। बाजार की शक्तियों के दबाव में सृजित नयी भूमिकाओं के साथ-साथ अधिक मजबूत होने वाली पुरानी भूमिकाओं की अपेक्षाओं के बीच स्त्री की अस्मिता पूर्णपरिभाषित हो रही है। इसके साथ ही स्त्री तथा राजनीति के रिश्ते भी अधिक पेचीदा होते जा रहे है। आज स्त्री राजनीति का एक मुद्दा भी है, इसकी एक संभावित सक्रिय एजेंट भी और उसकी शिकार भी।[1] बेशक स्त्री आज इस पुरुष व्यवस्था से आजिज आ चुकी है, जिसमें उसे पूज्य या देवी मानकर पत्थर में तब्दील कर दिया जाता है या हाड-मांस की देह मानकर उसे भोग्या बना दिया जाता है।[2] 21वीं सदी के इस दौर में महात्मा गाँधी का सर्वोदय आंदोलन अपने विशाल परिप्रेक्ष्य को लेकर पुनर्जीवित हो उठा है। सर्वोदय-आंदोलन का एक परिदृश्य नारी से भी सम्बन्धित रहा है। गाँधी जी ने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें स्त्री और पुरुष साथ मिलकर देश और समाज को आगे ले जायेंगे। गाँधी के सर्वोदय की अवधारणा में नारी शक्ति का वह पुंज है जिसके प्रकाश में स्वयं पुरुष आलोकित होता है और वे दोनों पुनः मिलकर समाज को आलोकित करते है।[3] गाँधी की नारी अवश्य ही एक आदर्शवादी नारी है जो देश और परिवार के प्रति पूर्ण समर्पित है। मगर उसके समर्पण में एक दिव्य शक्ति है, एक ज्वाला है जो अन्याय के खिलाफ लड़कर न सिर्फ अपना अधिकार प्राप्त कर सकती है बल्कि देश और दुनिया को भी जागरूक कर सकती है। वह सीता के रूप में दया, ममता और संवेदना का स्त्रोत है तो द्रौपदी के रूप में अपने अधिकार और स्वाभिमान के प्रति सजग भी।

कुसुमलता केडिया के अनुसार 21वीं सदी की स्त्री का अर्थ है ईसा के बाद 2000 साल बीतने के बाद की नयी शताब्दी में स्त्री। इसका अर्थ है नयी

शताब्दी में नये विश्व-संदर्भों में स्त्री! यूरोपीय साम्राज्यवादी उतार-चढ़ाव की पाँचवी शताब्दी के अंत के बाद उभरते वैश्विक परिदृश्य में स्त्री। इस 21वीं सदी की स्त्री का महात्मा गाँधी से क्या रिश्ता है, यह समझना जरूरी है। उनके अनुसार आज 20वीं सदी के अन्त में दुनिया की जो दशा है उसको सम्भव बनाने में गाँधी जी की अद्वितीय भूमिका है। स्त्रियों के वर्तमान जीवन में जो भी शुभ, श्रेष्ठ और श्रेयस्कर है उसके उन्मेष में गाँधी जी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है जिस अहिंसक वीरता की गाँधी जी ने जीवन भर साधना की, उसे वे स्त्रियों में सहज मौजूद मानते थे। ऐसे अहिंसक सर्वोदय की प्रेरणा भी गाँधी जी ने स्त्रियों से ही पाई थी।[4]

गाँधी ने अपनी आत्मकथा में एक स्थल पर यह उल्लेख किया है कि सत्याग्रह की शक्ति कस्तूरबा में उन्होंनें किस रूप में देखी थी और उससे उन्हें क्या प्रेरणा मिली थी। उन्होंने लिखा है—'मैं अपनी पत्नी के हृदय में तब तक स्थान नहीं पा सका जब तक मैंने उसके प्रति अपने पहले के व्यवहार को बिल्कुल बदल डालने का निश्चय नहीं कर लिया। इसके लिए मैंने उसके पति की हैसियत से प्राप्त तथाकथित अधिकारों को छोड़ दिया और ये अधिकार उसी को लौटा दिये।'[5]

गाँधी ने महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए कहा कि 'अपनी मौज-मस्तियों की गुलाम बनी रहना बन्द करो। अपना ज्यादा श्रृंगार मत करो।' क्योंकि इससे आप पुरुष की गुलामी में फँसती है। सच्ची सुगंध वह है जो तुम्हारे हृदय से आती है। यह सुगन्ध सिर्फ मर्द को मोहित नहीं करती, बल्कि वह पूरी मानवता को मोहित करती है। पुरुष, स्त्री से उत्पन्न होता है, उसकी मांस-मज्जा से बनता है। अपनी प्रतिष्ठा फिर से प्राप्त करो। अपना श्रेष्ठ संदेश फिर से सुनाओ।'[6]

गाँधी की दृष्टि में एक सशक्त महिला वह है जिसमें शील और धर्म के प्रति गहरी संवेदना और श्रद्धा है। अपनी इसी दृष्टि के कारण गाँधी जी के नेतृत्व में चले राष्ट्रीय आन्दोलन में उसकी व्यापक सहभागिता रही। रॉलेट एक्ट के विरूद्ध जो सत्याग्रह 1919 ई. में चला, उसमें अनुसूइया बेन की अग्रणी भूमिका थी। पंजाब में श्रीमती रमाबाई, श्रीमती बेंकट सहित सैकड़ों स्त्रियाँ स्वदेशी एवं सत्याग्रह के लिए आगे आयी थी। 1920 ई. में देश भर में घूम-घूमकर गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन के लिए लोगों को तैयार किया। गाँधी जी ने कहा—'जब तक इस कार्य में स्त्रियाँ पूरी तरह सहयोग नहीं करती, तब तक स्वराज्य की आशा रखना व्यर्थ है। राष्ट्र की स्वतंत्रता को बनाये रखना और

स्वतंत्रता छिन गयी हो तो उसे प्राप्त करना उनका धर्म है। यह बात यदि स्त्रियाँ नहीं समझती है तो राष्ट्र की सुरक्षा असम्भव है।[7]

उनकी दृष्टि में एक दृढ़ स्त्री का कर्तव्य है अपने सही अधिकारों के प्रति जागरूक होना। जनरल डायर के विषय में उन्होंने कहा है कि यदि स्त्रियाँ धर्म का सच्चा अर्थ जानती तो वे डायर जैसे अत्याचारियों से स्वदेश एवं स्वधर्म की रक्षा करने योग्य वीरता का पाठ अपने पतियों ओर पुत्रों को अवश्य पढ़ाती।[8]

1930 ई. में जो नमक सत्याग्रह चला उसमें भी स्त्रियों की व्यापक सहभागिता थी। नमक सत्याग्रह में स्त्रियों का नेतृत्व स्वयं कस्तूरबा गाँधी ने किया था। साबरमती के आश्रम में मंत्री का काम कुसुम देसाई करती थी। गाँधी जी का कहना था कि स्त्रियाँ नमक कर विरोधी आन्दोलन तक ही सीमित न रहे बल्कि नैतिक उत्कर्ष के लिए भी काम करें। उन्होंने कहा—'दुकानों पर धरना देने का काम जोखिम से भरा हुआ तो है किन्तु स्त्रियाँ तो हमेशा से ही जोखिम उठाती आयी है। इसी से यह संसार चल रहा है।'[9] इसी प्रकार 1925 में सरोजिनी नायडू को कांग्रेस का अध्यक्ष बनवाने की पहल गाँधी जी ने की थी। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान जहाँ एक तरफ सुचेता कृपलानी ने अहिंसात्मक आन्दोलन का नेतृत्व किया, वहीं अरूणा आसफ अली ने भूमिगत क्रान्तिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाया। गौरतलब है कि इस दौरान कई ग्रामीण महिलाओं ने बड़ी संख्या में आगे आकर इस आन्दोलन को एक नई दिशा दी।[10]

गाँधी जी के अनुसार, सम्पूर्ण जड़-चेतना-सृष्टि एक ही दिव्य सत्ता की अभिव्यक्ति है। सबमें इस दिव्य सत्ता की उपस्थिति ही सबकी अस्मिता और गरिमा का प्रमाण है। प्राणिमात्र में स्वयं अपने प्रयास और पुरुषार्थ से ईश्वर का साक्षात्कार कर सकने की क्षमता है। अतः स्त्री को स्वयं इस सत्य का साक्षात्कार करना होगा।[11]

गाँधी जी के मतानुसार सीता और द्रौपदी आदर्श स्त्रियाँ है। सीता को वे निरीह तथा कायर नहीं पाते वरन, अपने शील, तेज और धर्म द्वारा रावण जैसे प्रचण्ड बलशाली को रोकने और संयमित करने में समर्थ पाते है। इस प्रकार सीता एक वीरांगना स्त्री है। द्रौपदी में शील, धर्म और तेज का विशिष्ट उत्कर्ष है। गाँधीजी का कहना था कि स्त्री की खरी स्वाधीनता का बेहतर दृष्टांत है द्रौपदी। यदि सीता एक नाजुक फूल है तो द्रौपदी एक उन्नत देवदारू। महाबली भीम उसकी प्रचण्ड इच्छा के सामने नत हो। बाकी सबके लिए भीम भयंकर दुर्घष

है। परन्तु, द्रौपदी के समक्ष वह एक मेमना है। द्रौपदी को अपनी रक्षा के लिए पाण्डवों में से किसी की भी आवश्यकता नहीं थी। वह तो तेजोमयी थी।[12]

स्त्री को सशक्त बनने के लिए स्वयं प्रयास करना होगा। स्त्री को सशक्त होने के लिए आत्मग्लानि, आत्मदेन्य, आत्महीनता और आत्मविस्मृति से ऊपर उठना होगा स्वधर्म-रक्षण, स्वधर्म पालन, शील और तेज के उत्कर्ष, वीरता विवेक का विकास तथा भारतीय गुणों की प्रतिष्ठा के लिए पहले से कही अधिक प्रयास करना होगा। सत्यनिष्ठा और अधिक प्रखर और गहरी करनी होगी आधुनिकता के नाम पर प्रचारित पापपूर्ण धारणाओं, मूल्यों और लक्ष्यों की सच्चाई पहचाननी होगी।[13] आज के मुक्त काम के दौर में स्त्री पर अत्याचार और भी ज्यादा बढ़ गया है : सर्वोदय की परिकल्पना में इस वर्जना से छुटकारे का उपाय है कि स्त्री अपनी शारीरिक शक्ति की जग चरित्र शक्ति का विकास करे।[14]

इसमें कोई दो राय नहीं है कि प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री अपेक्षाकृत ज्यादा सबल और मुखर हुई है। मगर आज पितृसत्तात्मक अंधेरे तंबू के नीचे उसका चेतन-अवचेतन भयमुक्त नहीं है। टीवी पर और फिल्मों में भले ही वे दुर्गा और काली का अवतार दिखती हों, मगर वास्तविक धरातल पर वे आज भी शारीरिक दुर्बलताओं के बोझ से दबी है। नारी की इसी कमजोरी ने उसे रूपनिष्ठ और शरीरनिष्ठ बना दिया है। पुरुषों की अपेक्षा नारी कहीं ज्यादा देहात्मवादी बन गई है। बाजार के इस दौर में समृद्ध देशों के इशारे पर तीसरी दुनिया के देशों, विशेषकर भारत में स्त्रियों को देह के रूप में कैद करने की साजिश चल रही है। जिस प्रकार से उनके शरीर के वस्त्र कम किये जा रहे है, वे बाजार की सुन्दर वस्तु बनकर दिखने को विवश है। देह की इस चकाचौंध में इसकी बुद्धि, अस्मिता, मेधा और तमाम तरह की जागरूकताएँ जैसे खो गई है। सर्वोदय की परिकल्पना में इस समस्या का हल शरीर को असुन्दर या अनाकर्षक बनाना नहीं है। इससे उसे सत्व की हानि होगी। सौन्दर्य ईश्वर की विभूति है। सुन्दरता में सहज शोभनीयता होती है। परन्तु शृंगार की आपतिजनक नहीं है। बात इतनी सी है कि स्त्री का ब्रह्मचर्य और मातृत्व दोनों स्वायत्त व स्वाधीन हो। उसके सतीत्त्व का रक्षण और विकास करते हुए पुरुष-निर्भर और पुरुष-सापेक्ष जीवन से ऊपर उठना होगा। यह तभी हो सकता है जब वह 'स्वरक्षित' हो। इसके लिए उज्ज्वल चरित्र के साथ-साथ शुद्ध जीविका की भी आवश्यकता है।[15]

गाँधी ने शिक्षा को नारी के विकास एवं आत्मसम्मान का प्रमुख जरिया माना है। शिक्षण-कार्य में स्त्री माता के नाते पुरुषों से हजार गुणा श्रेष्ठ मानी गयी

है। मनु ने एक जगह कहा है। 'दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य श्रेष्ठ है, सौ आचार्यो की अपेक्षा पिता श्रेष्ठ है, और माता हजार पिताओं की अपेक्षा (गुरु के नाते) श्रेष्ठ है।'[16] श्रुतियों में गार्गी और मैत्रेयी जैसे उदाहरण तो देखने को मिलते है मगर स्त्री के आचार्य होने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। जब स्त्रियों के लिए गुरुकुल ही नहीं थे तो स्त्री आचार्य कैसे हो सकती है, आज स्त्रियों की भूमिका में एक क्रान्ति आ गई है। मगर यह क्रान्ति तब तक अधूरी रहेगी जब तक स्त्री अपने उद्धार के लिए पुरुषों पर निर्भर रहेगी। स्त्री को प्रेमजीवी कहा गया है मगर प्रेम करने के लिए बराबरी का सम्बन्ध होना चाहिये। उसमें भय का एक कण भी नहीं होना चाहिये, कहते है 'भय बिनु होंहि न प्रीति।'

'मगर भय और प्रेम एक साथ नहीं रह सकते। जब तक स्त्री को पुरुषों से भय रहेगा वह खुले दिल से प्रेम नहीं कर सकती। बलवान मन और बलवान हृदय ही प्रेम का पात्र हो सकता है। यह मानसिक क्रान्ति सम्यक् शिक्षण से ही हो सकती है स्त्री का शील अगर काँच के बर्तन की तरह होगा तो उसमें काँच सी चमक और पारदर्शिता भी होनी चाहिए, उसका नाजुकपन नहीं, कुरकुरापन नहीं।[17]

गाँधी ने स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग नैतिक मानदण्डों को तोड़ने की बात की है, एक-एक करके सारी अनर्थ परम्पराओं को बदलना होगा। वह पुरुष के साथ जरूर जियेगी लेकिन पुरुष के भरोसे नहीं। इस परम्परा को तिलांजलि देनी होगी की मातृत्व के बिना स्त्री जीवन की सार्थकता नहीं, पुरुष के बिना विवाह नहीं। वह पुरुष से प्रेम कर सकती है। एक माता के नाते, बहन के नाते, कन्या के नाते। इन कौटुम्बिक भावनाओं का विस्तार नागरिक जीवन में आरंभ करना होगा। उसके लिए कृष्ण-द्रौपदी का उदाहरण सबसे उपयुक्त रहेगा। कृष्ण और द्रौपदी एक साथ पूजे जाने चाहिये। उनमें यौन संबंध नहीं था न वह राधा थी कृष्ण की और न ही सुभद्रा, फिर भी उनके जीवन में एक-दूसरे के लिए उत्कट प्रेम था।[18]

गाँधी के अनुसार सही मायने में यदि स्त्री आर्थिक क्षेत्र में सशक्त होगी तो दोहरे मानदंड स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे। पुरुषनिष्ठ स्त्री यदि पतिव्रता कहलायेंगी तो पत्नीव्रता पति 'लंपट' की जगह पत्नीव्रता कहलायेगा। स्त्री के जीवन में अर्थ की प्रधानता को स्थापित करने के विषय में जुलियट मिशेल ने लिखा है कि 'विकसित औद्योगिक समाज में स्त्रियों का काम समूची अर्थ-व्यवस्था के सिर्फ हाशिये पर होता है जबकि काम के जरिये आदमी प्राकृतिक अवस्थाओं को बदल डालता है और इस प्रकार एक नये समाज का निर्माण करता है। जब तक

उत्पादन के क्षेत्र में क्रान्ति नहीं होती, श्रम के हालात स्त्रियों की स्थिति को पुरुषों की दुनिया के अंदर ही निर्धारित करते रहेंगे।'

वर्तमान की उलझी जाति परिस्थिति में सर्वोदय के विचार में नारी की अस्मिता खतरे में जान पड़ती है। सर्वोदय का समरसतावादी सिद्धान्त शायद स्त्रियों को 339 से 509 तक आरक्षण देकर संतुष्ट हो जाए। मगर यह आरक्षण अगर उन्हें दे भी दिया जाए तो, क्या यह उन जरूरतमंद कमजोर वर्ग की महिलाओं तक पहुँच जाएगा जिनकी पूरी जिंदगी चूल्हें और 'गोयठे' के समीकरण में बीत जाती है। तमाम आन्दोलनों और जागृति के बाद भी स्त्रियाँ घरों में मुत और उद्योग के कम वेतन पर काम करती रही है।[19] जमे ग्रीयर का यह कथन पूरी दुनिया की आधी आबादी का सच है, हमारा पूरा पारिवारिक ढ़ाँचा स्त्रियों के शोषण पर टिका है। एक स्त्री की सामाजिक और पारिवारिक परिस्थिति ही ऐसी होती है जो उसे कुछ बनने नहीं देती। हमारे यहाँ एक और व्यवसाय के नाम पर खुलेपन की यावनत स्त्रियों की दी जा रही है तो दूसरी ओर धैर्य के नाम पर उसे पर्दे में रखने की साजिश की जा रही है। इसलिए पुरुषों पर प्रहार से आज ज्यादा आवश्यक है पुरुषवादी संरचना पर प्रहार। स्त्री-मुक्ति से मतलब है स्त्रियों को आत्म निर्णय का अधिकार मिले।[20]

सर्वोदय आन्दोलन के शीर्षस्थ नेता एवं प्रवक्ता आचार्य विनोबा भावे का विचार है कि स्त्री का उद्धार तभी होगा जब स्त्रियाँ जगेंगी और स्त्रियों में शंकराचार्य जैसा कोई प्रखर ज्ञान-वैराग्य-सम्पन्न, भक्तिमान और निष्ठावान शास्त्रकर्ता पैदा होगा। उन्होंने कहा, 'अगर मैं स्त्री होता तो न जाने कितनी बगावत करता। मैं तो चाहता हूँ कि स्त्रियों की तरफ से बगावत हो। लेकिन बगावत तो वह स्त्री करेगी जो वैराग्य की मूर्ति होगी। वैराग्य वृत्ति प्रकट होगी, तभी मातृत्व सिद्ध होगा। अगर स्त्रियाँ स्वतंत्रता चाहती है तो उन्हें वासना के बहाव में नहीं बहना होगा।[21]

विनोबा भावे की दृष्टि में, 'स्त्री की सारी समस्याओं का समाधान वैराग्य भावना में है, जो पूर्णत: दे देने में विश्वास करती है। विनोबा भावे की स्त्री महान शंकराचार्य की प्रतिमूर्ति है। मगर प्रश्न यह है कि आज जीवन की आधारभूत समस्याओं रोटी, कपड़ा, मकान, बच्चे की फीस, नौकरी-चाकरी आदि से जूझती नारी की समस्याएँ क्या वैराग्य से सुलझ जाएँगी? वास्तव में इन सारी समस्याओं का समाधान जमीन पर रहकर ढूँढ़ने में है। पलायन से समस्याएँ नहीं सुलझेगी।

मेरी समझ से लगता है कि चार साल की बच्ची हो या पचास साल की प्रौढ़ा, घर में रहने वाली औरत हो या बाहर काम करने वाली महिला, मंदिर, मठों, तीर्थों में रहने वाली विधवा हों या देवदासियों या पुरुष के संरक्षण में पुरुष से ही सुरक्षा चाहती है। स्त्री आज हर जगह पुरुषों की हवस का शिकार होती है।'[22]

शेखर बन्धोपाध्याय के शब्दों में, गाँधी जी ने एक आदर्श भारतीय नारीत्व की अवधारणा व्यक्त करते हुए इसे मातृत्व से विलग भगिनीवादी सोच को प्रधानता दी जिसमें उन्होंने स्त्री की 'काम' को नकारा है। किन्तु उनका स्त्रीत्व का स्पष्ट विचार धार्मिक उपमाओं की भाषा से भरा था जो स्त्रीत्व के स्थापित पारम्परिक मूल्यों के अनुरूप नहीं था।[23]

दादा धर्माधिकारी ने गाँधी मार्ग में लिखा है—'विकसित स्त्री का अर्थ, नकली पुरुष नहीं है। स्त्री की भूमिका को पुरुषों की भूमिका के तुल्य बनाना होगा। स्त्री की प्रतिष्ठा वीर माता या वीर पत्नी बनने से ज्यादा स्वयं वीरांगना बनने में है।[24]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते है कि गाँधी के नारी-विमर्श में नारी के आत्मसम्मान की बात कही गई है। गाँधी के विचारों तथा नारी मुक्ति आन्दोलनों से नारियों में चेतना एवं जागृति आयी एवं एक सही मंच मिला जहाँ से उन्होंने अपने आत्म-सम्मान के लिए भी आवाज बुलंद की। गाँधी ने स्त्रियों को पर्दे से बाहर राष्ट्रीय आन्दोलन, चरखा कातने और धरना प्रदर्शन में भाग लेने के लिए कहा और इसी के परिणामस्वरूप गाँधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में स्त्रियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया और जेल भी गई। एक विदेशी पत्रकार ने तो यहाँ तक कहा था कि यदि इस आन्दोलन से और कुछ प्राप्त न हुआ हो केवल स्त्रियों की स्वतंत्रता प्राप्त हुई तो भी यह कृत कार्य हो गया है।

स्पष्ट है कि गाँधी की अवधारणा में नारी के आत्मसम्मान, विकास, अधिकार एवं समानता की बात थी जिसके समान राजनीति में नारी को उचित स्थान प्राप्त हो सके। नारियाँ पुरुष के कदम-से-कदम मिलाकर समाज एवं देश की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करें, वर्तमान नारीवाद को भी गाँधी के नारी-विमर्श से पर्याप्त उर्जा प्राप्त हुई।

सन्दर्भ

1. मैत्रेयी पुष्पा, 'स्त्री के पक्ष में स्त्री, सहारा समय, 4 सितम्बर, 2001
2. कुसुमलता केडिया, *21वीं सदी की स्त्री और महात्मा गाँधी*, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, मार्च 1998, पृष्ठ-9

3. 'महात्मा गाँधी की आत्मकथा', (गाँधी विचार), पृ. 279
4. कुसुमलता केडिया, पूर्वोक्त, पृ. 9
5. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, खण्ड-11 विषय क्रमाक-223 एवं 237
6. गाँधी विचार, पूर्वोक्त, खण्ड-43, पृ.-260-61
7. वही, पृ. 10
8. वही
9. दादा धर्मधिकारी 'मैत्री' नये युग की नारी' सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी फरवरी, 1998
10. वही
11. वही
12. अनिता वर्मा, 'जरूरत है जड़ से सवरने की' कसौटी, दैनिक जागरण, पटना, 7 जनवरी 2005
13. सीमेन द बोउआर, 'द सेकंड सेक्स', 1946
14. रेखा 'टूटे पुरुषवादी संरचना', कसौटी, दैनिक जागरण, पटना, 7 जनवरी 2005
15. आचार्य विनोवा भावे, 'नारी की महिमा' सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1919
16. पूनम सिंह, 'तालेवानी पहरेदारी में अस्मिता, कसौटी, दैनिक जागरण, 12 अगस्त, 2005
17. शान्ति सुमन 'क्षमता को ही बनाये हथियार, कसौटी, दैनिक जागरण 7 जनवरी 2005
18. वही
19. वही, सर्वोदय दर्शन
20. अनामिका, *स्त्रीत्व का मानचित्र*, सारांश प्रकाशन, 1999
21. शेखर बंधोपाध्याय, *फ्रॉम प्लासी टू पार्टिशन, हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया*, ओरिएन्ट लॉगमेन, 2004, पृ. 391
22. तनिका सरकार, 'पॉलिटिक्स एण्ड वीमन इन बंगाल : द केडिशन एण्ड मिनींग ऑफ पार्टिसिपेसन', द इंडिया इकॉनोमी एण्ड सोशियल हिस्ट्री रिव्यू, 1984, पृ. 101
23. शेखर बंधोपाध्याय, पूर्वाक्त
24. दादा धर्माधिकारी, पूर्वाक्त

Dr. Pushpa Kumari
Lalit Narayan Mithila University
Darbhanga-846008 (Bihar)

❑❑❑

छत्तीसगढ़ में बी.एन.सी मिल तथा उससे संबंधित समस्याओं व परिवर्तनों का एक ऐतिहासिक पुनरावलोकन

खेमलता साहू • प्रो. आभा रूपेन्द्र पाल

19वीं शताब्दी का अंतिम चरण राजनांदगांव के औद्योगिक एवं सामाजिक इतिहास का रेखाबिन्दु कहा जा सकता है। इस शहर के इतिहास में सन् 1890 का वर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जा सकता हैं, जब इस वर्ष पूर्व के मध्य प्रान्त एवं वर्तमान में छत्तीसगढ़ के राजनांदगांव में कपड़ा मिल सेन्ट्रल प्रॉविन्सेस मिल की स्थापना की गई थी। उल्लेखनीय है कि है कि लगभग 129 वर्ष पूर्व जब इस देश में 100 कपड़ा मिले थीं, उनमें से एक इस क्षेत्र में भी थी। सन् 1897 में घाटे के चलते सी.पी.मिल को कलकत्ता के मेसर्स शॉवालिस कंपनी को बेचा गया तथा मिल का नाम 'दी बंगाल-नागपुर-कॉटन मिल लिमिटेड' रखा गया।

जहां कहीं भी मिल स्थापना होती है वहां परेशानियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मिल मालिकों ने आवश्यकता और पूर्ति के सिद्धांत को अपनाया। जहां एक ओर मिल के खुलने से राजनांदगांव तथा उसके आसपास के गांव के लोगों को रोजगार मिला जिससे उनकी आमदनी बढ़ी, लोगों के मध्य विचारों का आदान-प्रदान हुआ। जाति-पांति के बंधन ढीले पड़ने लगे,यह सब एक साथ मिलकर काम करने से संभव हो सका। वहीं दूसरी ओर हाथकरघा उद्योग का पतन हो गया।

राजनांदगांव सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में प्रथम तथा प्राचीन औद्योगिक नगर कहलाने का गौरव रखता है। इस क्षेत्र में सी.पी. मिल का अपना विशिष्ट स्थान है। वस्त्र उद्योग को बढ़वा देने के लिए सी.पी. मिल की स्थापना 23 जून सन् 1890 को इण्डियन कम्पनी एक्ट यू. आई. आई., सन् 1882 के तहत्

राजनांदगांव रियासत के शासक महन्त बलराम दास द्वारा की गई थी। मिल का उद्घाटन एच. एच. फ्रेजर चीफ कमीश्नर के द्वारा जुलाई सन् 1890 में किया गया। इसका मुख्यालय रायपुर में था। व्यापार उद्योग नांदगांव रियासत की बुनियादी परंपरा रही है। इस भूमिका के अनुरूप राजा महंत घासीदास ने रियासत के बाहर कम्पनियों के शेयर खरीदने की बुनियाद डाली थी।[1]

सी.पी. मिल के लिए राजा बलराम दास ने जमीन दी थी, जिसका क्षेत्रफल 3365 एकड़ था जो रेल्वे लाइन के किनारे पर स्थित था। मिल निर्माण कार्य बंबई के मैकबेथ ब्रदर्स ने किया था। मिल के लिए 15000 पौण्ड की भारी मशीनों द्वारा उत्पादन कार्य आरंभ कर दिया गया। सी.पी. मिल में राजा छाप कपड़ा बनने लगा, जो आज भी यहां का ट्रेडमार्क है, क्योंकि राजनांद गांव के राजा साहब मिल के शेयर होल्डर व चेयरमेन थे।[2] इसकी प्रारंभिक पूंजी 5 लाख की थी। इसमें 2,55,000 शेयर पूंजी तथा 1,25,000 रु. अकेले राजा बलराम दास की एवं शेष रकम डायरेक्टर्स और अन्य संचालकों की लगी थी। बंबई के मेसर्स मैकबेथ एण्ड कम्पनी के एजेन्ट और सेक्रेटरीज बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की देखरेख में श्री केदारनाथ बागची इस कम्पनी के संचालक का कार्य करने लगे।[3] मि. जे. बी. मैकबेथ ने मिल के निर्माण कार्य को सम्पन्न किया, जो दो वर्षो में पूरा हुआ था। ये बंबई के मैकबेथ ब्रदर्स नामक बंबई फर्म से संबंधित थे, इनको मिल की ओर से वेतन मिलता था। इनमें केवल मि. जे. बी. मैकबेथ ही थे जो मिल चलाने की तकनीक को समझते थे।[4]

इस मिल में धोती, चादर, सूती कपड़ा, लट्ठा, ब्लैंकेट, नेट से बनी मच्छरदानी आदि का निर्माण होता था। यहां का लट्ठा और मच्छरदानी बहुत प्रसिद्ध थे।[5] रियासत की ओर से मिल को सभी सुविधाएं प्राप्त थी, जैसे-मिल के लिए आवश्यकतानुसार पानी, नाका-चुंगी कर आदि। मिल में पानी की सुविधा के लिए एक तालाब नं. 2691 (रकबा 30.60) से पाईप द्वारा पानी लेने की व्यवस्था की गई थी।[6]

सन् 1894 से 12 अप्रैल 1896 तक मिल का कार्य सुचारू रूप से चलता रहा। सन् 1895 में इस मिल में 480 करघे, 28224 तकुये लगभग 833 श्रमिकों द्वारा 12 घण्टे का दो पाली में होता था। आरंभ में यहॉ एक पाली चलती थी, लेकिन बाद में शॉवालिस कम्पनी ने दो पाली चलायी। ये पालियां 12-12 घण्टे की होती थी और सन् 1920 में 12 घण्टे की पाली के विरुद्ध ठाकुर प्यारेलाल सिंह के नेतृत्व में एक बड़ा श्रमिक आंदोलन हुआ था।[7]

सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ क्षेत्र में बी. एन. सी. मिल के कपड़े की बड़े पैमाने पर मांग थी। मिल के उत्पादन को बढाने के लिए ऋण की आवश्यकता थी। इस उद्देश्य से सन् 1896 के अक्टूबर माह में फ्यूडेटरी चीफ की ओर से पोलिटिकल एजेन्ट मि. ओमक के जरिये विभागीय कमिश्नर मि. टेंपिल साहब को एक आवेदन पत्र दिया गया था, जिसमें सी. पी. मिल को 1,20,000 रु. का ऋण महंत राजा बलरामदास द्वारा दिये जाने का तथा 1,25,000 का शेयर भी लिये जाने का जिक्र किया गया था। इस प्रकार राजा साहब की कुल पूंजी 2,45,000 रु. लगी हुई थी। कमिश्नर साहब को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि राजा साहब ने अपनी ओर से 1,20,000 रु. का ऋण किस आधार पर दिया था, साथ ही राजा साहब द्वारा शेयर के आधार पर नौ प्रतिशत पर कहीं से अपनी जिम्मेदारी पर ऋण प्राप्त करने की मांग का जिक्र था।[8]

इस तथ्य को लेकर चीफ कमिश्नर उडबर्न और पोलिटिकल एजेन्ट ने अपनी ओर से ऋण स्वीकृत कराने की जिम्मेदारी से इंकार कर दिया और मिल का हिसाब-किताब पर कुछ शंकाएं भी प्रकट की। यदि सरकार की ओर से मंजूरी दी जाती है, तो सरकारी खजाने से ऋण दिये जाने की नौबत आ सकती थी।[9] अत: राजा साहब ने सरकार के खजाने पर कोई दखल न देते हुए, स्वंय की जिम्मेदारी पर ऋण की मांग की थी। इस बात की सूचना चीफ कमिश्नर को भी दी गई। अगस्त सन् 1895 तक कोई ऋण का प्रश्न नहीं उठा था। परंतु इसी समय चीफ कमिश्नर उडबर्न साहब ने मिल का मुआयना किया जिससे ऋण का मामला फिर से उठ खड़ा हुआ। मिल का मुआयना करने से चीफ कमिश्नर साहब को राजा साहब से पता चला कि कलकत्ता के किसी व्यापारी से बारह प्रतिशत ब्याज की दर से मिल के लिए कर्ज लेने की बात चल रही है। मिल के कार्यकारी निर्देशक ने उन्हें यह बताया कि राजा साहब बंशीलाल अबीर चंद से 2 लाख रु. का ऋण लेने के लिए बातचीत कर रहे हैं। चीफ कमिश्नर साहब ने पोलिटिकल एजेन्ट को मिल की आर्थिक परिस्थितियों की जांच करने के लिए कहा। मार्च के अंत में कमिश्नर साहब को बंगाल बैंक के मैनेजर द्वारा यह सूचना दी गई कि मिल के अधिकांश धन राशि (बैंकिंग कैपिटल) के लिए 5 लाख के ऋण लेने पर विचार चल रहा है लेकिन अब राजा साहब ऋण नहीं लेना चाहते थे वे स्वयं अपने पास से ऋण देने को तैयार थे।[10]

धीरे-धीरे मिल का घाटा बढ़ने लगा, इस घाटे का कारण जानने के लिए राजा साहब ने कमिश्नर मि. टेंपिल साहब से जांच करने की प्रार्थना की। जांच में यह ज्ञात हुआ कि मिल के संचालक अनुभवहीन हैं और उनकी अज्ञानता के

कारण ही यह घाटा होने लगा है। वे राजा को आश्वस्त करते रहे कि मिल से होने वाली आय में उनका लाभ सुरक्षित है, मिल के इस घाटे से राजा साहब का निजी कोष खाली होने लगा था। परिणामस्वरूप साहूकारों के सख्त तगादे मिलने लगे। अतः राजा साहब ने समस्या के समाधान हेतु कमिश्नर से सलाह मांगी जिसने सलाह देने से इंकार कर दिया। ऐसी स्थिति में राजा साहब ने यह राय जाहिर की कि यदि कम्पनी की स्थिति ठीक हो जाए तो वे पांच लाख रुपये देने को तैयार हैं, परंतु राजा साहब को इसका कोई भी संतोषजनक जवाब नहीं मिला। उन्होंने कमिश्नर साहब को सूचित किया कि वे किसी तरह कम्पनी से अपना नाता तोड़ने को तैयार हैं, इसके लिए चाहे उन्हें कितनी भी हानि क्यो न उठानी पड़े।[11]

नीचे लिखी तालिका से मिल में शेयर होल्डर द्वारा लगाई गई पूंजी पर घाटा का पता चलता है[12] —

शेयर होल्डर	लगाई गई पूंजी
1. राजा साहब द्वारा लगाई गई शेयर पूंजी	1,25,000 रु.
2. मि. मैकबेथ सेक्रेटरी	12,000 रु.
3. हरिशंकर शुक्ल पूर्व मैनेजर के रिश्तेदार	12,000 रु.
4. शिव रतनलाल डायरेक्टर	5,000 रु.
5. मि. एच. एस. गौर बैरिस्टर एटला	2,000 रु.
6. मि. केदारनाथ बागची मैनेजिंग डायरेक्टर	2,000 रु.
7. दौलतराम	10,000 रु.
8. कई छोटे शेयर होल्डर्स	67,000 रु.
कुल	2,55,000 रु.
कुल घाटा	5,43,289 रु.

कुल पूंजी 2,55,000 रुपये लगाई गई थी, जबकि घाटा 5,43,289 रु. का हुआ। इसका अर्थ है कि लगभग 2,88,289 रु. का घाटा इस मिल को हुआ था।

मिल का बेचा जाना

मिल को बेचने के विचार से महंत राजा बलरामदास ने सारंगपाणी मुदलियार को कम्पनी के हिसाब की जांच के लिए नियुक्त किया, किन्तु समय के अभाव के कारण वे इस कार्य को पूरा नहीं कर पाए। इसके बाद शेयर होल्डरों ने एक प्रस्ताव पास किया कि कम्पनी का हिसाब (एक्सपर्ट आडिटर्स) चतुर अंकेक्षणों से समुचित रूप से कराया जाए। इस कार्य के लिए चार व्यक्तियों की एक कमेटी बनाई गई, कमेटी में शामिल लोगों के नाम निम्नलिखित थे—केदारनाथ बागची, मि. बी. के. मैकबेथ, शिवरतनलाल ठेकेदार व सेठ सुखदेव सिंह। शिवरतनलाल ठेकेदार और सेठ सुखदेव सिंह को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान नहीं था, इस कारण इन दोनों व्यक्तियों को गुमराह किया गया। एक्सपर्ट की रिपोर्ट के अनुसार मिल की कुल कीमत 4,81,000 आंकी गई, जबकि कम्पनी की लागत 8 लाख रु. की थी।[13]

6 अगस्त सन् 1896 को बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की मीटिंग हुई जिसमें यह तय किया गया कि मिल को रखना संभव नहीं है, तो उसे बेच दिया जाए। सी. पी. मिल को नागपुर के राजाराम दीक्षित ने 5 लाख 40 हजार रु. में खरीदना चाहा लेकिन अंग्रेज सरकार के हस्तक्षेप के कारण यह सफल न हो पाया। महन्त राजा बलरामदास पर अंग्रेजी सरकार का दबाव था कि सी. पी. मिल अंग्रेजी कम्पनी को बेचे। अत: कोई दूसरा विकल्प न होने के कारण राजा साहब ने इस सौदे को मंजूरी दे दी।[14]

26 फरवरी 1897 को इकरारनामें के अनुसार सी. पी. मिल शॉवालिस कम्पनी को 5 लाख रु. में बेच दिया गया। इससे मिल को 3 लाख रु. का घाटा हुआ। मिल के बेचे जाने के बाद सी. पी. मिल का नाम *'दी बंगाल-नागपुर-कॉटन मिल लिमिटेड'* रखा गया। इसका मुख्यालय बैकशाल स्ट्रीट कलकत्ता में था। जिस समय मिल को बेचा गया उस समय मिल में 478 लूम्स करघे, 28,224 तकुएं थी। सूत मजदूरों की संख्या 875 थी, जिनमें 487 औरते और 388 पुरुष थे।[15]

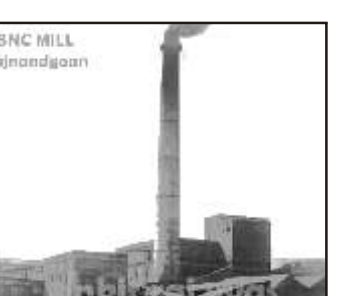

इस कम्पनी की पूंजी 16 लाख की थी, जिसमें 4 लाख डिबेंचर लोन शामिल था। नई कम्पनी ने राजा के बीच शुद्ध लाभ का 25 प्रतिशत देने का वादा किया। इसके बदले नई कम्पनी की राजा

साहब को देय 1,64,118, आना 7 पाई कर्ज की रकम माफ कर दी गई। रायल्टी की शर्त बी.एन.सी. मिल और राजनांदगांव दरबार के मध्य तय हुई। एक पक्ष में राजा साहब, उनके उत्तराधिकारी और प्रतिनिधि थे। दूसरे पक्ष में चार्ल्स विलियम, आर्थर कारवेट और चार्ल्स ग्रीन थे। ये सब कलकत्ता के मेसर्स शॉवालिस कम्पनी के व्यापारी और एजेन्ट थे।[16]

सन् 1896 के शेयर होल्डरों के नाम इस प्रकार हैं—गोविन्द राव अमृत प्लीडर, अकबर अली अब्दुर हुसैन मरचैन्ट, अमकरण लक्ष्मीचंद बैकर, गणेश काशीनाथ खरे कन्टैक्टर, सारंगपानी मुदलियार, बने चंद सुखलाल, मूलचंद डोठामल, नानूराम सोनी, स्वरूप चंद रामधन, धन राज चुनीलाल, मोतीलाल रतन लाल, सरदार मल स्वरूप, नैनसुख, विधाता प्रसाद पंडित, सुल्तान चंद अनूप चंद, व शमसुद्दीन इत्यादि लोग थे। सन् 1896 के बी.एन.सी. मिल के शेयर होल्डर्स में कुछ लोग राजनांदगांव के और कुछ बाहर के व्यक्ति थे।[17]

इन सब घटनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि किस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने सी.पी. मिल के प्रकरण में चालाकी और अपनी सर्वोपरी सत्ता का दुरूपयोग एवं पक्षपात कर सी. पी. मिल को एक अंग्रेजी कम्पनी के हाथ बेचने में अपना सहयोग दिया। इस प्रकार राजा साहब को व्यक्तिगत नुकसान तो हुआ साथ ही पूरे रियासत के जनता और शेयर होल्डरों को घाटा हुआ। यह प्रकिया प्रारंभ से अंत तक चलती रही।

बी.एन.सी. मिल से संबंधित समस्याएं

जहां कहीं भी कारखानें स्थापित होते हैं, श्रम से संबंधित समस्याएं वहां स्वत: उत्पन्न हो जाती हैं। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति ने विश्व को अनेक लाभ पहुंचाए थे, परंतु उससे हानि भी हुई थी और वह हानि थी कि इसने मजदूरों की दीन-दशा को और अधिक दयनीय बना दिया जिससे मजदूरों में असंतोष की भावना बढ़ने लगी। बी.एन.सी. मिल का संचालन अंग्रेज कम्पनी के हाथों में आने के बाद मिल में तरक्की होने लगी। लेकिन असहाय मजदूर, मिल-मालिकों के मर्जी से काम करने को बाध्य थे।

बी. एन. सी. मिल के मजदूरों को 12 से 13 घण्टे काम करना पड़ता था। महिलाओं की स्थिति और भी अधिक गंभीर थी। उनसे 9 घण्टे या कभी-कभी 11-12 घण्टे काम लिया जाता था। मजदूरों का वेतन इतना कम था कि उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती थी।[18] कपड़ा मिलों में भारी शोरगुल होता था, जिससे बहरा होने की संभावना अधिक थी। मजदूरों ने

इस समस्या के समाधन हेतु मांग की गई, लेकिन ब्रिटीश अधिकारी मजदूरों की मांगों को टालते रहे। इसके अलावा तेज गति वाली मशीनों के कारण यह भार और अधिक बढ़ा गया साथ ही बहुत सारे मजदूरों को यह कहकर निकाल दिया कि आवश्यकता से अधिक मजदूर रखे गये हैं। इससे मजदूरों की अवकाश में कटौती हो गयी।[19]

भारत में कपड़ा मिलों को आज भी 'पसीने की दुकान' माना जाता है। अत्यधिक गर्मी और नमी के कारण न केवल काम करने की क्षमता कम होती थी, बल्कि बीमारियां भी फैलती थीं। रूई के रेशे फेफड़ों के अन्दर जाकर टी. बी. और बिसिनियोसिस नामक बीमारी पैदा करते थे।[20] राजनांदगांव छोटी- सी रियासत थी, तथा देशी राज्य होने के कारण यहां के कारखानों में फैक्टरी एक्ट लागू नहीं हो सकता था। जिसके कारण राज्य का प्रबंध पोलिटिकल एजेण्ट के अधीन था।[21]

बी.एन.सी. मिल एवं मजदूरों के जीवन में बदलाव

प्रारंभ में अंग्रेज भारत में व्यापार के लिए आए। तदुपरान्त उन्होंने यहां की अपार खनिज संपदा एवं वनों का पूरा दोहन किया और भारतीयों को 'कुली' संबोधित कर सस्ते मजदूरों के रूप में उनका उपयोग किया। व्यापारी से शासक और मालिक बनकर शोषक बनने की यह कहानी सभी को ज्ञात है। शॉवालिस कंपनी ने सी.पी. एण्ड बरार में बी.एन.सी. मिल के अतिरिक्त छिन्दवाड़ा एवं परसिया में कोयला खानों पर भी अपना कब्जा जमा लिया था।

छत्तीसगढ़ में प्रारंभ होने वाले सूती मिल को ठीक तरह से संचालित करने के लिए मिल के प्रबंधकों ने विशेष रूप से प्रशिक्षित एवं अनुभवी व्यक्ति यहां बुलाए। इनमें महार और कोष्टा जाति के लोग अधिक थे। इन मजदूरों को मिल के सामने चॉल बनाकर बसाया गया। आरंभ में इनसे कोई किराया नहीं लिया जाता था। शॉवालिस कम्पनी की व्यवस्था में सन् 1938 के लगभग उनसे नाममात्र का किराया चार आना (पच्चीस पैसे) प्रतिमाह लिया जाता था।[22] किराया न लेने से कानूनी स्थिति यह बन सकती थी कि वर्षों से रह रहे यह मजदूर कहीं मकान मालिक होने का दावा न कर दे इसलिए किराया लिया गया। यह दूसरी बात है कि इन श्रमिकों को ही नहीं वरन् अधिकारियों को भी न बिजली का पैसा देना पड़ता था और न ही घर में उपयोग करने के लिए कोयले का। प्रारंभ में मिल में मजदूर जुटाना बहुत कठिन होता था। धीरे-धीरे मजदूर मिल में काम करने आने लगे। मिल में काम एक पारी में होने लगा जो करीब 12 घण्टे की होती थी और यह सिलसिला 25-30 वर्षों तक चलता रहा।[23]

मिल की स्थापना से पहले यहां गांवों में रहने वाले बुनकर ही लोगों की वस्त्र संबंधी जरूरतों की पूर्ति करते थे। यही उनकी जीविका का साधन था। राजनांदगांव में कपड़ा मिल खुलने से रियासत में बुनकरों का काम प्रभावित हुआ। 1880 के पूर्व कोनारी और मोहाद के कोष्टा बहुत ही अच्छी साड़ियां बुना करते थे। उनकी कीमत 40-50 रु. तक की होती थी, अब इन साड़ियों को बनाने वाले को विवश होकर अन्य धन्धों से अपनी जीविका चलानी पड़ी। जब मिल में कपड़े का उत्पादन हुआ तो प्रबंधक अपने उत्पादन को पूरे छत्तीसगढ़ में बेचने लगे। मिल के वस्त्र सस्ते पड़ते थे अत: ग्राहक मिल उत्पादनों की ओर अधिक आकर्षित हुए, जिससे कुटीर उद्योग समाप्त होता चला गया।[24]

मिल के प्रारंभ होने से राजनांदगांव के आस-पास के गांवों के लोग मिल में भरती होने लगे। इनमें पुरुष और महिलाएं दोनों ही थे। दिन भर मिल में काम करने के कारण विभिन्न सम्प्रदायों एवं धर्मों के लोग अधिक समय तक साथ रहते थे। एक साथ रहने के कारण संकुचित सामाजिक बंधन धीरे-धीरे टूटने लगे। आपस में खान-पान इत्यादि भी प्रारंभ होने लगा।[25]

जो मजदूर गांवों से यहां कार्य करने आए थे उन्होंने अपना निवास स्थान मिल के आस-पास बना लिया। मिल में मजदूरों को एक निश्चित दिन वेतन मिलने लगा था, जो लोग कृषि क्षेत्र से आये थे उन्हें अधिक आर्थिक लाभ होने लगा। ये लोग अपने घर से अनाज लाकर भोजन का प्रबंध करने लगे और बचत के पैसों से गांवों में जमीन खरीदने लगे। कई लोग जो नागपुर आदि जाते थे उन्हें वहां के मिलों में होने वाली घटनाओं की जानकारी प्रत्यक्ष रूप से मिल जाती थी। वे यहां वापस आने के बाद अपने साथियों से विचार-विमर्श करते थे। धीरे-धीरे मजदूरों ने अपने को संगठित करना प्रारंभ कर दिया।[26]

इसी बीच प्रथम विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया। चूंकि इस मिल का प्रबंध अंग्रेजों के हाथों में था, वे नहीं चाहते थे कि यहां किसी प्रकार की गडबड़ी हो जिससे ब्रिटीश सरकार को हानि पहुंचे। संचार प्रणाली की कमी के कारण देश में होने वाली घटनाओं की जानकारी बहुत देर से प्राप्त होती थी। इसीलिए यहां कोई किसी प्रकार की गड़गड़ी तत्काल नहीं हो सकी, किन्तु लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की गिरफ्तारी के कारण देश भर में जो हड़तालें हुई विशेषकर बंबई के सूती मिल मजदूरों ने जो हड़ताल की उनका असर धीरे-धीरे बी.एन.सी. मिल में भी होने लगा।[27]

यूरोपीय देशों व ब्रिटेन में औद्योगिक विकास अपने बाल्यावस्था में था तब मजदूरों को बहुत परेशानियां व कष्ट सहने पड़े इसीलिए दूसरे देशों ने अपने देशों

के औद्योगीकरण में यूरोप के अनुभवों से पूरा लाभ उठाया। भारत में अंग्रेज लंकाशायर आदि से अनुभवित होकर भारत में सूती वस्त्र के कारखाने लगाने लगे थे। इंग्लैण्ड में वहां के संसद ने सूती मिलों से संबंधित कई कानून बनाये थे, उनमें 1881 का कारखाना अधिनियम, मजदूरों को संगठित होने एवं उनके संरक्षण के लिए 1920 में व्यापार संघ यूनियन अधिनियम, 1929 का मजदूर विवाद अधिनियम एवं 1936 का मजदूरी भुगतान अधिनियम प्रमुख थे जिसका अंग्रेजों ने इस देश में भी अनुसरण किया।[28]

बी.एन.सी. मिल में तथा राजनांदगांव दरबार को भी उन्हीं कानूनों का पालन करना पड़ता था लेकिन फिर भी अधिकांश मजदूरों को प्रबंधकों की मर्जी पर निर्भर रहना पड़ता था, क्योंकि कोई संगठन न होने के कारण मजदूर कोई संगठित कार्यवाही नहीं कर पाते थे। दुनिया के सभी नियम कानूनों का एक ही उद्देश्य होता है कि वह समाज में हर व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करे तथा मेहनत करने वाले मजदूरों को अपनी मेहनत का पूरा मुआवजा मिले। मजदूरों को सभी आवश्यक सुविधाएं मिले उनका शोषण न हो।[29]

नि:संदेह महंत राजा बलराम दास द्वारा स्थापित बी.एन.सी. मिल छत्तीसगढ़ का एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र रहा है। 18 वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड से आरंभ औद्योगिक क्रांति का उदाहरण राजानांदगांव शहर ने भी 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही अपनाया था, भले ही इसका श्रेय तत्कालीन राजा साहब की प्रगतिशीलता या अन्य निहित कारणों से अपनाया गया रहा हो। बी.एन.सी. मिल इस रियासत और समीपवर्ती अंचल को पीढ़ियों से किसी न किसी कारणों से प्रभावित करती रही है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र में विषयवस्तु की दृष्टि से राजनांदगांव रियासत बी.एन.सी. मिल की स्थापना व उससे संबंधित समस्याओं और परिवर्तनों को लिया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से जब हम अतीत की ओर झांकते हैं, तो सब उदासीन, उजाड़ और खण्डहर दिखाई देता है। आज न ही रियासत है, न ही राजा, न ही बी.एन.सी. मिल और न ही वहां काम करने वाले मजदूरों की चहल-पहल, सब अतीत के गर्भ में समा गए। एक समय था जब मिल की मशीनों की आवाज से दसों दिशाएं गूंज उठती थी। बाजार, बी.एन.सी. मिल से उत्पादित कपड़ों से भरे पड़े रहते थे, आज के समय में मिल खण्डहर व राजा का महल शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय के रूप में मिलते हैं।

राजनांदगांव रियासत की भौगोलिक स्थिति और परिस्थिति उद्योग और व्यापार के अनुकुल थी। बंबई-नागपुर-कलकत्ता के राजमार्ग तथा रेलमार्ग के मध्य में स्थित है। महन्त राजा घासीदास ने राजनांदगांव में व्यापार और उद्योग की नींव डाली, जिसे राजा बलराम दास ने मिल की स्थापना करके स्थायी रूप प्रदान किया। यहां उद्योग के लिए आवश्यक साधन-पूंजी, संचालक, कच्चा माल, सस्ता श्रम (मजदूर), आवागमन के साधन आदि सभी उपलब्ध थे। मिल की स्थापना से बंबई, नागपुर व कलकत्ता के व्यापारियों से संपर्क हुआ। बंबई के मेसर्स मैकबेथ एण्ड कम्पनी के मैनेजर, एजेन्टस और सेक्रेटरीज सी. पी. मिल के डायरेक्टर्स हुए। राजा बलराम दास सबसे बड़े शेयर होल्डर के नाते मिल के चेयरमैन थे तथा मिल का मुख्यालय रायपुर था। मिल की सम्पूर्ण जमीन को राजा साहब ने नाममात्र किराये 191 रु. सालाना पर दे रखा था। इसके अतिरिक्त अन्य सुविधाएं राजा साहब की ओर से मिली थी जैसे—नाका चुंगी माफी, मुफ्त जल संसाधन की पूर्ति, सस्ते मजदूर तथा भारत सरकार द्वारा प्रतिबंधित कानूनों से छूट आदि।

सन् 1897 में घाटे के चलते सी. पी. मिल को कलकत्ता की एक अंग्रेजी कम्पनी मेसर्स शॉवालिस कम्पनी को बेचना पड़ा। मेसर्स शॉवालिस कम्पनी द्वारा मिल खरीदने के बाद मिल का उत्पादन बढ़ा साथ ही मिल प्रबंधकों द्वारा मजदूरों की कार्य अवधि बढ़ा दी गई, लेकिन मेहनताना उतना ही रखा गया। साथ ही साथ मिल मालिकों ने आवश्यकता और पूर्ति के सिद्धांत को अपनाया जिसके अनुसार मिल मालिक जब चाहे मजदूरों को काम पर बुला लेते थे और जब चाहे मजदूरों को काम से निकाल देते थे। इसके परिणामस्वरूप मजदूरों को छुट्टी मिलना मुश्किल हो गया, एक दिन की गैर हाजिरी में दो दिन का वेतन काट लेते थे। इस प्रकार आशा के केन्द्र कहे जाने वाले औद्योगिक संस्थान मजदूरों की गरीबी, तंगी और परेशानियों के ठिकाने बन गए। मजदूरों की दशा सुधारने हेतु कारखाना अधिनियम पारित किया गया, जिसके परिणामस्वरूप मजदूरों के कार्य के घण्टे कम कर दिये गये। साथ ही मजदूरों के मूलभूत आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा गया।

सन्दर्भ

1. सी.जे.लायल, चीफ कमीश्नर सेन्ट्रल प्राव्हिंसेस द्वारा शेयर होल्डर, सी.पी. मिल को लिखा पत्र, दिनांक 23-04-1896, पत्र क्रमांक 8284, पृ. 1
2. वही
3. एच.पी.एच. एच. प्रीस्ट एसक्वायर आई. सी. एस. चीफ सेक्रेटरी टू दी चीफ

कमिश्नर सी. पी. द्वारा सेक्रेटरी टू दी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया फारेन डिपार्टमेन्ट का लिखा पत्र, दिनांक 12-12-1896, पत्र क्रमांक 8827, पैरा 1, 2, पृ. 1

4. वही, पैरा 5, पृ. 3
5. सी.एल.शर्मा, 'छत्तीसगढ़ की रियासतें', छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, 2008, पृ. 169
6. एच.पी.एच. एच. प्रीस्ट एसक्वायर आई. सी. एस. चीफ सेक्रेटरी टू दी चीफ कमिश्नर सी. पी. द्वारा सेक्रेटरी टू दी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया फारेन डिपार्टमेन्ट का लिखा पत्र , दिनांक 12-12-1896, पत्र क्रमांक 8827, पैरा 4 , पृ. 1
7. खड़गबहादुर सिंह, *'राजनांदगांव जिले का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'* (1741 से स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती तक), पृ. 72-73
8. एच.पी.एच. एच. प्रीस्ट एसक्वायर आई. सी. एस. चीफ सेक्रेटरी टू दी चीफ कमिश्नर सी. पी. द्वारा सेक्रेटरी टू दी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया फारेन डिपार्टमेन्ट का लिखा पत्र, दिनांक 12-12-1896, पत्र क्रमांक 8827, पैरा 5, पृ. 1
9. धानुलाल श्रीवास्तव, *अष्टराज अम्भोज*, रेजा प्रेस नरसिंहपुर मध्यप्रदेश, 1925, पृ. 66
10. एच.पी.एच. एच. प्रीस्ट एसक्वायर आई. सी. एस. चीफ सेक्रेटरी टू दी चीफ कमिश्नर सी. पी. द्वारा सेक्रेटरी टू दी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया फारेन डिपार्टमेन्ट का लिखा पत्र , दिनांक 12-12-1896, पत्र क्रमांक 8827, पैरा 5 , पृ. 1
11. ई.ए. डी. ब्रेट, *'छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट गजेटियर'*, 1909, पृ. 99
12. एच.पी.एच. एच. प्रीस्ट एसक्वायर आई. सी. एस. चीफ सेक्रेटरी टू दी चीफ कमिश्नर सी. पी. द्वारा सेक्रेटरी टू दी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया फारेन डिपार्टमेन्ट का लिखा पत्र , दिनांक 12-12-1896, पत्र क्रमांक 8827, पैरा 5 , पृ. 1
13. सी.जे. लायल, चीफ कमिश्नर, सेन्ट्रल प्राव्हिंसेस द्वारा शेयर होल्डर सी.पी.मिल को लिखा पत्र नं. 2849 ता. 23-4-1896, पृ. 2
14. शेयर होल्डर सी.पी.मिल, द्वारा, सी.जे.लायल चीफ कमीश्नर सेन्ट्रल प्राव्हिंसेस को लिखा पत्र, दिनांक 23-04-1896, पत्र क्रमांक 8284, पृ. 6
15. महन्त सर्वेश्वर दास द्वारा किया गया मुकदमा, पृ. 276 से 287 सत्यापन/दीवान ए.सी. मैकगेविन 13
16. राजा बलराम दास और शॉवालिस कंपनी के मध्य प्रथम एग्रीमेन्ट, दिनांक 20-02-1896, पृ. 2
17. धानुलाल श्रीवास्तव, *'अष्टराज अम्भोज'*, पृ. 69
18. *विश्वामित्र*, भाग-10, संख्या 91, 16 मई, 1926, पृ. 2

19. राजेन्द्र कुमार सायल, *'राजनांदगांव में श्वेत आतंक'*, मजदूर संघ को कुचलने के लिए राज्यतंत्र द्वारा संगठित हिंसा पर एक अधूरी रिपोर्ट, क्षेत्रीय सचिव लोक स्वतंत्रता संगठन म.प्र., खण्ड-2, दिनांक 2-10-1984, रायपुर, पृ. 20
20. सी.एल. शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 171
21. शेयर होल्डर सी.पी.मिल, द्वारा, सी.जे.लायल चीफ कमीश्नर सेन्ट्रल प्राव्हिंसेस को लिखा पत्र, दिनांक 23-04-1896, पत्र क्रमांक 8284, पृ. 6
22. ई.ए. डी. ब्रेट, 'छत्तीसगढ फ्यूडेटरी स्टेट गजेटियर', 1909, पृ. 127
23. सी.एल.शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 170
24. बी.एल. ग्रोवर, यशपाल मेहता, अलका, *'आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन'* (1707 से वर्तमान समय तक), एस. चन्द एण्ड कंपनी दिल्ली, 2003, पृ. 69
25. ई.ए. डी. ब्रीट, *'छत्तीसगढ फ्यूडेटरी स्टेट गजेटियर'*, 1909, पृ. 98
26. सी.एल. शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 168
27. खड़गबहादुर सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 75
28. वही
29. धानुलाल श्रीवास्तव, *'अष्टराज अम्भोज'*, पृ. 204

पीएच. डी. स्कॉलर
इतिहास अध्ययन शाला
पण्डित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर (म.प्र.)

❑❑❑

किन्नरों के लोक जीवन का सांस्कृतिक विश्लेषण

• डॉ. विजय कुमार पटीर

मानव समाज में दो लिंग ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं—नर और नारी अर्थात् स्त्री-पुरुष। इस लैंगिक समाज में जीवन जीने का अधिकार केवल स्त्रीलिंग और पुल्लिग को ही है। इसके अलावा समाज उभयलिंग या तीसरे लिंग को स्वीकार नहीं करता है। धरती के सब जीवों में नर और नारी ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। लेकिन इस जिन्दा संसार में जीवन का एक तीसरा रूप भी हमारे सामने आता है जो न तो नर है और न ही नारी, इसे उभयलिंगी या हिंजड़ा कहा जाता है। स्त्री और पुरुष के बिना इस संसार की कल्पना करना बेकार है। संसार में दो प्राणी ही ऐसे हैं जो तीसरे प्राणी को जन्म देते हैं, वो हैं नर और मादा। किन्नर किसी भी तरह बच्चा नहीं जन्म सकते, इसलिए आज तक मानव समाज की नजर में वे तुच्छ माने जाते हैं। हमारे इस समाज में किन्नर का पैदा होना या किन्नर बनना अच्छा नहीं माना जाता, यही कारण है कि हम इन्हें इंसान भी नहीं मानते और न ही इनको कोई अधिकार देना चाहते हैं। किन्नरों का लोक जीवन आम समाज से कुछ अलग होता है। कुछ ऐसी परम्पराएं, गीत, लोक भाषा और मान्यताएं इनके समाज में मिलती है, जिससे इनकी संस्कृति कुछ विशिष्ट हो जाती है। अभी तक किन्नर समाज का लोक साहित्य या लोक जीवन लिपिबद्ध नहीं हुआ है। यहाँ हम इस शोध आलेख में किन्नरों के लोक जीवन का सांस्कृतिक विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे—

(1) किन्नरों की मान्यताएँ और परम्पराएँ

हर एक समाज और सम्प्रदाय की अपनी मान्यताएँ और परम्पराएँ होती है। ये मान्यताएँ और परम्पराएँ रूढ़िवादी है जो आदिकाल से चली आ रही है। किन्नर समाज की भी अपनी मान्यताएँ और परम्पराएँ हैं। हिंजड़े जब बधाई पर

जाते हैं और सामने कोई हिंजड़ा, वाल्मीकि (भंगी) या भरा हुआ घड़ा मिल जाता है तो ये उसे शुभ मानते हैं। इसके अलावा अगर इन्हें लखारा मिल जाता है तो उसे भी ये शुभ मानते हैं। यदि कोई किन्नर मर जाता है तो इस मरे हुए हिंजड़े के लिए बृहस्पतिवार को जोत-बत्ती की जाती है। किन्नर खुशी के मौकों पर ही दूसरों के घरों में जाते हैं। मरे हुए (मातम वाले घर) घर में नहीं जाते हैं। हां अड़ौस-पड़ौस, साथी-मित्र या रिश्तेदार के घर में मातम के लिए अवश्य जाते हैं। हिंजड़े के हाथ में चूड़ी और नाक में कोका होना बहुत जरूरी है। जब हिंजड़े एक-दूसरे के डेरे में जाते हैं तो उनका मान-मर्यादा के साथ आदर भाव किया जाता है। उनको भोजन करवाया जाता है और जाते समय कुछ रुपये भी दिये जाते हैं। अगर राह चलता किन्नर भी डेरे में आ जाता है तो उसे चाय-पानी दिया जाता है और जाते समय उसे भी रुपये दिये जाते हैं। इस रुपये देने की प्रथा को राहदारी कहा जाता है। घर/डेरे में आने वाले किन्नर को मेहमान कहा जाता है। सुबह जब किन्नर घरों में बधाई लेने के लिए जाते हैं तो माता का गुणगान कर, गुरु की आज्ञा लेकर, गुरु के पैर छूकर जाते हैं। जिस घर में हिंजड़े बधाई मांगने जाते हैं उस घर में लगे पौधों के फूल ये कभी नहीं तोड़ते हैं। बधाई का सामान ये अपने भण्डार घर में रखते हैं।[1]

किन्नर अपने गुरु या पति के लिए करवा चौथ भी रखते हैं। यदि किन्नर किसी को खुशी से पैसे दें तो उसे लोगों को अपनी अलमारी में रखना चाहिए, इससे बरकत मिलती है, यह भी एक मान्यता है। भारत में जो लोग पुराने कपड़े लेकर नये बर्तन देते हैं, या बर्तन बेचने वाली जाति के लोग हिंजड़ों के पैर छूते हैं, इस जाति की स्त्रियाँ हिंजड़ों को देखकर घूँघट निकाल लेती है और किन्नरों के पैर छूती है, दरअसल ये लोग किन्नर को माता मानते हैं।[2]

जिस औरत के बच्चे नहीं होते हैं या जिस औरत के लड़का नहीं होता है, उसे किन्नर गेहूँ या चावल के दाने के साथ ग्यारह रुपये देते हैं। किन्नर मन ही मन में अपने ईश्वर से प्रार्थना कर ये दाने औरत को दे देते हैं। ये औरत इन पैसों और दानों को कपड़े में बांधकर अपने मन्दिर या घर में साफ जगह पर छोड़ देती है, मान्यता है कि ऐसा करने से औरत को बच्चा हो जाता है। इसे गोद भराई (भरवाई) कहा जाता है। हिंजड़ों को जो *राहदारी* दी जाती है, उन रूपयों को डेरे का गुरु या डेरेदार जब देता है तो पहले अपने हाथ में पहने चूड़े (चूड़ियां) से स्पर्श कराता है फिर देता है। सामान्य समाज में भी एक धारणा यह है कि जब किन्नर खुश होकर किसी को रुपये देता है तो उसे अपने पर्स में रखने से बरकत होती है।[3]

जिस क्षेत्र में किन्नर बधाई मांगते हैं, उसे 'बिरत' कहा जाता है। जिन घरों में किन्नर बधाई मांगने जाते हैं, उस घर वाले उसे निश्चित भेंट (रुपये) या चीज देने की बात करते हैं या हिंजड़े अगर ज्यादा ऊंच-नीच करते हैं तो घरवाले उनकी बधाई (रुपये या भेंट देना) देना निश्चित कर देते हैं, इसे *लाग बाँधना* कहते हैं।[4]

किन्नर के पास (डेरे में) एक गागर होती है। गागर एक तरह की तिजोरी होती है। दरअसल मटका (घड़ा) या टोकणी को गागर कहा जाता है, इस गागर पर एक लोटा रखा जाता है। इन दोनों को सुन्दर सजाया जाता है। इस गागर को केवल तभी खोला जाता है जब इसमें रुपये डाले जाते हैं। खाली गागर को नहीं खोला जाता। इस गागर को वर्ष में एक बार पूर्णमासी (पूर्णिमा) के दिन ही खोला जा सकता है। इसको गल्ला भी कहा जाता है।[5]

किन्नरों के डेरे में एक पानदान और गालदान भी होता है। पानदान में सात तरह की चीजें होती हैं—सुपारी, कत्था, पान, इलाइची, चूना, सौंफ, मिसरी आदि। डेरे में जब अन्य किन्नर या मेहमान आते हैं तो उन्हें पानदान पेश किया जाता है। मेहमान की इससे मेहमाननवाजी भी होती है। गालदान थूकने या बीड़ी के टोटके या बीड़ी का गुल डालने के काम आता है। गालदान की एक कहानी इस प्रकार मिलती है—एक दिन एक वेश्या (कंजरी) की इज्जत कुछ गुण्डे लूट रहे थे या लूटने की कोशिश कर रहे थे, उसी वक्त एक हिंजड़े ने आकर उसकी जान बचाई और गुण्डों को भगा दिया। उस कंजरी ने हिंजड़े को अपनी धर्म बहिन बना लिया। कंजरी इस हिंजड़े को अपने कोठे पर लेकर आई। तब इस हिंजड़े ने इस गालदान के बारे में पूछा कि यह क्या है? कंजरी ने कहा यह बर्तन पान थूकने आदि के काम आता है। कहते हैं कि इसके बाद कंजरी ने यह गालदान हिंजड़े को उपहार में दे दिया था। जब कोई किन्नर किसी डेरे में मेहमान के रूप में आता है तो उसे हुक्का-पानी भी दिया जाता है। भारतीय हिन्दू सम्प्रदायों में साढ़े बारह (12)) पंथ माने जाते हैं। इनमें आधा पंथ (बाकी बारह पंथों को छोड़कर) किन्नरों का माना जाता है। जब ये किन्नर किसी साधु-महात्मा या भगवा धारी बाबा से मिलते हैं तो ये खुद को उससे ऊँचा मानते हैं। ये किन्नर उस साधु के पांव नहीं छूते हैं। दरअसल इनका मानना है कि किन्नर साधुओं से भी ऊपर होते हैं क्योंकि हमने अपने लिंग का त्याग किया है जबकि साधु ने अपने लिंग का त्याग नहीं किया है।[6]

(2) किन्नर का बचपन, जवानी और बुढ़ापा—

किन्नर का बचपन इनके माँ-बाप के घर ही बीतता है। पहले हिंजड़े अपने

डेरे में किन्नर को बचपन में ही ले जाते थे। उनको अपने डेरे में रखकर किन्नर समाज की शिक्षा दी जाती थी। किन्नर का बचपन अपने माँ-बाप के घर में ही बीतता है, परन्तु यह बचपन बड़ा कठिन होता है। गली-मुहल्ले के साथ-साथ इनको परिवार से भी अपमान सहना पड़ता है। किन्नर बहुत कम पढ़ लिख पाते हैं। क्योंकि माँ-बाप भी समाज से डरते-झिझकते इनको स्कूल नहीं भेज पाते। बचपन में ही इनको यह अहसास करवा दिया जाता है कि तुम हमारे परिवार-समाज के सदस्य नहीं हो। आपको इस समाज में रहने का कोई अधिकार नहीं हैं। पहले तो जब हिंजड़ों को यह पता चलता था कि फलाना शिशु किन्नर है तो वे उसे जबरदस्ती अपने समाज में मिला लेते थे। या ये बच्चे जब कुछ बड़े हो जाते थे, तो परिवार वाले खुद ही इनको किन्नर समाज को सौंप देते थे। परन्तु अब कोई भी किन्नर शिशु को जबरदस्ती नहीं लेकर जा सकता। आज तो अठारह-बीस साल का व्यक्ति जो खुद को किन्नर मानता हो, स्वयं अपनी इच्छा से किन्नर समाज में शामिल हो जाता है।

देखा जाये तो इनकी जवानी भी बड़ी मुश्किलों से गुजरती है। ये ताली मारकर घर-घर बधाई मांगने जाते हैं। क्या इन्हें इस काम के लिए शर्म नहीं आती होगी? क्या इनकी कोई इज्जत नहीं होती? इनकी सारी जवानी बधाई मांगने में बीत जाती है। जवानी के बाद शुरू होता है इनका बुढ़ापा। इनका बुढ़ापा बहुत बुरा होता है। बुढ़ापे में गुरु की सेवा चेले ही करते हैं। ये चेले बुढ़ापे में अपने गुरु को एक निश्चित धन राशि भी देते हैं जिससे गुरु अपनी बची जिन्दगी आराम से काट सके। यदि गुरु के चेले गुरु की सेवा नहीं करते हैं तो गुरु पंचायत कर अपने गाँव (बधाई मांगने वाले क्षेत्र) वापिस ले सकता है। चेलों को जात-बिरादरी से भी गुरु बाहर कर सकता है। किन्नर रूखे स्वभाव के होते हैं। जिससे ये अकेलेपन के भी शिकार हो जाते हैं। यदि किसी गुरु का कोई चेला नहीं होता है या चेले काम के नहीं होते हैं तो ये किन्नर बुढ़ापे में किसी सामान्य व्यक्ति को भी गोद ले लेते हैं। अपना सब कुछ इस सामान्य आदमी को सौंप देते हैं। यहाँ तक कि अपने गांव (क्षेत्र) भी बधाई माँगने के लिए उसके नाम कर देते हैं। वे वसीयत में यह लिखते हैं कि मेरे मरने के बाद इन गाँवों (क्षेत्रों) में यह व्यक्ति बधाई माँगेगा। बदले में उसे बुजुर्ग किन्नर की सेवा करनी पड़ती है। एक ऐसा मामला भी सामने आया है जो इस प्रकार है—

गाँव बणी, तहसील राणिया, जिला-सिरसा में माई मुखत्यार किन्नर जब बूढ़ी हो गयी, बीमार पड़ गयी तो एक सामान्य व्यक्ति आलम ने उसकी खूब

सेवा की। माई मुखत्यार ने अपना सब कुछ, घर-गाँव (बधाई माँगने वाला क्षेत्र) आलम के नाम कर दिया। माई मुखत्यार के मरने के बाद आलम ने बधाई माँगनी शुरू की थी। आलम जब बधाई माँगने के लिए जाता था तो अपने साथ दूसरे हिंजड़ों को भी रखता था, ये हिंजड़े मजदूरी, किराये पर आते थे। आलम ने माई का पुराना घर बेच दिया था। यह बात भी कही जाती है कि आलम के बधाई मांगने पर बहुत से किन्नर खिन्न थे मगर यह लाठी के जोर पर बधाई मांगता था। क्योंकि माई मुखत्यार ने यह अधिकार उसे दिया था। आलम एक विवाहित व्यक्ति था, उसके बच्चे भी थे। आलम के मरने के बाद यह विरासत हाथ से निकल गई। क्योंकि यह विरासत केवल आलम को मिली थी, उसके बच्चों को नहीं। आलम के मरने के बाद हिंजड़ों की पंचायत हुई और माई मुखत्यार की गद्दी जो आलम को मिली थी उसे अब एक किन्नर के हवाले कर दिया गया है। अब इस क्षेत्र में एक वास्तविक हिंजड़ा ही बधाई मांगता है (व्यक्तिगत साक्षात्कार पूनम महंत-21.03.2020)। अगर चेले ढंग के नहीं होते हैं तो किन्नर गुरु का बुढ़ापा मुश्किल से गुजरता है साथ में यह भी उसे अहसास होता है कि इस दुनिया में मेरा कोई नहीं है। वैसे गुरु के पास धन की कमी तो नहीं होती परन्तु वारिस ढंग का न होने की वजह से इनको बहुत दुख होता है। अगर चेले सही हों तो किन्नर अपना सारा धन इन चेलों में बांट देता है, और खुशी-खुशी इस संसार से विदा हो जाता है। ये गुरु अपने बुढ़ापे में तीर्थ यात्रा भी करते हैं और दान पुण्य भी।[7]

(3) शाप और आशीर्वाद

सामाजिक मान्यता यह है कि किन्नर किसी को भी शाप दे सकते हैं। लोग इनके शाप से बहुत डरते हैं। परन्तु कभी भी असली किन्नर किसी को शाप या बद्दुआ नहीं देता हैं। असली किन्नर को लोग बधाई जैसी दे देते हैं वे उसी में खुश हो जाते हैं। किसी के साथ जोर-जबरदस्ती नहीं करते हैं। परन्तु कई बार असामाजिक तत्व इनका उपहास उड़ाते हैं गाली देते हैं तब ये मजबूर हो जाते हैं। बाकी इनका माहौल रूखा होता है, गाली तो इनकी जुबान पर ही रहती है पर वह गाली किसी सामान्य जन को नुकसान पहुंचाने वाली नहीं होती। वह उनकी एक भाषा है। ये कभी भी किसी का बुरा नहीं करते, बुरा नहीं सोचते, बुरी बात नहीं कहते हैं। इसके अलावा भी इनकी एक सोच यह रहती है कि अगर हम इनको (सामान्य जन/समाज) शाप या बद्दुआ देने लगे तो हमारा गुजारा कैसे होगा? हमारा पेट कैसे भरा जायेगा? हम इस समाज से ही तो माँगते हैं, ये समाज ही हमारा अन्नदाता है, भला हम इनके बारे में गलत क्यों कहेंगे?

(4) किन्नरों (हिंजड़ों) के लोक वाद्य

भारतीय समाज में वाद्यों का सम्बन्ध देवी-देवताओं से माना जाता है। भगवान शिव के नाच के समय देवी लक्ष्मी का गायन, सरस्वती की वीणा वादन, इन्द्र से वेणु, ब्रह्मा से करताल वादन का उल्लेख पुराणों में मिलता है। तत वाद्य का सम्बन्ध देवताओं से, सुषिर वाद्य का सम्बन्ध गन्धर्वों से, अवनद्ध वाद्य का सम्बन्ध राक्षसों से और घन वाद्य का सम्बन्ध किन्नरों से माना जाता है। घन वाद्य में आने वाले वाद्य यंत्र है—झुनझुना, घुंघरू, घंटा, जय घंटा, जल तंरग, टल्ली, खड़ताल, चिमटा, मंजीरा, झांझ, थाली, रमझोल, श्रीमण्डल, कागरछ, तारपी आदि।

तंत्र वाद्यतुं देवानां गंधर्वाणां च शीषिरम्।
आनंद्ध राक्षसानांतु किन्नराणां धनं बिदुः।।
निजावतारे गोबिंद सर्वमेवानयत क्षितौ।।[8]

(मतबल यह है कि तत् वाद्य देवताओं से, गन्धर्वों से, अनबद्ध राक्षसों से और घन किन्नरों से सम्बन्धित होते हैं। जब कृष्ण ने अवतार लिया तो वह उन चारों तरह के वाद्यों को वसुन्धरा पर लेकर आया।)

वर्तमान समय में जब किन्नर घरों में बधाई माँगने जाते हैं तो अपने वाद्य यंत्र भी साथ लेकर जाते हैं। राजस्थान में किन्नर बधाई (जन्म, विवाह आदि खुशी के अवसर पर) मांगने जाते हैं तो बधाई वाले घर में ढोलक, खंजरी, दायरा (दारिया/दारिया) बजाते हैं। हरियाणा में ढोलक और हारमोनियम बजाते हैं। पंजाब में दायरा और ढोलक बजाते हैं अर्थात्—आज उनके लोक वाद्य इस प्रकार हैं—ढोलक, दायरा (ढफ, ढफली, चंग, दारियो), खंजरी, हारमोनियम और मंजीरा। लेकिन इन सब से श्रेष्ठ वाद्य यंत्र इनकी ताली है। इनकी ताली के कई प्रकार हैं जैसे-कलाम ताली, फक्कड़ ताली, खांजरा ताली, भीलप्पन ताली, खैरगल्ला ताली, निमंत्रण ताली और चिसस्पन ताली। इन तालियों के माध्यम से ही किन्नर अलग-अलग भाव भंगिमा भी प्रकट करते हैं तथा गुप्त रूप से इनके कई अर्थ भी निकलते हैं।

ये बात-बात पर ताली बजाते हैं, गाते हैं तो ताली बजाते हैं, नाचते हैं तो ताली बजाते हैं। ताली आदि मनुष्य का वाद्य माना गया है। इस आदि वाद्य को इन्होंने हमेशा जीवित रखा है। किन्नरों के लोक वाद्य बजाने वाले को साजी या साजिन्दा कहा जाता है। किन्नर अपने साज (वाद्य) को बजाने के लिए साजी

को किराये (मजदूरी) पर लाते हैं। इसके अलावा इनके वाद्य इनका गुरु भाई या पति भी बजाता है। देश के अलग-अलग राज्यों के किन्नरों के अपने-अपने लोक वाद्य हैं। बधाई लेने के समय जब ये सामान्य समाज के घरों में जाते हैं तब इन लोक वाद्य यन्त्रों पर नाचते-गाते हैं। साथ-साथ ताली-पटका भी करते हैं। किन्नर राजघरानों से सम्बन्ध रखते थे इसलिए ये नाच-गाने में तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवीण होते हैं। इनके गुरु इन्हें नाच-गाने की शिक्षा देते हैं। ये सामान्य घरों में एक-दो अपने गीतों के अलावा फिल्मी गीत गाते हैं और फिल्मी स्टाइल में नाचते भी हैं। परन्तु पहले ये राजघरानों में शास्त्रीय नाच-गानों से जुड़े थे। वर्तमान समय में शास्त्रीय नाच-गाना तो नहीं रहा परन्तु ये अपनी कला किसी प्रकार जीवित रखे हुए हैं।

(5) किन्नर का विवाह

किन्नर अपने गुरु को ही अपना पति मानते हैं। उसके लिए करवा चौथ भी रखते हैं। गुरु की लम्बी उम्र की कामना करते हैं। इनका मूल विवाह तो गुरु के साथ ही माना जाता है, ये सिंगार भी अपने गुरु के लिए करते हैं। परन्तु अब किन्नर ने गुरु भाई या सामान्य लड़कों से विवाह करना शुरू कर दिया है। इन लड़कों को वो अपने डेरे में रखते हैं उसे पति मानते हैं। हरेक कार्य अपने पति के सलाह मशविरे से करते हैं। कई बार अखबार, टी.वी., मल्टी मिडिया में किन्नर विवाह की खबरें सामने आती है। दरअसल कुछ किन्नर ऑपरेशन करवा कर ट्रांसजेण्डर का रूप लेते हैं और स्वयं को स्त्री मानते हुए किसी पुरुष से विवाह कर लेते हैं। ये किन्नर अपने जीवन में जिसको एक बार पति मान लेते हैं फिर सारी जिन्दगी उसके साथ व्यतीत करने का प्रण ले लेते हैं। हालांकि ये किन्नर प्राकृतिक सैक्स नहीं कर सकते। इनका विवाह भी समाज के सामान्य विवाह की तरह होता है। भात-छुछक-गीत-बन्दोरा आदि विवाह की सब रस्में अदा की जाती है। यह विवाह एक आत्म सन्तुष्टि है। आजकल बहुत से किन्नर बच्चों को गोद ले रहे हैं। दरअसल उनके मन में बच्चों को जन्म देने, पालने-पोसने की अभिलाषा आदिकाल से रही है। हर जीव चाहता है कि मेरे बच्चे हों, मेरा आंगन भी हरा-भरा हो, मेरा वंश भी आगे बढ़े। यह प्रवृत्ति जब प्राकृतिक रूप से पूर्ण नहीं होती है तब किन्नर इसे कृत्रिम रूप से अर्जित करने का प्रयास करते हैं।

(6) किन्नर की मृत्यु

किन्नर की मृत्यु को सामान्य समाज में कई भ्रांतियों से जोड़कर देखा जाता है। किन्नरों की मृत्यु को लेकर हमारे समाज में बहुत सी झूठी बातें भी

फैली हुई है। सामान्य समाज में यह माना जाता है कि हिंजड़े को मरने के बाद जूतों-चप्पलों से पीटा जाता है उसे आंगन में घसीटा जाता है आदि, परन्तु यह बात पूर्णत: गलत है। इनकी मृन्यु भी सामान्य मनुष्य की तरह ही होती है। किन्नर की मृत्यु पर सभी हिंजड़े एकत्रित होते हैं। किन्नर के घरवालों को बुलाया जाता है। अगर किन्नर के घर वाले चाहें तो लाश को अपने घर लेकर जा सकते हैं और उसका अंतिम संस्कार अपने हिसाब से कर सकते हैं। घरवाले लाश ले जाने की कोशिश करते हैं तो लाश का पोस्टमार्टम करवाकर घरवालों को लाश दे देते हैं।

किन्नर के मरने के बाद उसके चेले चूड़ी फोड़ते हैं। दूसरे किन्नर या इनके शरीक (रिश्तेदार) आकर किन्नर की चूड़ियाँ फुड़वाते हैं और साथ में नाक का कोका, सिंगार की सब वस्तुएँ शरीर से निकाल दी जाती है। गुरु को किन्नर अपना पति मानते हैं और गुरु के मरने के बाद ये विधवा हो जाते हैं। घर में चालीस दिन तक शोक मनाया जाता है। इस दौरान किन्नर सिंगार नहीं करते, बाल खुले रखते हैं। दूसरे हिंजड़े, रिश्तेदार, दोस्त, सामान्य समाज के लोग आकर इनको सांत्वना देते हैं। किन्नर हिन्दू हो या मुसलमान दोनों को दफनाया (समाधि) जाता है। अगर कोई किन्नर मरने से पहले श्मशान में जलाने की इच्छा प्रकट करे तो उसे जलाया भी जाता है। किन्नर को साधु, महात्मा, संत, फकीर माना जाता है, इसलिए इन्हें जलाया नहीं जाता बल्कि दफनाया जाता है।[9]

प्रो. एस. पी. व्यास ने रिर्पोट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ 1891 ई. पृ. 384 का हवाला देते हुए लिखा है—'हिंजड़ों में शादी नहीं होती थी। जब कोई मुस्लिम हिंजड़ा मर जाता तो मुसलमानों को बुलाया जाता और वे उसे ले जाकर गाड़ देते थे। हिंजड़े की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसका चेला होता है। यदि चेला न हो तो उसके गुरु भाई लेते हैं। इगलास करना इनमें बदचलनी समझी जाती थी और उसको लतियां बोलते थे। हिंजड़े स्वयं दफन हेतु उपस्थित नहीं होते थे। महिलाओं की भांति घर पर बैठ कर रोते थे और चालीसवें दिन खाना पका कर हिंजड़ों को खिला देते थे। इनका खाना और कोई नहीं खाता था।'[10]

चालीसवें दिन खर्च किया जाता है। इसी दिन सभी हिंजड़ों को भोजन करवाया जाता है। इसी दिन विवाह की रस्म, भात, छूछक आदि भी होते हैं। हिंजड़े के मरने पर रात को स्यापा होता है। जो हिंजड़े शोक मनाने घर आते हैं वे स्यापा करते हुए कहते हैं—'हाय-हाय जुलमण मौत बुरी।' चालीसवीं रात को

मौलवी बुलाया जाता है, वो रात को बारह बजे कलमा पढ़ता है। उस समय हिंजड़े स्यापा करते हैं, कई बार तो इस दृश्य को देखकर मौलवी भी डर कर भाग जाता है। इस दौरान मौलवी को 11 बर्तन, रुपये, कपड़े, सोना-चांदी और दूसरा समान दिया जाता है। आंगन में एक चारपाई सजाई जाती है, यह चारपाई मौलवी को ही दी जाती है। जब मौलवी यह सामान लेकर घर से निकलता है तब हिंजड़े खूब रोते हैं और मौलवी के पीछे (जो सजाई हुई चारपाई लेकर जाता है उस चारपाई के लिए) भागते हैं। जो हिंजड़े घर/डेरे में शोक मनाने के लिए आते हैं वे जिस चीज के खाने की मांग करते हैं उन्हें वही चीज परोसी जाती है। शोक सभा में शामिल होने वाले हिंजड़े कपड़े, सोना-चांदी भी लेकर आते हैं। कई बार तो हिन्दू हिंजड़े के मरने पर ब्राह्मण बुलाया जाता है। हिन्दू समाज में मरने के पश्चात् जिस प्रकार तारगा और ब्राह्मण जाति को समान दिया जाता है। उसी प्रकार ये मृत्यु के उपरान्त मौलवी को सामान देते हैं। चालीसवें दिन इनके रिश्तेदार हिंजड़े/शरीक आकर इनका शोक समाप्त करवाते हैं। नई चूड़ियां पहनाते हैं, नाक में कोका, पैर में पायल, बिछिया आदि पहनाते हैं। सिंगार करवाया जाता है। केश बांधे जाते हैं, ताजा भोजन करवाया जाता है। चालीस दिन तक ये बासी भोजन करते हैं, सफेद कपड़े पहनते हैं। शोक में पंजाबी हिंजड़े सफेद कपड़े और मारवाड़ी हिंजड़े काले कपड़े पहनते हैं।[11]

जब हिंजड़ा मर जाता है तो उसे स्नान करवाया जाता है, नये कपड़े पहनाकर सिंगार किया जाता है। सामान्य लोग ही उसको श्मशान घाट लेकर जाते हैं, कभी-कभी हिंजड़े भी शमशान घाट जाते हैं और अपने हाथों से उसे मिट्टी देते हैं। पहले तो इनके डेरे में ही हिंजड़े को दफनाया जाता था। चालीसवें दिन उसकी सम्पत्ति चेलों में बंट जाती है। यदि कोई चेला नहीं होता है तो किन्नर समाज सहमती से तुरन्त नया चेला बनाकर उसे गद्दी सौंप देते हैं। परन्तु इनकी सम्पत्ति गुरु भाई को नहीं मिलती है। वारिस के कागजात बनाये जाते हैं।

(7) किन्नर का रहन-सहन

पहले हिंजड़े सामान्य जन से दूर रहते थे। यह माना जाता है कि ये माँस खाते थे तथा सफाई नहीं रखते थे, गाली के बिना बात नहीं करते थे। लोग इनसे डरते थे। ये भी सामान्य समाज से कटे रहते थे और स्वयं को मनुष्य नहीं मानते थे। इनके और समाज के मध्य बहुत कम संवाद होता था। इनका डेरा/घर गाँव या शहर के बाहर ही होता था। समय की मार होने पर ये रोटी मांग कर खाने लगे। इनका रहन-सहन सामान्य समाज से थोड़ा अलग

ही होता है। पहले पंजाबी हिंजड़े औरतें के कपड़े पहनते थे और मारवाड़ी हिंजड़े धोती-कुर्त्ता-पायजामा पहनते हैं। देखा जाये तो पूरे भारत में हिंजड़े प्रायः औरतों के कपड़े ही पहनते थे। पहले इन डेरों में छुआछूत भी होती थी। अगर कोई हिंजड़ा नीची जात का होता था तो उसके बर्तन अलग होते थे, परन्तु अब समय बदल चुका है अब ऐसा नहीं है। पहले हिंजड़े शराब नहीं पीते थे। माँस तो ये हमेशा से खाते आये हैं। आज इनका रहन-सहन बदल गया है। ये भी सामान्य समाज की तरह साफ-सुथरे रहने लगे हैं। इन्होंने अपना खान-पान बदला है।

(8) किन्नरों की लोक भाषा

हर एक देश, समाज, वर्ग, सम्प्रदाय और धर्म की भाषा अलग होती है। किन्नर सामान्य समाज में रहते हुए भी ऐसे शब्दों का इस्तेमाल करते हैं जो दूसरे लोगों की समझ में नहीं आते हैं। यह इनकी अपनी भाषा है। किन्नर समाज से सम्बन्ध रखने वाले या स्वयं किन्नर ही इन शब्दों को बोलते हैं और अर्थ ग्रहण करते हैं। किन्नर समाज में प्रयुक्त होने वाली संकेतिक लोक भाषा के कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

गिरिया (हिंजड़े का प्रेमी, पति या रखैल), बिलपन (लड़ाई), झलकै (पैसे), डिग्गी (ढ़ोलकी), लम्बड़ (लिंग), शास्त्रे (कपड़े), भौंकनी (कुत्ता), धौंकनी (सिगरेट), चालकी वाला (रिक्शे वाला), एक बड़मा (सौ रुपये), आधा बड़मा (पचास रुपये), झमकना (नाचना), उगलदान, गालदान (पीक थूकने वाला), छिबरी (बिना लिंग का हिंजड़ा), टुलने (लड़का), खूमड़ (मुँह), टेपका (लड़का), टेपकी (लड़की), खान्जरा (धन्धा), छरिन्दा (चावल), कच्ची (शिकायत), कड़ेताल (आदमी के कपड़े), छिन्दू (हिन्दू), छिलकू (मुसलमान), भामड़ा (बर्तन), भभका (मेकअप), लुखण्डे (बदमाश), ठीबयो (सम्भोग), पीलमा (सोना), सफेदी (चाँदी), खान्जरा बाज मूरत (धन्धेवाली), फरा (धूल), खालपी (चप्पल), लुड़ खुड़ (जूं), पैरी (पायल), रीजक (दाना), कोती (हिंजड़ा रखैल), फक्कड़ (बहस), भकवई (चोरी), सात्र (औरत के कपड़े), जोग जन्म (किन्नर बनते समय जो साड़ी गुरु किन्नर को देता है), बड़मा (सौ रुपये का नोट), चोसा (ठीक), निहारन (औरत), पानकी (दस रुपये का नोट), काटका (पचास रुपये का नोट), कनवासी (टेलीफोन), खैरगल्ला (बेईमानी, किन्नरों के क्षेत्र में बेईमानी करना), रिड़ी (गेहूँ), सड़कणा (गेहूँ), सिपरी (देगची), गुथी (पर्स), पानकी (रोटी) आदि।

(9) मुहावरे और लोकोक्तियां

हिंजड़ों से संबन्धित कुछ मुहावरे और लोकोक्तियां हमारे समाज (विशेषकर राजस्थानी भाषा) में कही जाती है। कुछ इसी प्रकार की लोकक्तियां और मुहावरे प्रो. एस. पी. व्यास की पुस्तक भारतीय इतिहास में थर्ड जेण्डर : नाजिर (हिंजड़ा) वर्ग में दर्शायी है।[12] जो इस प्रकार है—

1. हिंजड़ा किसै दिन कतार लूंटी ही?
2. मर-पड़ खसम करघो अर वोई हींजड़ो नीसरचायो।
3. नाजर जी बेल बधज्यो, क वस म्हारै ताई।
4. जैसे नपुंसक नाह मिलेतो कहै लगि नारि सिंगार बनावे?
5. सारे जग जीति लियो, हींजड़े के जाये ने।
6. बारे नाचे बांदरियो, मांये नाचे नाजरियो।
7. हिंजड़े की कमाई मूछ मुंडाई में गयी।

(10) किन्नर गीत

किन्नरों के अपने लोक गीत होते हैं। जब बच्चा जन्मता है तो ये बधाई वाले घरों में लोरी गाते हैं। विवाह के समय समाज के प्रचलित गीत या फिल्मी गीत गाते हैं। रातीजोगे या माता को मनाने के लिए ये माता की आरती गाते हैं। इसके अलावा जब इनका खुद का विवाह होता है तो आम घरों के प्रचलित गीत भी गाते हैं। किन्नर मरने के बाद स्यापा करते हैं। किन्नरों के लोक गीत इस प्रकार हैं—

(1) लोरी

जब किसी के पुत्र उत्पन्न होता है तो किन्नर उनके घरों में जाते हैं। बच्चे को गोद में खिलाते हैं। लोरी गाने से पहले ये आरती गाते हैं, उसके बाद लोरी। भारत में यह लोरी अलग-अलग भाषाओं में, अलग-अलग प्रान्तों में, अलग-अलग गाई जाती है। हनुमानगढ़ और श्रीगंगानगर जिले पंजाबी संस्कृति के हिस्से माने जाते हैं। यहाँ की बोली में पंजाबी पुट है, इसलिए इनकी लोरी में पंजाबी लोरी भी मिलती है।

(अ) लोरी (पंजाबी भाषा)[13]

आ काका बे तेनू देवां लोरियां,
तेरे लख-लख सगन मनावां।
वड़ियां उमरां वाळां होवै, तेरे ब्याव तेरे आवां।
सगना दी लोरी तेरी दादी दवावै, ते दादा बंडै खण्डा बोरियां

प्यौ दी पगड़ी नूं दाग नां लांवीं, मां दा मनणा केणा।
आ काका .....
सगना दी लोरी तेरी ताई दवावै, ते ताऊ बंड़ै खण्डा बोरियां
ऐस गळी मेरा आणा जाणा बिच गळी दे कूड़ा
पाभो मंगै मुंदरियां जिठाणी मंगै चूड़ा।
छोटा देवर बां मरोड़े, छणकै मेरा चूड़ा।
मेरे चूड़े दा रंग गूड़ा, आ काका बे .....
जीं दिन काकै जनम ले लया, पेरां पाई जूती
मासी अे दी हराम जादी, नानी सोकण लूची
ओ जा चौबारै सूती, ओदा आटा खागी कुती
ओदे घरवाळै ने कुटी ते नाळै खुसरां नै गुत पटी। आ काका .....
जीं दिन काकै जन्म ले लया, घर घर वंड़ो शक्कर
दादी अेदी हंगण बैठी लेळी (भेड़) नै मारी टक्कर
आ गई तंदा (लुढकणा) तो पार
ओने पिण्ड दा किता कुम्हार, बेगी गधै ते थापी मार
नानी इक तै नानै च्यार
लावां (फेरा) लेंदी कुड़मां (सगा) नाळ
आ काका .....
जीं दिन काकै जन्म ले लया दीवे पायो तेल
नानकियां दे घर वड़ण बधाइयां, दादकियां घर बेल
गवांडी दे घर बेल, ताई चाची दे घर बेल
अे दी नानी चढ़ गी रेल, अे दा नाना चोवे तेल
आ काका .....

(आ) लोरी (राजस्थानी भाषा)[14]

गीगा थारो पालणो, होलरिया थारो पालणो
घलवांऊ सामली साळ रै
आवतंड़ा रै जावतंड़ा रै थारो दादो हिंडा देवै,
छोरै री दादी लाड लडावै रै।
गीगा थारो पालणो .....
सोनै री सांकळिया गीगा ऊपर बेठ्यो मोर

मोर बिचारो के करै, नानी चुगल खोर रे।
गीगा .....
आवतंड़ा रै जावतंड़ा रै थारो तायो हिंडा देवै,
छोरै री तायी लाड लडावै रे।
गीगा थारो पालणो .....
आवतंड़ा रै जावतंड़ा रै थारो काको हिंडा देवै,
छोरे री काकी लाड लडावै रे,
गीगा थारो पालणो .....

(इ) लोरी (राजस्थानी भाषा)[15]

लोरी म्हारा होलर, लोरी रे
गाय भी आई घर गोरी, म्हारा होलर रे, लोरी रे
सगना री लोरी तेरी दादी दिरावै, दादो बांटै खांड बोरी
लेरी म्हारा .....
गाय भी आई घर गोरी, म्हारा होलर रे, लोरी रे
सगना री लोरी तेरी मां दिरावै, बाबो बांटै खांड बोरी
लोरी म्हारा .....
गाय भी आई घर गोरी, म्हारा होलर रे लोरी रे
सगना री लोरी तेरी ताई दिरावै, तायो बांटै खांड बोरी
लोरी म्हारा.....
गाय भी आई घर गोरी, म्हारा होलर रे, लोरी रे
सगना री लोरी तेरी काकी दिरावै, काको बांटै खांड बोरी
लोरी म्हारा .....
टर्र-टर्र-टर्र .....

(2) देवी का गीत (माता का गीत)[16]

किन्नर मुर्गे वाली माता को मानते हैं। इसे बहुचरा माता कहते हैं। किन्नर जब माता की रात जगाते हैं या कोई शुभ काम करते हैं तो माता का लोक गीत गाते हैं। बधाई वाले घर में भी जब किन्नर लोरी गाते हैं तो पहले माता का गीत या गीत की कुछ लाइनें अवश्य गाते हैं।

तेरी लाडली जगावै जोत मैया तेरी लाडली
जो तेनू ध्यावै मइया सो फल पावै
तेरे द्वारै मइया खाली न जावै
सिंवर-सिंवर फल पावै।
तेरी लाडली .....
ऊँची पहाड़ी मइया मंदिर तेरा
जगती है ज्योतां दूरों दिसदा है डेरा
चारों तरफ में धाम, मइया तेरी लाडली।
तेरी लाडली .....
अंधे नूं आंख मइया, कोढ़ी नू काया
बांझो दी गोद भराय, मइया तेरी लाडली
तेरी लाडली .....
नंगी-नंगी पेरां मइया अकबर आयो
बण सोनै गो छतर चढ़ायो, मइया तेरी लाडली
तेरी लाडली .....
कच्ची-कच्ची खुई, ठण्ठा जळ पाणी
बठै संता नै होम रचायो, मइया तेरी लाडली
तेरी लाडली .....
कौन चढ़ावै मइया धजा नारियल
कौन चढ़ावै गळ हार, मइया तेरी लाडली
राजा चढ़ावै मइया धजा नारियल
राणी चढ़ावै गळ हार
कांई रै कारण मइया धजा नारियल,
कांई रै कारण गळहार,
दूधो रै कारण मइया धजा नारियल,
पूतो रै कारण गळहार
तेरी लाडली .....
कहाँ बसै मइया काळी भवानी कहाँ बसै महावीर
दूर कलकते मइया काळी भवानी अळीगंज महावीर
तेरी लाडली .....

आओ माई जी भला, जागो माई जी भला
आज हमारे बिगड़े कारज सुधारो मइया जी भला
सुहागण के घर ढोलक बाजी जागो मइया जी भला
बहू जीवै, बन्ना जीवै, जीवै सांई जी भला
हाळी जीवै, पाळी जीवै, जीवै सांई जी भला
जच्चा जीवै, बच्चा जीवै, जीवै सांई जी भला
मइया अस्सी कोस चलावै, मइया झोळी गळै मांय आण समावै
मइया घर-घर मांय आण समावै, मइया तेरी लाडली
तेरी लाडली .....।

(3) स्यापो (मातम)

(1)

हाय हाय, चंदरी मौत बुरी
हाय हाय, चंदरी मौत बुरी
(इस लाइन को हाय हाय, जुलमण मौत बुरी भी कहा जाता है)
की खट्टिया की खादा नीं चंदरी मौत बुरी
गुरुआं दा जस खट्टिया नीं चंदरी मौत बुरी
कमळे तेरे चेले वे चंदरी मौत बुरी
हाय हाय, चंदरी मौत बुरी
सूळां दा बिछोणा वे चंदरी मौत बुरी
हाय हाय, चंदरी मौत बुरी

(2)

की होया की होया लिखियां ना मुड़ियां
हाय हाय लिखियां नां मुडियां
केहड़ी राहे पै गी नीं लिखियां ना मुड़ियां
हाय हाय लिखियां ना मुडियां
चेलेआं भेस वटा लए लिखियां ना मुड़ियां
हाय हाय लिखियां ना मुड़ियां
हाय हाय लिखियां ना मुड़ियां

(3)

हाय हाय मां दी ए आन्दरे नीं वेख वे
की होया की होया मां दी ए आन्दरे नीं वेख वे
तेरा ज्याणां ना वणदा नीं मां दी ए आन्दरे नीं वेख वे
तेरियां बहुतियां लोडां नी मां दी ए आन्दरे नीं वेख वे
भाइयां दी बांह टुटगी नीं मां दीए आन्दरे नीं वेख वे
हाय हाय मां दी ए आन्दरे नीं वेख वे

(11) किन्नरों के देवी-देवता

किन्नर सभी धर्मों में होते हैं। ये अपने धर्म के अनुसार भगवान, अल्लाह, वाहे गुरु और जीसस को मानते हैं। मुसलमान किन्नर नमाज पढ़ते हैं और फकीरों की दरगाह पर भी जाते हैं। ये बहुचरा देवी को मानते हैं। हिन्दू किन्नर बहुचरा देवी के साथ-साथ हिन्दू धर्म के सब देवी-देवताओं को मानते हैं। ये पीर-फकीरों को भी मानते हैं। दरअसल देखा जाये तो किन्नर किसी भी धर्म में पैदा हो वह सभी धर्मों को मानने वाला होता है। वह सभी धर्मों के लोगों के घरों में बधाई के लिए जाता है। ये किन्नर बहुचरा देवी का रातजगा करते हैं और खुशी के लिए चौराहे पर मुर्गा छोड़ते हैं। मुर्गे वाली माता का रातजगा मंगलवार को होता है। माता (देवी) के भोग के लिए गुलगुले बनाये जाते हैं। इसके अलावा छोला-पूरी, नारियल, फ्रूट आदि चढ़ाये जाते हैं।

तमिलनाडु के विल्लूपुरम् जिले के कुवागम गाँव में प्रत्येक वर्ष एक उत्सव और सम्मेलन होता है। यह स्थान किन्नरों का तीर्थ स्थल माना जाता है। इस उत्सव में देश भर से किन्नर एकत्रित होते हैं। नये वर्ष की पहली पूर्णिमा को शुरू होकर यह उत्सव 18 दिन तक चलता है। इस गांव में अरावन भगवान का मन्दिर है और इस मन्दिर में अरावन के शीश की पूजा होती है। यहाँ किन्नर एकत्रित होकर अरावन कथा कहते हैं, गीत गाते हैं, नाचते हैं। 17वें दिन पुरोहित मंदिर में विशेष पूजा करता है। किन्नर अरावन से विवाह करते हैं और उसके नाम का मंगल सूत्र पहनते हैं। यहाँ किन्नरों का विवाह अरावन की मूर्ति से होता है। 18वें दिन सारे गाँव में अरावन की मूर्ति को घूमाया जाता है फिर उस मूर्ति को तोड़ देते हैं। किन्नर जो अरावन के नाम का मंगल सूत्र पहनते हैं उसे 'थाली' कहा जाता है। 18वें दिन ये दुल्हन बनी हुई किन्नरें अपना मंगल सूत्र तोड़ देती है, श्रृंगार मिटा देती है। दूसरे दिन वापिस विधवा हो जाती है। अपनी चूड़ियां तोड़ते समय ये किन्नर बहुत विलाप करते हैं। अरावन की मौत और किन्नरों के मातम के साथ

ही यह उत्सव/सम्मेलन समाप्त हो जाता है। इस अरावन मन्दिर को कुतान्दवर मंदिर भी कहा जाता है। तमिलनाडु के ही कई स्थानों में 'मयना कोल्लई' त्यौहार मनाया जाता है। यह त्यौहार दस दिन तक चलता है। इस त्यौहार में किन्नरों को देवी के रूप में पूजा जाता है। तमिल भाषा में इन देवियों को आंग्ला या अंकला अम्मा भी कहा जाता है। लोग इन देवियों को काली माता का अवतार भी मानते हैं। कर्नाटक में किन्नरों को देवी शक्ति का अवतार माना जाता है। लोग इनकी पूजा करने के लिए इनको अपने घरों में बुलाते हैं और आशीर्वाद लेते हैं। यह दस दिन का उत्सव शिव रात्रि को समाप्त हो जाता है।

निष्कर्ष

किन्नरों का जीवन यद्यपि आज भी हाशिये पर है परन्तु इनका लोक जीवन समस्त भारत में एक अलग विशिष्ट संस्कृति के रूप में देखा जा सकता है। इनके वर्ग की अपनी मान्यताएं और परम्पराएं है। इनके लोक गीत और वाद्य नयी संस्कृति की स्थापना करते है। कुछ परिभाषित अर्थ भी अश्लीलता को प्रकट करते है जो आम समाज की आंचलिक भाषा के रूप में ही देखे जा सकते हैं। आज भी इनकी भाषा और संस्कृति अपनी प्रासंगिकता को जग जाहिर कर रही है। इसने भारतीय समाज और संस्कृति में अपना विशिष्ट योगदान निश्चत रूप से दिया है परन्तु हमने उसे सहज स्वीकृत नहीं होने दिया।

सन्दर्भ

1. भेंट वार्ता-पूनम महंत (किन्नर), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-21.03.2020
2. भेंट वार्ता-पूनम महंत (किन्नर), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-21.03.2020
3. भेंट वार्ता-मधु महंत (किन्नर गुरु), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-20.03.2020
4. भेंट वार्ता-मधु महंत (किन्नर गुरु), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-20.03.2020
5. भेंट वार्ता-पूनम महंत (किन्नर), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-21.03.2020
6. भेंट वार्ता-पूनम महंत (किन्नर), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-21.03.2020

7. भेंट वार्ता-पूनम महंत (किन्नर), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-21.03.2020
8. निबन्ध संगीत-लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ. 154, संगीत कार्यालय, हाथरस 2012
9. भेंट वार्ता-मधु महंत (किन्नर गुरु), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-20.03.2020
10. भारतीय इतिहास में थर्ड जेण्डर नाजिर (हिंजड़ा) वर्ग-प्रो. एस.पी.व्यास, एसोसिएट बुक कम्पनी, जोधपुर, 2018, पृ. 93
11. भेंट वार्ता-मधु महंत (किन्नर गुरु), किन्नर डेरा, पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-20.03.2020
12. भारतीय इतिहास में थर्ड जेण्डर नाजिर (हिंजड़ा) वर्ग-प्रो. एस.पी.व्यास, एसोसिएट बुक कम्पनी, जोधपुर, 2018, पृ. 98
13. भेंट वार्ता-पूनम महंत (किन्नर), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-21.03.2020
14. भेंट वार्ता-पूनम महंत (किन्नर), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-21.03.2020
15. भेंट वार्ता-मधु महंत (किन्नर गुरु), किन्नर डेरा, पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-20.03.2020
16. भेंट वार्ता-पूनम महंत (किन्नर), किन्नर डेरा पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-21.03.2020
17. भेंट वार्ता-मधु महंत (किन्नर गुरु), किन्नर डेरा, पीलीबंगा से डॉ. विजय कुमार पटीर की भेंट वार्ता-20.03.2020

डॉ. विजय कुमार पटीर
राजकीय छात्रावास के सामने
वार्ड नं. 11 रावतसर
हनुमानगढ़ (राज.)

❑❑❑

गरियाबंद की कमार जनजाति का बदलता आर्थिक जीवन

• प्रो. आभा रूपेन्द्र पाल

अन्तराष्ट्रीय जन संगठन में किसी भी देश के मूल निवासियों को 'आदिवासी' या 'जनजाति' शब्द से सम्बोधित किया गया है। इम्पीरीयल गजेटियर के अनुसार 'जनजाति परिवारों के एक ऐसे समूह का नाम है जिसका एक नाम तथा एक बोली हो तथा एक भू-भाग में रहते हों या उस भाग को अपना मानते हों तथा अपनी जनजाति के भीतर ही विवाह इत्यादि करते हों। इस तरह आदिवासी या जनजाति समूह परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक समूह है, जिसका सामान्य नाम है, जिनके सदस्य एक निश्चित भू-भाग पर निवास करते हैं तथा विवाह-व्यवसाय के विषयों में कुछ निषेद्याज्ञाओं का पालन करते हैं, जिन्होंने आदान-प्रदान सम्बंधी तथा पारस्परिक कर्तव्य विषयक पर निश्चित व्यवस्था का विकास कर लिया हो। बोआम के अनुसार ''जनजाति का अर्थ आर्थिक दृष्टि से ऐसा स्वतंत्र जनसमूह जो एक भाषा बोलता है और बाह्य आक्रमण से सुरक्षा के लिए संगठित होता है।''[1]

छत्तीसगढ़ की जनसंख्या की प्रमुख विशेषता यह है कि यहां की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों का बाहुल्य है। 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या का 31.76 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति की संख्या है। कठिन भौगोलिक परिस्थितियों में रहने एवं परिवहन की सीमित सुविधाओं के कारण जनजातियों का संपर्क प्रदेश के अन्य भागों से नहीं रहा, तथा वे अपने वातावरण में अलग ही आत्मनिर्भर होती रही तथा बाहरी दुनिया से उनका कोई जीवंत सम्पर्क नहीं रहा। प्राचीन एवं परम्परागत संस्कृति एवं आर्थिक क्रियाकलाप उनकी विशेषता हो गई है, जिसकी एक सामान्य संस्कृति, भाषा, राजनैतिक संगठन एवं व्यवसाय होता है, तथा जो सामान्यतः अर्न्तविवाह के नियमों का पालन करते हैं।[2] छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजातियों में एक कमार जनजाति है, जो छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले और विशेषकर गरियाबन्द में निवास

करती है। रायपुर संभाग के दुर्ग और राजनांदगांव जिले में भी कमार जनजाति निवासरत है, परन्तु इनका मुख्य निवास रायपुर जिला (वर्तमान गरियाबन्द) ही कहा जा सकता है। 1971 की जनगणना के अनुसार कमार जनजाति की जनसंख्या 19741 दर्ज है। 1981 की जनगणना के आधार इनकी जनसंख्या मध्यप्रदेश में 17517 दर्ज है जिनमें ग्रामीण क्षेत्र में 85.63 पुरुष तथा 87.62 कमार स्त्रियों की जनसंख्या है।[3]

आदिम जाति अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान रायपुर द्वारा कमार जनजाति का आधारभूत सर्वेक्षण 2006 में किया गया जिसके आधार पर कमार जनजाति की जनसंख्या 22863 पायी गयी है। कमार जनजाति की भाषा हिन्दी की छत्तीसगढ़ी बोली का बिगड़ा रूप है। यद्यपि वे कौरवों से अपनी उत्पत्ति बताते हैं, किन्तु वंश परंपरा की यह किवदंती मिथ प्रतीत होती है, जो नाम की समानता पर आधारित प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों का रेवात और धोबियों से बहुत घनिष्ठ पारिवारिक संबंध है।[4]

कौरवों से अपनी वंश परम्परा की किंवदंती के कारण कमार सैनिक सेवा को जीविका कमाने का अपना परम्परागत व्यवसाय मानते हैं अर्थात् इनका आशय है कि वे कौरवों के काल में सैनिक सेवा का कार्य करते थे। उनकी अपनी मान्यता है कि खेती और जंगलों में मजदूरी करने का काम उन्हें परिस्थितियों की लाचारी से करना पड़ता है।

यद्यपि कमार मूलतः छत्तीसगढ़ में अधिकतर पाये जाते हैं, किन्तु मध्यप्रदेश, उड़ीसा, झारखण्ड व बिहार में भी इस जनजाति के आवास के उदाहरण मिलते हैं। छत्तीसगढ़ के बाहर मुख्यतया मध्यप्रदेश के सिवनी, छिन्दवाड़ा और होशंगाबाद के आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों में कमारों के निवास के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। 19वीं सदी तक कमार अत्यन्त पिछड़ी हुई अवस्था में थें उनमें से कुछ विवरण अब सन्देहास्पद लगने लगे हैं, जैसे कतिपय अंग्रेज लेखकों ने इन्हें गुहावासी बतलाया है। आज के समय में वनों या पर्वतों में कोई भी आदिवासी समूह गुहावासी नहीं है।[5]

अंग्रेज लेखक एफ.के. हेवेट के मतानुसार कमार कृषि कार्य करने को साफ मना करते हैं और साधारणतया जंगली फलों और छोटे शिकार पर अपना जीवन-यापन करते हैं। एम.ए. शेरिंग के अनुसार कमार रायपुर के जंगलों में पाये जाते हैं, जहाँ वे जंगली जीवन व्यतीत करते हैं। वे जंगली उत्पाद पर जीवन यापन करते हैं। इन्हें कृषि से सख्त नफरत है।[6]

उन्नीसवीं सदी में लिखे गये उपर्युक्त अंशों से भी अधिक सचित्र विवरण मिलता है—वाल (1878) की 'जंगल लाइफ इन इंडिया' में। नदी की घाटी के साथ-साथ बढ़ते हुए मैं एक ऐसे स्थान तक पहुँचा जहाँ एक नितांत जंगली लोगों की बस्ती थी और जिसे उसके पड़ौसी 'कमार' के नाम से पुकारते थे। वे अपनी आदत के अनुसार गुहावासी थे तथा मछलियों और कन्दों पर जीवन-यापन करते थे। उन गुफाओं में से एक में हवा से बचने का कुल साधन बेतरतीब रखी कुछ टहनियाँ थीं, एक गुफा में मैंने कुछ मुर्गे-मुर्गियाँ तथा दूसरी गुफा में एक बकरा बंधा देखा।[7]

19वीं सदी में कमरों का जीवन-यापन स्तर क्या था? इसकी एक झलक तो अंग्रेजी में लिखे विवरणों के अनुवाद से स्पष्ट है। इन विवरणों के लगभग पौन सदी बाद डॉ. श्यामाचरण दुबे (1951) ने कमारों की अर्थव्यवस्था को पुनः वर्गीकृत किया।[8]

उनके व्यवसायों में टोकरी बनाना भी सम्मिलित है, जिसमें उन्हें बसोरों (बाँस की सामग्री बनाने वाली जाति (वर्ग)) से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। शासकीय सहायता योजना के अन्तर्गत उन्हें कम दामों में बाँस उपलब्ध कराया जाता है और चटाइयों एवं टोकरियों की सीधे ही खरीद की जाती है। बदलते जमाने में कमारों ने कृषि करना भी सीख लिया है और 1981 में 444 कमार परिवारों के पास स्वयं की छोटी ही सही कृषि भूमि थी।[9]

कमार जनजाति के लोग मई-जून में मत्स्य आखेट, वनोपज का संकलन एवं वृक्षों आदि को काटने जैसी गतिविधियों में संलग्न रहते हैं जून-जुलाई में धान, मक्का व कद्दू जैसी सब्जियों को बोना, वनों से कन्दमूल फल एकत्रित करना एवं टोकरियों का निर्माण आदि में व्यस्त रहते हैं। अगस्त-सितम्बर में फसल की देखरेख, वनों से संबंधित श्रमिक कार्य में तथा सितम्बर-नवम्बर में फसलों की कटाई व बाँस-बर्तन तथा दिसम्बर-फरवरी में आखेट, वनों से खाद्य संकलन व फरवरी-अप्रैल में मत्स्य आखेट, कृषि भूमि तैयार करना, खाद्य संकलन जैसे गतिविधियों में वर्ष भर परिश्रम करके जीविकोपार्जन पूर्ण करते हैं।[10]

कमार जनजाति को आर्थिक रूप से पिछड़ी जनजाति के रूप में माना जाता है, जिनकी अर्थव्यवस्था बहुत सरल एवं सामान्य है। ये अत्यंत सरल तकनीकी साधनों का प्रयोग करते हुए जीवन यापन करते हैं, जिनको उन्होंने अपनी परम्पराओं से सीखा है। किन्तु जब हम आज भी इन्हें आर्थिक रूप से पिछड़ा मानते हुए हीन दृष्टि से देखते हैं, तो वास्तव में हम उनके अदम्य साहस

और उनकी अपार क्षमताओं का परिहास ही करते हैं, कमार जनजाति के लोग अपने जीविकोपार्जन के लिए भिन्न-भिन्न साधनों का प्रयोग करते हैं। प्रत्येक कमार परिवार जीवन-यापन के लिए दो या दो से अधिक साधनों पर आश्रित हैं। कमार जनजाति के परम्परागत व्यवसाय शिकार एवं कंदमूल संग्रहण करना तथा बांस बर्तन का निर्माण करना है। शासन के कठोर नियमों के अंतर्गत वर्तमान में शिकार करना निषिद्ध है। जंगलों में जंगली जानवरों की संख्या कम होती जा रही है। इसलिए शिकार करना अब ज्यादा प्रचलित नहीं है। इनकी परम्परागत कृषि को स्थानांतरित कृषि कहते हैं। ये तीन प्रकार की होती है— *दाही, बवेरा* व *गुहादा*।[11]

वर्तमान में बहुत ही कम कमार स्थानांतरित कृषि द्वारा जीविकोपार्जन करते हैं। क्योंकि वन विभाग के द्वारा निर्मित नियमों एवं कानूनों के आधार पर जंगलों में पेंच कृषि करना अपराध माना जाता है। अत: इसकी विस्तृत चर्चा कमार समुदाय प्राय: नहीं करता है। कमार बांस बर्तन का निर्माण मुख्य रूप से करते हैं। लगभग 50 प्रतिशत कमारों का मुख्य व्यवसाय बांस की सामग्री का निर्माण है। इसकी तुलना में मजदूरी का स्थान दूसरा है और कृषि का स्थान तीसरा है। लगभग 26 प्रतिशत कमार मजदूरी करते हैं तथा बहुत कम प्रतिशत है कृषि कार्य करने वालों कमारों का।[12]

कमारों में भूमिहीन परिवारों की संख्या अधिक है। लगभग 75 प्रतिशत कमार भूमिहीन हैं। यही कारण है कि बांस बर्तन और मजदूरी करने वाले कमारों की संख्या अधिक है। खाद्य पदार्थ संग्रहण एवं वनोपज संग्रहण करके जीवन-यापन करने वाले परिवारों का प्रतिशत 5.53 है। नौकरी करने वाले कमारों का प्रतिशत लगभग 1.33 है।[13]

गरियाबंद जिले के ग्रामीण क्षेत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि इनके परम्परागत व्यवसाय में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। कमार महिलाएँ भी अपने परिवार में आर्थिक सहयोग करती हैं। कमार बच्चे अध्ययन के साथ-साथ वनोपज संग्रहण का कार्य करके परिवार की आर्थिक मदद में अपना अमूल्य सहयोग देते हैं। इसके साथ ही गरियाबंद के अधिकतर बच्चे जानवर चराने तथा घर के छोटे-मोटे कार्य, घर की रखवाली, छोटे बच्चे (अपने भाई-बहनों) की देखभाल इत्यादि कार्य भी करते हैं।[14]

कमार महिलाएँ व्यवसाय की प्राथमिकता के आधार पर मुख्य रूप से बांस बर्तन निर्माण का कार्य करती हैं। इसके साथ ही महिलाओं का सक्रिय

योगदान बनोपज संग्रहण में भी होता है। कमार महिलाएँ सामान्यत: मजदूरी का कार्य कम करती है वनों से वनोपज संग्रहण करके बाजार में विक्रय हेतु ले जाने का कार्य पुरुष एवं महिलाएँ साथ-साथ करते हैं। कमारों की पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं व्यक्तिगत आर्थिक क्रियाकलापों के अतिरिक्त उस परिवार के सदस्यों की संख्या तथा उनकी कार्य क्षेमताओं के द्वारा ही उनका आर्थिक संतुलन होता है। कमारों में बुजुर्ग जिनकी शारीरिक क्षमता प्राय: खत्म होने लगती है, सामान्य गृह कार्य करते हुए अपना योगदान देते हैं। इनकी यह विशेषता है कि ये अधिक आयु होने के पश्चात् भी अपनी उपस्थिति का अहसास कराते हुए परिवार की आर्थिक मदद करने का प्रयास करते हैं।[15]

समस्त आर्थिक गतिविधियाँ पारिवारिक स्तर पर एवं आपसी सहयोग पर आधारित होती हैं। महिलायें भी आर्थिक गतिविधियों में सहभागिता दर्शाती हैं। परिवार के समस्त सदस्य क्षमतापूर्वक आर्थिक कार्यों में संलग्न रहते हैं एवं मिल-जुलकर परिवार का भरण-पोषण पूर्ण करते हैं। कमार पशुपालन, खाद्य संकलन व आखेट के अतिरिक्त टोकरियों के निर्माण में भी संलग्न रहते हैं। शासन द्वारा उन्हें कम दामों में बांस उपलब्ध करवाया जा रहा है, जिसका उपयोग भी चटाई व टोकरियों के निर्माण हेतु करते हैं। ये वर्ष भर जी तोड़ परिश्रम करते हैं। इनकी मासिक आर्थिक गतिविधियाँ निम्नवत है— मई-जून में मत्स्य आखेट, वनोपज का संकलन एवं वृक्षों आदि का काटना आदि। जून-जुलाई माह में धान, मक्का व कद्दू आदि का बोना, वनों से कंद-मूल फल एकत्रित करना एवं टोकरियों का निर्माण आदि शामिल है। जुलाई-अगस्त माह में फसलों की देखरेख, खेतों की खरपतवार निकालना, वनों से वनस्पतियाँ एकत्रित करना व टोकरियाँ बनाना महत्वपूर्ण है। अगस्त-सितम्बर माह में फसल की देखरेख, वनों से सम्बन्धित श्रमिक कार्य में संलग्न होना। सितम्बर-नवम्बर में फसल काटकर साफ करना और टोकरियों का निर्माण। नवम्बर-दिसम्बर माह में श्रमिक कार्य व खाद्य संकलन। दिसम्बर-जनवरी माह में आखेट व वनों से खाद्य संकलन सम्पन्न करना। फरवरी-मार्च में टोकरी निर्माण व आखेट कार्य सम्पन्न करते है। मार्च-अप्रैल माह में मत्स्य आखेट व आखेट जैसी गतिविधियों में प्रमुखतया संलग्न रहना एवं अप्रैल-मई में कृषि भूमि की तैयारी व खाद्य संकलन, आखेट आदि करना, महत्वपूर्ण है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण वर्ष किसी न किसी आर्थिक गतिविधि से संलग्न होकर जीविकोपार्जन पूर्ण करते हैं। इस प्रकार कमार जनजाति के जीवन-यापन के प्रमुख साधन हैं— कृषि एवं पशुपालन, वनोपज संग्रहण, बाँस निर्मित वस्तुएँ, मजदूरी, नौकरी इत्यादि।[16]

पूर्व में कमारों का प्रमुख पारम्परिक व्यवसाय स्थानांतरित कृषि करना था। मुख्यतः ये तीन प्रकार के कृषि कार्य करते थे। दाही कृषि, बेवडा कृषि एवं गुहड कृषि। स्थानांतरित कृषि को अलग-अलग राज्य के भागों में *पेढ़ा, बेवार(बेवर), गुहाड़, फडहा, दिप्पा, मादन* आदि नामों से जाना जाता है। इसे ही उत्तर पूर्वी राज्यों में झूमिंग कहा जाता है। इस प्रकार की कृषि के लिए ये एक ऐसे स्थान को चुनते थे जहाँ नियमित पानी का बहाव हो, उसके पश्चात् उस स्थान के वृक्षों को काटकर गिराया जाता है फिर वृक्षों को अलग कर लेते हैं।

मिट्टी की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उससे कटे हुए पेड़ों को जलाकर उनकी राख का उपयोग किया जाता रहा है। बची हुई शाखाओं को सुखने के बाद साफ कर दिया जाता है, इस सूखे भाग को जलाने के लिए बैगा द्वारा एक निश्चित दिन तय किया जाता है उस दिन बूढ़ा राजा(देव) की पूजा करके सूखे वृक्षों को जलाया जाता है। जैसे ही वर्षा ऋतु की बौछार पड़ती है, तब वे बीज छिड़क देते हैं तथा उस स्थान की सुरक्षा के लिए अस्थाई झोपड़ी बना लेते हैं। इस प्रकार कृषि का अन्तिम चरण पकी हुई फसल का काटना ही होता है। जब तक जंगलों पर राज्य शासन का नियंत्रण मजबूत नहीं हुआ था। जनसंख्या का दबाव इतना कम था कि जंगलों को काटकर नयी कृषि भूमि पाना सरल था, तब तक *दहिया* (स्थानांतरित) कृषि का क्रम चलता रहा। कालान्तर में कृषि तकनीकों में निरन्तर परिवर्तन, बढ़ती जनसंख्या, घटती वनभूमि और सुदृढ़ वन प्रशासन के कारण न केवल स्थानांतरित कृषि का कालचक्र बहुत छोटा हो गया बल्कि उनमें स्थायित्व भी आ गया है। छत्तीसगढ़ राज्य में केवल अबूझमाड़ ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ स्थानांतरित कृषि होती है।[17]

स्थानांतरित कृषि का प्रचलन वर्तमान में नहीं है, क्योंकि भारत शासन ने वन संरक्षण नियम, 1952 के अन्तर्गत इस प्रकार वनों के व्यक्तिगत दोहन पर प्रतिबंध लगा दिया है। अतः गरियाबंद के कमार भी इससे प्रभावित हुए हैं। परम्परागत स्थानांतरित कृषि के स्थान पर स्थायी कृषि करने लगे हैं फिर भी इनके औजार परम्परागत तरीके के ही है। खेती में लगे कमारों में से दो तिहाई के पास अपनी भूमि है। जिन पर वे स्वयं एवं मजदूरों की मदद से खेती करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि भूस्वामित्व मुख्य रूप से पुरुषों के नाम से ही है।[18]

एक सर्वेक्षण के अनुसार भी एक तिहाई कमार जोतकारों के जोतों का

आकार 1 हेक्टेयर (2.5 एकड़) से कम है। इस वर्ग के जोतकर के पास 0.46 हेक्टेयर (1 एकड़ से कुछ कम) जमीन आती है और कमारों के स्वामित्व की पाँच प्रतिशत से कम भूमि ही इस वर्ग के पास है। वास्तविकता यह है कि इस वर्ग के अधिकांश किसानों के पास केवल अपना घर बनाने और उसके बाड़े की ही जमीन होती है तथा उन्हें जीविकोपार्जन के लिए अन्य साधनों का सहारा लेना पड़ता है। भूमि तो केवल प्रतीक चिन्ह है। ये लोग तो खेतीहर श्रमिक के रुप में कार्य करते हैं अथवा अन्य व्यवसायों में लगे हैं।[19]

यहां के लगभग एक चौथाई कृषक ऐसे हैं जिनकी जोत कृषि योग्य भूमि का आकार 1 से 2 हेक्टेयर भूमि आती है। यह आकार उनके परिवारों के भरण पोषण के लिए अपर्याप्त होती है क्योंकि वर्तमान समय में भी कमार अपने परम्परागत कृषि पद्धति से ही कृषि कर रहें हैं। आधुनिक कृषि के तरीकों से अधिकांश कमार अपरिचित हैं। लेकिन कुछ लोग वर्तमान में आधुनिक खाद व बीज का प्रयोग कर रहे हैं। जिससे उनकी उपज अच्छी हो रही है।[20]

लगभग यही स्थिति उन जोतकारों की है जिनकी जोत 2 से 4 हेक्टेयर के बीच है औसतन प्रति कृषक परिवार 2.73 हेक्टेयर ही आती है। दूसरी ओर ऐसे जोतकार हैं, जिनके अधिकार में 4.0 हेक्टेयर से अधिक भूमि है।[21]

इन लोगों के पास कमारों के स्वामित्व की कुल भूमि का आधे से अधिक भाग इनमें भी लगभग 3.5 प्रतिशत खातादारों के अधिकार में एक पंशमाश से अधिक भूमि है। इनका प्रति खातेदार औसत 15.5 हेक्टेयर से अधिक हैं। इस प्रकार सीमान्त किसान और बड़े कमार भूस्वामियों के स्वामित्व की औसत भूमि में अनुपात 1:34 का है[22] अर्थात् सीमान्तक कृषकों में से प्रत्येक के पास अगर 1 हेक्टेयर जमीन है तो प्रत्येक भूस्वामी के पास 3.4 हेक्टेयर भूमि है। इस प्रकार कमार आदिवासी समुदायों में भी अधिकांश भूमि कुछ लोगों के हाथों में है और अधिकांश लोगों के पास नाम मात्र की भूमि है। ऐसी स्थिति में सीमान्त और छोटे किसानों का शोषण न केवल अन्य विकसित समुदाय के लोगों द्वारा किया जाता है। बल्कि उनके समुदाय के बड़े भूस्वामी भी शोषण का काम करते हैं।

खेती मूलत: जीवन निर्वाह के लिए की जाती है। इस पर आर्थिक लाभ-हानि के विचारों की छाप नहीं दिखायी देती है। ये प्रमुख रूप से खेती में धान, कुल्थी तथा कुटकी, मड़िया का उत्पादन करते हैं। कृषि से संबंधित त्यौहार

'नवाखाई' को यह समाज बहुत उत्साहपूर्वक मनाते हैं। कमारों को प्रकृति विशेषकर जलवायु के बारे में अनुभवगत ज्ञान काफी अधिक होता है, फिर भी इनके खेती का तरीका पुरातन प्रकार का है। अधिकांश लोग अभी भी हल और बैलों का उपयोग करते हैं। और आधुनिक उपज बढ़ाने वाली विधियों का बहुत कम प्रयोग किया जाता है।[23]

दहिया (दाही) विधि में राख का प्रयोग खाद के रूप में हो जाता था। परन्तु स्थायी कषि में आदिवासी कृषक उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिए कोई उपाय नहीं करते हैं। उर्वरकों का ज्ञान तो उन्हें है ही नहीं। इसी कारण आदिवासी क्षेत्रों में उर्वरकों का औसत उपयोग बहुत कम है जो भी उपयोग होता है वह उस क्षेत्र में निवासरत गैर आदिवासी द्वारा किया गया है। किन्तु वर्तमान में इनके संपर्क में आने वाले जनजाति कृषक इनका उपयोग शुरू कर रहें हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि सामान्य विकासखण्डों में कृषि विकास के लिये प्रचारित और उपयोग की जाने वाली, उत्पादन बढ़ाने वाली तकनीकी और विधियों को आम आदिवासी स्वीकार नहीं कर पाया है। यह इसलिए कि इनकी उपादेयता ही उसकी समझ से परे की बात है। आदिकाल से वह कृषि को जीवन यापन की विधि समझता रहा है। इस विधि को बदल पाना आसान नही है। उस पर भी यह परिवर्तन कठिन, उपयोग करना मंहगा तथा अभ्यास अन्तर्सबन्धित है। फलतः आदिवासी नहीं समझ पाया है। पुनः ये तकनीक उन फसलों से संबंधित भी नहीं है जिससे वह सुपरिचित है। उन्हें सभ्य समाज मोटे अनाज कहकर हीनभाव से देखते है और कृषि अर्थशास्त्र में उनको विकसित करना लाभप्रद नहीं समझा जाता है।[24]

गरियाबंद जिले के वन ग्राम जहां अधिकतर कमार जनजाति के लोग निवासरत है वहां व्यक्तिगत सर्वे एवं स्थल अवलोकन से पता चला कि अधिकांश कमार परिवारों के पास एक एकड़ से पाँच एकड़ कृषि भूमि तथा कुछ कमारों के पास दस एकड़ से पन्द्रह एकड़ कृषि भूमि है। यहाँ कमारों की कृषि मुख्यतया वर्षा पर निर्भर होती है। किन्तु वर्तमान में कुछ ग्रामों में निवासरत कमार परिवार शासन की योजनाओं का लाभ उठाकर कृषि कार्य कर रहे हैं। अर्थात शासन द्वारा गरियाबंद में निवासरत कमार परिवार जिनके पास दो से पांच एकड़ भूमि है। उन्हें मुफ्त में ट्यूबवेल की खुदाई करके दी जा रही है एवं साथ में बिजली भी निःशुल्क की गई है। जिससे ये कृषक कृषि पम्प की सहायता से धान एवं गेहूं की दो फसल (खरीब व रबी) करके उत्पादन में वृद्धि कर रहे हैं।[25]

जनजातियाँ अपनी आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार पशुओं का उपयोग करती रही हैं, जैसे--टुन्ड्रा प्रदेश निवासी रेनडियर का उपयोग स्लेज गाड़ी व बर्फ पर चलाने के काम में भी लेते हैं और वहीं वे इसके खाल के वस्त्र भी बनाते हैं। पशुपालक जनजातियों में उत्तरी अरब की बेडोइन (Bedouin) जनजाति है। जिसमें ऊटों को पालने का प्रचलन है। भारत में टोडा, गुज्जर, मोटिया, खस, किन्नर आदि जनजातियां पशुपालक हैं। इनमें नीलगीरी की टोडा जनजाति विशुद्ध रूप से पशुपालक है। इनमें भैसों को पवित्र मानते हैं। भैंस - शालाओं को मन्दिर माना जाता है एवं उनकी पूजा की जाती है। इनका आर्थिक जीवन पूर्णरूपेण उसी पर निर्भर है। कुछ जनजातियां पशुपालन के साथ-साथ कृषि कार्य भी करने लगी हैं।[26]

कमार अपने परम्परागत व्यवसायों को स्थायी रूप से करने में असमर्थ होते जा रहे हैं तथा इसी संकुलन की स्थिति में वे आर्थिक रूप से पिछड़ते जा रहे हैं। ये नये व्यवसायों की ओर आकर्षित हो रहे हैं तथा परम्परागत व्यवसाय कृषि को त्याग कर अब उनका रूझान पशुपालन की ओर दिखाई पड़ता है। वन विभाग के नियम एवं वनों का आवश्यकतानुसार दोहन न कर पाने के फलस्वरूप कमार स्थायी कृषि के साथ-साथ पशुपालन भी करने लगे हैं, जो उनकी जीविका का प्रमुख साधन भी बन गया है।[27]

आदिम समाजों में शिकार करना व सामूहिक आखेट एक परम्परा रही है। किन्तु वे परम्पराएं अब समाप्त हो रही है। पूर्व में शिकार इनकी अर्थव्यवस्था की रीढ़ थी। किन्तु ये परम्परागत शौक रह गए हैं। उदर पूर्ति के लिये अब भी छोटे-मोटे शिकार तथा मछली आदि मारने का कार्य परम्परागत औजारों की सहायता से वे करते हैं किन्तु इससे इन्हें कोई आर्थिक लाभ नहीं होता। कमार खरगोश, जंगली मुर्गी, तीतर इत्यादि को पकड़ने के लिये फंदा भी बनाते हैं। यह दो प्रकार का होता है। कमारों का विशेष शिकार 'चूहे' है। चूहें इनका एक स्वादिष्ट भोजन है। पशुपालन के अंतर्गत वे मधुमक्खी, दुधारू पशु, सुअर, मुर्गी और मत्स्य पालन भी करते हैं।[28]

वनों से सुपरिचित होने के कारण मधुमक्खी पालन भी इनका एक प्रमुख व्यवसाय है। छत्तीसगढ़ के वन प्रदेशों में स्वाभाविक रूप से मधुमक्खियाँ पायी जाती हैं, जिनसे रस प्राप्त करने की कला इन जनजातियों को आती है। परन्तु अभी तक यह व्यवसाय व्यवस्थित नहीं हो पाया है केवल जंगलों में स्वाभाविक रूप से पाई जाने वाली मधुमक्खियों से ही रस प्राप्त किया जाता है। यह धंधा

अल्पकालिक और कम लाभ का है, अत: आवश्यकता इस बात की है कि मधुमक्खी पालन को प्रोत्साहित किया जाए और पालने के सरल तरीकों को पालकों तक पहुंचाया जाए। आदिवासी पर्यावरण से लगे होने के कारण यह धंधा समुन्नत हो सकता है।[29]

रेशम उद्योग उन उद्योगों में से है जिनका स्वाभाविक रूप से परिचय आदिवासियों से है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि राज्य के रेशम उत्पादक जिले आदिवासी जिले हैं। इनमें बस्तर, बिलासपुर, रायगढ़, सरगुजा, रायपुर, गरियाबंद, राजनांदगांव मुख्य हैं इन भागों में साल, सागौन और मिश्रित वन पाए जाते हैं, जहां रेशम के कीड़े पालने की प्राकृतिक सुविधाएँ हैं। वनस्पति उगाकर उन पर रेशम के कीड़े पालने का काम तेजी से बढ़ा है। इसके लिए जलवायु, धरातल और मिट्टी की दशाएँ अनुकुल है। फलत: बस्तर, सरगुजा, रायगढ़, बिलासपुर में रेशम के कीड़े पालने का धंधा विकसित किया जा सका है।

इन्हीं प्रयत्नों के कारण छत्तीसगढ़ राज्य में कोसा उत्पादन में काफी प्रगति कर सका है। उपर्युक्त जिलों के तहसील, सरगुजा में अम्बिकापुर, रायगढ़ में सारगढ़, धर्मजयगढ़ एवं कटघोरा और बहुत तेजी से बढ़ा है उदाहरण के लिए सन् 1979-80 में पाले हुए कीड़ों से 147 लाख कोया (ककून्स) तथा जंगली पौधों से 90 लाख कोए प्राप्त किए गए थे। इनके उत्पान में 35 हजार परिवार लगे हुए हैं।[30]

रेशम के कीड़े पालने की महती सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर सरकार ने इस व्यवसाय को व्यवस्थित करने का प्रयास किया है और अब तो एक परिपूर्ण संचालनालय इस काम में लगा है। कीड़े पालने के व्यवसाय को प्रोत्साहन एवं आवश्यक सुविधाएँ तथा रोगमुक्त कीड़े प्राप्त करने के उद्देश्य से आदिवासी क्षेत्रों के आन्तरिक भागों में 'प्राईलेंट प्रोजेक्ट सेंटर'' स्थापित किये गये। इन केन्द्रों पर एकत्रित की गयी ऐसे स्थापित बीज केन्द्र बस्तर में भोपालपटनम, सरगुजा में अम्बिकापुर और उदयपुर, रायगढ़, में घरघोड़ा, लैलुंगा, बरमकेला, छाल और धर्मजयगढ़ तथा बिलासपुर में कटघोरा, कोरबा और पाली उल्लेखनीय है। इन बीज फार्मों से रेशम के कीड़ों के बीच जिलों के विभिन्न भागों में वितरित किये जाते हैं। प्राइलेंट प्रोजेक्ट केन्द्रों की संख्या काफी अधिक है। इनसे केन्द्रों के चारों ओर आदिवासियों को रेशम के कीड़े पालने का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। उन्हें आर्थिक अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाता है तथा उनसे उत्पादित कोये पूर्व निर्धारित कीमत पर खरीदे जाते

हैं। जिससे उन्हें उचित मूल्य मिल सके। रेशम बुनने का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। ऐसे केन्द्रों में रायगढ़ में स्थित अखिल भारतीय बुनकर सेवा केन्द्र तथा आदिवासी सहकारी विकास द्वारा जगदलपुर का टसर बुनाई केन्द्र विशेष उल्लेखनीय है।[31]

कमार विशिष्ट पिछड़ी जनजाति स्वभाव से ही देशी शराब सेवन के आदी रहे हैं तथा रोजी-मजदूरी के कार्यों के प्रति बेपरवाह व आलस्य भाव से ग्रस्त रहे हैं। वनों की क्षीणता व वनोपजों की कमी के चलते जीवन यापन के प्रश्नों ने जब सिर उठाया है तब कमार रोजी मजदूरी की ओर चाहे अनचाहे जाने हेतु बाध्य हुए हैं। कमारों का एक बहुत बड़ा वर्ग अब शासकीय निर्माण कार्य जैसे तालाब, सड़क निर्माण आदि में गोदी कार्य में जाने लगे हैं। मैनपुर व नगरी विकासखण्ड वनाच्छादित हैं जहां वन खण्डों पर नैसर्गिक कोसा कृमि पालन कार्यक्रम से कमारों को लाभ पहुंचाया जा सकता है। कमारों की प्रकृति के अनुरूप कोसा कुकून एकत्रीकरण कार्य तथा विक्रय से लाभ का ही अर्जन होगा। साल वन क्षेत्रों तथा अर्जुन पौधा (कौहा वृक्ष) रोपण क्षेत्रों में कोसा कृमि पालन विकास कार्यक्रमों की अपेक्षाएं इनके आर्थिक संबल को मजबूत कर सकेगी।[32]

राज्य की कृषि अर्थव्यवस्था में गाय एवं बैलों का उत्कृष्ट स्थान रहा है। राज्य में सर्वाधिक गाय बैल सरगुजा जिले में 16.81, रायपुर में 11.97 प्रतिशत है। सबसे कम गाय बैल 3 से 4 प्रतिशत कोरिया,कोरबा एवं कबीर धाम जिले में पाये जाते हैं। राज्य मे गायों का पालन विशेष रूप से कृषि में कार्य करने हेतु बैल उत्पन्न करने के लिये किया जाता है एवं इनका दूध स्थानीय मांग की पूर्ति करता है। पशुओं की संख्या की दृष्टि से छत्तीसगढ़ एक महत्वपूर्ण राज्य है। स्वावलम्बी कृषि क्रिया के साथ पशुपालन का घनिष्ट स्थान रहा है।[33]

गरियाबंद जिले में निवासरत कमार परिवार का जीवन यापन काफी दुष्कर है। सभी सक्षम पुरुष एवं स्त्रियाँ काम करती हैं। फिर भी घर की जरूरत की आवश्यक सामग्री जुटाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। छत्तीसगढ़ शासन द्वारा गरियाबंद जिले में निवासरत कमार परिवारों को दुधारू पशुपालन हेतु पशु प्रदान किया जाता है। एक कमार परिवार को शासन द्वारा 2 दुधारू पशु देने की योजना है जिसका प्रति इकाई लागत 50,000 है। कमार स्त्रियाँ इन दुधारू गायों से दूध दुहकर दुग्ध सहकारी संस्था में बेचकर अपने जीवन यापन में सहायता प्राप्त करते हैं। पंचवर्षीय दीर्घकालीन परियोजना 2003-03 से

2006-07 शासन द्वारा दुधारू पशु पालन के लिए रोजगारपरक कार्यों हेतु 25 लाख राशि प्रावधानित की गई है ताकि इससे कमार आर्थिक संबल प्राप्त कर सके।[34]

विभिन्न प्रकार की जलवायु दशाओं में जीवित रह सकने की क्षमता वाली सुगमता से पाली जा सकने वाली बकरी को निर्धन व्यक्ति की गाय कहा जाता है। स्वादिष्ट एवं पाचक दूध, मांस, बाल, चमड़ा एवं खाद का अच्छा साधन होने के कारण राज्य में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। 2010-2011 के सर्वेक्षण में राज्य में कुल 4088090 बकरे-बकरियाँ है। सबसे ज्यादा बकरियाँ सरगुजा जिल में 15-23 प्रतिशत पाली जाती है। सबसे कम धमतरी जिले में 0-07 प्रतिशत है।[35]

छत्तीसगढ़ शासन द्वारा कमार विकास अभिकरण, गरियाबंद कार्य योजना वर्ष 2010-2011 तक तक परिवार मूलक कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रस्तावित प्रत्येक परिवार को 1 बकरी/बकरा देने की योजना है। जिसका लाभ कमार परिवार प्राप्त कर रहा है। पांच वर्षीय दीर्घकालीन परियोजना 2002-03 से 2006-07 शासन द्वारा कृषि संसाधनों के अतिरिक्त पशुपालन रोजगार परक कार्यो हेतु बकरा/बकरी पालन हेतु 61 लाख राशि प्रावधानित की गई है। यह वितरण विभाग द्वारा प्रत्येक ग्राम के कमार परिवारों को किया जाता है। जिसका लाभ कमार परिवार समुचित रूप से प्राप्त कर रहे हैं। जो उनके जीविकोपार्जन में विशेष सहायक है।[36]

गरियाबंद जिले में निवासरत कमार मांस प्राप्ति के लिए सुअर पालते हैं। राज्य में इनकी संख्या 4,66,110 है। सबसे ज्यादा इनकी संख्या बस्तर, दंतेवाड़ा एवं सरगुजा जिले में है। यहां अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग मांस प्राप्ति एवं अर्थोपार्जन के लिये सुअर पालते हैं। कमारों को मांस एवं शराब का शौक अधिक होता है। गरियाबंद जिले के कमार सुअर का मांस खाना बहुत पसंद करते हैं। कमार अपने प्रमुख त्यौहार जैसे हरेली, होली, फागुन में सुअर मांस अवश्य ही खाते हैं।[37]

आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिये भी सुअर पालन किया जाता है। कमार विकास अभिकरण गरियाबंद कार्य योजना परिवारमूलक कार्यक्रमों के अंतर्गत 1 परिवार को 2 मादा और 1 नर सुअर प्रदान करना प्रस्तावित किया गया है। कमारों की जीवन शैली, आदत, स्वभाव, संस्कृति व परिवेश के दृष्टिक्रम में तथा सर्वेक्षण में प्राप्त उनकी अपेक्षाओं, आवश्यकताओं व

संभावनाओं के व्यापक परिदृश्य में वर्ष 2002-03 से 2006-07 तक की पांच वर्षीय दीर्घ कालीन परियोजना तैयार की गई है जिसमें शासन द्वारा सुअर पालन के लिये गरियाबंद जिले में 30 लाख 10 हजार राशि प्रावधानित की गई हैं ताकि इन कार्यक्रमों से कमार जनजाति के लोग आर्थिक संबल प्राप्त कर सकें।[38]

छत्तीसगढ़ के गरियाबंद जिले में निवासरत कमारों के लिए मुर्गीपालन आर्थिक लाभ प्राप्त करने का उत्तम साधन है। मुर्गीपालन एक सस्ता व्यवसाय है जिसमें लागत कम और लाभ अधिक होता है। घर में मुर्गी पालने पर उसके रख-रखाव एवं भोजन पर कोई व्यय नही करना पड़ता क्योंकि खरपतवार की पत्तियां, घर का बचा-खुचा भोजन, शाक-भाजी के बेकार पत्ते और अनाज की छांटन, आटा चक्की के इर्द गिर्द बिखरा अनाज, अनाज की फटकन जो प्रायः बेकार ही फेंक दिया जाता है, मुर्गी पालन में काम आता है।[39]

कमार विकास अभिकरण, गरियाबंद कार्य योजना परिवार मूलक कार्यक्रमों के अंतर्गत 1 ईकाई को 500 चूजा, परिवहन, टीका, दाना, दवाई और शेड देने की योजना है। मुर्गी पालन से कमारों को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। जिससे उनको आर्थिक सहायता मिलती है। मुर्गी/मुर्गा पालन से मांस तथा अंडा दोनों प्राप्त होता है। जिसका आहार समस्या का समाधान तथा व्यक्तिगत आय बढ़ाने के लिये करते हैं तथा कमार महिलाओं व घर के बच्चे भी मुर्गीपालन कर सकते हैं। क्योंकि मुर्गी पालन के लिये किसी विशेष ट्रेनिग की आवश्यकता नहीं होती है। इससे इनकी बेरोजगारी की समस्या का समाधान होता है। किन्तु कभी-कभी मुर्गीयों की बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। जिससे उनको हानि भी हो सकती है। किन्तु यह बहुत कम होता है। ये जनजातियाँ देशी एवं ब्रायलर दोनों मुर्गा/मुर्गीयों को पालते हैं। पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत शासन द्वारा 22 लाख 10 हजार रुपये मुर्गीपालन के लिये राशि प्रावधानित की गई है।[40] संसार में जितनी मछली पैदा होती है उसमें भारत का भाग लगभग दो तिहाई प्रतिवर्ष है।[41]

मछली की पैदावार खाद्य समस्या और आर्थिक रूप से बहुत मदद करती है। भारत की जनजातियाँ इसका उपयोग अधिकतर पौष्टिक खाद्य पदार्थ के रूप में करती हैं। किन्तु वर्तमान में आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए मत्स्य पालन कर रहे है।[42] नदी-नालों के किनारे बसे ग्राम/टोलों के कमार तीर-धनुष से मछली का शिकार करते हैं। नदी किनारे निवासरत कमारों को छोटे-छोटे जाल मत्स्याखेट हेतु दिये जाने से वे अधिक मछली पकड़ सकेंगे। इसी तरह ग्राम

पंचायतों द्वारा मत्स्य पालन हेतु दिये जाने वाले जलाशयों, तालाबों को भी कमार परिवार अथवा समूह को प्राथमिकता से लीज पर दिलाये जाने की आवश्यकता है। उन्हें मत्स्य विकास कार्यक्रम का प्रशिक्षण, नाव, जाल तथा मत्स्य बीज राशि व लीज राशि में भी मदद पहुंचाये जाने की अपेक्षा होगी। वर्तमान में कमार अथवा उनके समूहों को मत्स्य विकास कार्यक्रम के संदर्भ में अपेक्षा के अनुरूप तालाब अथवा जलाशयों का आवंटन नहीं हो पा रहा है।[43]

इस प्रकार विकास की अनेक योजनाएं आ जाने के बाद भी कमार जनजाति का आर्थिक जीवन आसान नजर नहीं आता है। जनजातियां अपने परम्परागत जीवन और व्यवसाय आसानी से छोड़ती नहीं हैं, और ना ही किसी नई तकनीकी को जल्दी स्वीकार करती हैं, यही कारण है कि शासन की कई योजनाएं तो पहले उन तक पहुंचती ही नहीं, और जो पहुंचती भी है तो उनका लाभ भी उन्हें बहुत जल्दी नहीं मिल पाता।

संदर्भ

1. शिवकुमार तिवारी, *मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति,* मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 2010, पृ. 89
2. किरण गजपाल, *छत्तीसगढ़ का भूगोल,* वैभव प्रकाशन, रायपुर, 2006, पृ. 168
3. पी. आर. नायडू, *भारत के आदिवासी विकास की समस्याएं,* राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 65
4. वही
5. शिवकुमार तिवारी एवं श्रीकमल शर्मा, *मध्यप्रदेश की जनजातियां, समाज एवं व्यवस्था,* मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2010, पृ. 138
6. वही
7. वही
8. वही
9. वही
10. रमेश चौबे, एवं वन्दना शर्मा, *सामाजिक, सांस्कृतिक मानव विज्ञान,* पृ. 235-36
11. शिवकुमार तिवारी, पूर्वोक्त, पृ. 135-36
12. श्यामाचरण दुबे, *आदिवासी भारत, ऑक्सफोर्ड* यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1982, पृ. 36

13. *अर्धसहभागी अवलोकन*, दिनांक 29.9.2014, ग्राम हरदी
14. विजयकुमार तिवारी, *भारत की जनजातियां*, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 1998, पृ. 84
15. अर्धसहभागी अवलोकन, दिनांक 3.9.2014, ग्राम बरूका
16. शिवकुमार तिवारी एवं श्रीकमल शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 138-39
17. अर्धसहभागी अवलोकन, दिनांक 4.9.2014, ग्राम पन्टोरा
18. अर्धसहभागी अवलोकन, दिनांक 5.9.2014 ग्राम भेजराडीह
19. अर्धसहभागी अवलोकन, दिनांक 6.9.2014 ग्राम कोचवाय
20. अर्धसहभागी अवलोकन, दिनांक 7.9.2014 ग्राम खटटी
21. अर्धसहभागी अवलोकन, दिनांक 7.9.2014 ग्राम बरबाहरा
22. अर्धसहभागी अवलोकन, दिनांक 8.9.2014 ग्राम अमेठी
23. शिवकुमार तिवारी एवं श्रीकमल शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 239
24. स्थल अवलोकन, दिनांक 9.9.2014, ग्राम नहरगांव
25. स्थल अवलोकन, दिनांक 10.9.2014, ग्राम केशोडार
26. वही
27. रमेश चौबे, एवं वन्दना शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 111
28. भारती कमार, एक छत्तीसगढ़ की जनजाति, मानव, पृ 14
29. शिवकुमार तिवारी एवं श्रीकमल शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 248
30. वही
31. वही
32. किरण गजपाल, पूर्वोक्त, पृ. 86
33. वही
34. पांच वर्षीय दीर्घकालीन परियोजना, वर्ष 2006-07, कमार विकास अभिकरण, गरियाबंद, पृ. 29-30
35. वही
36. वही
37. किरण गजपाल, पूर्वोक्त, पृ. 87
38. पांच वर्षीय दीर्घकालीन परियोजना, पूर्वोक्त, पृ. 29-30
39. अर्धसहभागी अवलोकन, दिनांक 10.9.2014, ग्राम टेकारी

40. पांच वर्षीय दीर्घकालीन परियोजना, पूर्वोक्त, पृ. 29-30

41. जहान सिंह चौहान, *आधुनिक पशुपालन एवं एलोपैथिक चिकित्सा चार्टस,* सुमीत प्रकाशन, आगरा, 2013, पृ. 202

42. वही

43. पांच वर्षीय दीर्घकालीन परियोजना, पूर्वोक्त, पृ. 26

प्रो. आभा रूपेन्द्र पाल
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
इतिहास अध्ययनशाला
पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर (छ.ग.)

❑❑❑

उदयपुर शहर की 'प्रोळो' का एक अवलोकन

• नारायण पालीवाल

उदयपुर शहर राजस्थान राज्य के दक्षिणी-पश्चिम भाग में स्थित हैं। यह उत्तरी अक्षांश 24°58'54'' व पूर्वी देशान्तर 73071'25'' पर स्थित है जो अरावली पर्वत माला से घिरा हुआ है। इसे झीलों की नगरी, पूर्व का वेनिस, राजस्थान का कश्मीर आदि नामों से भी जाना जाता हैं। यह नगर अपने गौरवशाली इतिहास, भव्य सांस्कृतिक अतीत, ऐतिहासिक इमारतों के लिये विख्यात हैं। इस प्राचीन भू-भाग पर मानव जीवन लगभग 4000 वर्ष पूर्व ही से जीवन-यापन करता आ रहा है। जिसके प्रमाण हमें यहां आहड़ नदी के किनारे पर स्थित ताम्रकालीन सभ्यता से मिलते है। इसके साथ ही यहां के पुरास्थलों से पूर्व ऐतिहासिक काल से आधुनिक काल तक के बसावट के प्रमाण मिलते है। 16वीं शताब्दी में इस ऐतिहासिक नगर की स्थापना सिसोदिया वंश के महाराणा उदयसिंह द्वारा की गई, जो कि मेवाड़ राज्य की राजधानी रही।[1] 19वीं शताब्दी तक यहां शासन करने वाले महाराणाओं द्वारा नगर के विकास कार्यों के साथ नगर की बसावट तथा सुरक्षा का भी पूर्ण ध्यान रखा गया।

उदयपुर की स्थापना शनिवार, वैशाख सुदि 3, वि.सं. 1610 (15 अप्रेल 1553 ई.) को हुई।[2] सदैव शत्रुरूपी हाथियों के लिए सिंह के समान उदयसिंह ने पर्वतों के समूह द्वारा निर्मित परकोटे वाली भूमि को देखकर सभी सज्जनों, वनवासियों एवं कारीगरों को दुर्ग सहित नगर बनाने की आज्ञा दी। चैत्र शुक्ला एकादशी वि.सं. 1624 सोमवार को उदयसिंह ने इस नगर में निवास किया तथा इसका नाम उदयपुर रखा। महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नगर बसाना प्रारम्भ करके महलों का कुछ भाग और पिछोला तालाब के पश्चिमी तट के एक ऊँचे स्थान पर 'उदयश्याम का मंदिर' बनवाया।[3]

15वीं शताब्दी के वास्तुकार मंडन के प्रसिद्ध ग्रंथ 'राजवल्लभ' के अनुसार शहर में 12 दरवाजे होने चाहिये, जिनमें से चार मुख्य द्वार हो, जिनमें

दो दरवाजे लगे हो। इसी क्रम में उदयपुर नगर के चारों ओर बारह पोळ सुरक्षा की दृष्टि से बनाये गये प्रतीत होते है। जिनके नाम इस प्रकार से हैं—सूरजपोळ, दिल्ली गेट, हाथी पोळ, चाँदपोळ, अंबापोळ, सत्तापोळ, हनुमान पोळ, राम पोळ, कमला पोळ, ब्रह्म पोळ, किशन पोळ तथा उदिया पोळ। आधुनिक नगरीकरण की प्रक्रिया में शहरी विस्तार तथा विरासत के प्रति जागरूकता के अभाव के कारण कमला पोळ का अस्तित्व समाप्त हो चुका है। उदयपुर के चार मुख्य दरवाजे हैं—हाथीपोळ, दिल्ली दरवाजा, सूरजपोळ तथा किशनपोळ। इन्हें 'सिंहद्वार' कहा जाता हैं। इन चारों दरवाजों का विशद् विवरण निम्न प्रकार से है—

उदियापोळ : उदिया पोळ उत्तरी अक्षांश 24°3434.04'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°41'57.43'' पर स्थित है। उदिया पोळ के दरवाजे की ऊँचाई 8.30 मीटर है। इस पोळ का प्रवेश द्वार पूर्व दिशा में है। इस दरवाजे की लम्बाई 7.30 मीटर व चौड़ाई 3.70 मीटर है। इसको पहले 'कमलिया पोळ' के नाम से भी जाना जाता था। किन्तु महाराणा सज्जन सिंह के पुत्र उदयसिंह के जन्म के उपलक्ष्य में उन्होंने इस पोळ का नाम 'उदियापोळ' कर दिया।

उदियापोळ का दृश्य

सूरजपोळ : सूरजपोळ उत्तरी अक्षांश 24°34'46.15'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°41'45.87'' पर स्थित है। उदयपुर शहर के पूर्व दिशा में स्थित यह पोळ सूरज पोळ के नाम से जाना जाता है। सूरजपोळ की दीवार उदिया पोळ से मिलती है। यह *पोळ* शहर के अन्दरुनी परकोटे से जुड़ी हुई थी, जिसे आजादी के पश्चात् तोड़ दिया गया है। वर्तमान में इस पोळ एवं उसके आसपास के क्षेत्र को प्रशासन द्वारा संरक्षित किया गया है। दिल्ली दरवाजा के विपरीत सूरज पोळ बहुत शुभ माना जाता हैं। संभवत: सिसोदिया राजाओं के सूर्यवंशी होने के कारण भी इसको विशेष महत्व प्राप्त था। किसी भी महाराणा

की मृत्यु होने पर दाहक्रिया के लिये महाराणा का शव सूरज पोळ होकर ले जाने की परम्परा थी।

सूरजपोळ का दृश्य

सूरजपोळ के दरवाजे के सामने की तरफ एवं कोनों में पेड़ के पत्तों वाली आकृति बनी हुई हैं। इस दरवाजे के दोनों तरफ समान दूरी पर दो षट्कोण आकृति के बुर्ज बने हुए है। दरवाजे के सामने तोफ रखी हुई है, जिस पर लेख अंकित हैं। उदियापोळ, सूरजपोळ, हाथीपोळ, देहलीगेट कंट्रोल रूम, जगदीश चौक, घण्टाघर में पुलिस चौकियाँ चल रही हैं।

ब्रह्मपोळ : ब्रह्म पोळ उत्तरी अक्षांश 24°34'58.54'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°40'45.92'' पर स्थित है। ब्रह्मपोळ के दरवाजे की ऊँचाई 8 मीटर, लम्बाई 3.75 मीटर व चौड़ाई 5.10 मीटर हैं। ब्रह्मपोळ कुछ समय पहले तक जर्जर अवस्था में थी। हाल ही में उदयपुर नगर निगम की ओर से मरम्मत की गयी थी। फिलहाल यहां तीन कमरें हैं, जिन पर ताले लगे रहते हैं। इनमें पहले चौकियां संचालित होती थी। इससे क्षेत्रवासी सुरक्षित महसूस करते थे। जब से यह चौकियां यहां से हटी इस विरासत की सुरक्षा खत्म हो गई है। साथ ही इस क्षेत्र में अपराधिक घटनाओं की संख्या भी बढ़ी हैं।

ब्रह्मपोळ का दृश्य

चांदपोळ : चांदपोळ उत्तरी अक्षांश 24°34'57'' एवं पूर्वी देशान्तर

73°40'52.2'' पर स्थित है। यह क्षेत्र पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र रहा हैं। भूमि तल से बुर्ज के ऊपरी भाग तक की ऊँचाई 6 मीटर है एवं भूमि तल से *पोळ* के ऊपर बनी दीवार की ऊँचाई 10 मीटर हैं।

चांदपोळ का दृश्य

चांदपोळ के दरवाजों के ऊपर पत्थर की छत बनी हुई है, इन पत्थरों को लोहे की एंगल से जोड़ा गया है। छत में कही-कही पर चूने का मिश्रण काम में लिया गया हैं। चांदपोळ दरवाजे की ऊँचाई 7 मीटर है। *पोळ* के अन्दर दोनों तरफ गोखड़े बने हुए हैं। दरवाजे में महराबनूमा चित्रकारी है, इसके ऊपर फूल बने हुए है। इस दरवाजे में चूने की गुटाई कर दी गयी है। झरोखों की फर्श पत्थरों से बनायी गयी हैं। इस *पोळ* का नवीन जीर्णोद्धार कराया गया, लेकिन शहरकोट के हिस्से पर ध्यान नहीं दिया गया। यहां *पोळ* के दोनों तरफ दो छोटे-छोटे कमरे बने हुये हैं, जिन पर ताले लगे रहते है। यहां भी सुरक्षा के इंतजाम की आवश्यकता हैं।

अम्बापोळ : अम्बापोळ उत्तरी अक्षांश 24°34'58'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°40'45'' पर स्थित है। अम्बापोळ के दरवाजे की ऊँचाई 9 मीटर है तथा लम्बाई 3.80 मीटर व चौड़ाई 9.30 मीटर हैं। यह दरवाजा अम्बा माता को समर्पित है, ऐसा प्रतीत होता है। यह किले की दीवार से कुछ दूरी पर स्थापित

अम्बापोळ का दृश्य

ISSN 2278-4632

है एवं मध्य में पिछोला तालाब स्थित है। सम्भवत: यह दरवाजा किले की पश्चिमी भाग की सुरक्षा के लिये अति आवश्यक था। अम्बापोळ में सीढ़ीया दरवाजे के बायी तरफ लगी हुई हैं। यहां वर्तमान में पोळ के दाये व बांयी तरफ दो कमरे है। यहां किले की दिवार एल आकार में है, जो ब्रह्मपोळ तक पहुँचती हैं।

दिल्ली दरवाजा : दिल्ली गेट उत्तरी अक्षांश 24°35'07'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°41'42'' पर स्थित है। इस *पोळ* को दिल्ली गेट कहकर पुकारा जाता था। इन *पोळों* से संबंधित कुछ रोचक तथ्य भी प्रचलन में है। जैसे दिल्ली के मुग़ल शासकों के साथ स्वाधीनता की रक्षा के लिये एक लम्बी लड़ाई मेवाड़ ने लड़ी थी। इसलिए दिल्ली दरवाजे को अशुभ माना जाता था। ब्रिटिश काल में भी फतेहसिंह के संबंध अग्रेजों के साथ तनावपूर्ण थे, क्योंकि दिल्ली स्थित केन्द्रीय सत्ता के साथ महाराणाओं के संबंध कभी ज्यादा अच्छे नहीं रहे, इस कारण दिल्ली दरवाजा को अशुभ मानते हुए कभी भी यहां से किसी महाराणा की सवारी नहीं निकली। 1769 ई. में सिंधिया के आक्रमण के समय महाराणा हरिसिंह के प्रधानमंत्री अमरचंद बड़वा ने मेवाड़ की सभी *पोळों* की सुरक्षा व्यवस्था के लिए शहर पनाह के चारों ओर छोटे-छोटे किले बनाकर शहर के कोट दरवाजे और खाई को ठीक किया।[4]

दिल्ली दरवाजा का दृश्य

बड़ीपोळ या त्रिपोलिया पोळ : उदयपुर शहर स्थित राजमहल में महाराजा अमरसिंह प्रथम ने 1608 ई. में बड़ीपोळ का निर्माण करवाया था। उसके बाद का निर्माण कार्य महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (1710-1734 ई.) ने पूर्ण करवाया, जिसे 'त्रिपोलिया पोळ' के नाम से जाना जाता है। त्रिपोलिया में क्रमानुसार तीन *पोळ* बने हुये हैं, जिनमें से एक 'तोरण पोळ' के नाम से प्रसिद्ध है। इस तरह के एक कतार में तीन द्वार सबसे पहले मेवाड़ की पुरानी राजधानी चित्तौड़गढ़ में बनाये गए, उसी का अनुसरण करते हुए उदयपुर में भी त्रिपोलिये

दरवाजे का निर्माण किया गया। ऐसी किंवदंती है कि इस द्वार को देखने के बाद दिल्ली के शासक ने दिल्ली के राजकीय कब्रगाह के सामने इस तरह के त्रिपोलिया द्वार का निर्माण करवाया और ऐसा आदेश निकाला कि अन्य किसी स्थान पर इस तरह के द्वारों का निर्माण नहीं किया जाये। अगर कही बाद में इस तरह के द्वारों का निर्माण होता तो उसके लिये दिल्ली के शासक की विशेष अनुमति लेनी पड़ती थी। उदयपुर महल में त्रिपोलिया के निर्माण के पूर्व इसकी अनुमति के लिये मेवाड़ के प्रधान बिहारीदास पंचोली एवं कानोड़ के रावत सारंगदेवोत को फर्रूखशियर के पास भेजा गया। लेकिन स्वीकृति मिलने के पूर्व ही इस द्वार का निर्माण प्रारम्भ कर दिया गया।

हाथीपोळ : हाथीपोळ उत्तरी अक्षांश 24°35'11.3'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°41'14.5'' पर स्थित है। हाथी पोळ की समुद्र तल से ऊँचाई 611 मीटर हैं। हाथी पोळ के दरवाजे की चौड़ाई 4.20 मीटर हैं। हाथीपोळ के दरवाजे के पास वाले भवन को पारसोली हवेली कहते है।

हाथीपोळ का दृश्य

किशनपोळ : किशनपोळ उत्तरी अक्षांश 24°34'02'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°41'30'' पर स्थित है। किशनपोळ के दरवाजे की लम्बाई 3.70 मीटर व चौड़ाई 5 मीटर है। शहर के दक्षिणी पूर्वी हिस्से में किशनपोळ बना हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह शहर का प्रमुख दरवाजा था। किशनपोळ को दो दरवाजों के साथ बनाया गया है, यह दरवाजे चार बुर्जों से घिरे हुए है। दोनों दरवाजों को अन्दर से बन्द करने के लिये एक लम्बा लकड़ी के डंडे का

इस्तेमाल किया जाता है। पूर्वी दिशा में बने हुए दरवाजे के दोनों तरफ कमरे बने हुए है। इस पोळ के सुरक्षा की दृष्टि से बहुत मजबूत दरवाजे लगाये गये है। वर्तमान में यहाँ पर पुलिस चौकी चल रही हैं।

किशनपोळ का दृश्य

हनुमानपोळ (जल बुर्ज) : हनुमानपोळ उत्तरी अक्षांश 24°33'52'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°41'02'' पर स्थित है। हनुमानपोळ के दरवाजे की लम्बाई 3.20 मीटर व चौड़ाई 5 मीटर है। दरवाजे की ऊँचाई 9.40 मीटर है। शहर के अन्तिम हिस्से से प्रवेश करने का यह अन्तिम दरवाजा है। यह दरवाजा पिछोला के एक छोर पर बना हुआ है, जिससे पिछोला के तट पर दूध तलाई एवं सिटी पैलेस तक पहुँच सकते है। यह दरवाजा हनुमानजी को समर्पित है। यह दरवाजा एक मजबूत गोलाकार बुर्ज के सहारे बना हुआ है। यह दरवाजा एक ओर गोलाकार बुर्ज से जुड़ा हुआ है जो पानी के अन्दर है, इसलिये इसको 'जल बुर्ज' भी कहा जाता है। स्तम्भ की लम्बाई 2.10 मीटर है। इस किले की दीवार रामपोळ से जुड़ती है। दीवार की चौड़ाई 2.30 मीटर है। स्थापत्य की दृष्टि से यह *पोळ* सामान्य आकार-प्रकार की बनी हुई है। यह दरवाजा जंगल व जंगली जानवरों से सुरक्षा के लिये बनाया गया होगा। इस दरवाजे की अन्य दरवाजों की तुलना में स्थिति अच्छी हैं।

हनुमान पोळ का दृश्य

रामपोळ : रामपोळ उत्तरी अक्षांश 24°33'48'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°41'10'' पर स्थित है। रामपोळ के दरवाजे की ऊँचाई 8 मीटर है तथा लम्बाई 3.60 मीटर व चौड़ाई 5.75 मीटर हैं। रामपोळ मछला मगरा पहाड़ी के ढलान पर बना हुआ है। रामपोळ के दरवाजे के निर्माण में समान आकार के आधे सजे हुये पत्थरों को अधिकतर काम में लिया गया है।

रामपोळ का दृश्य

रामपोळ के बनावट की श्रेणी सूरजपोळ के समान है। दरवाजों के दोनों तरफ सैनिकों के लिये कक्ष बने हुये हैं। किले की दीवार, जो दरवाजे से जुड़ी हुयी है, बहुत सुदृढ़ है एवं इसमें सीढ़िया इस तरह बनायी गयी हैं जिससे पहाड़ी की चोटी तक पहुँचा जा सके। दीवार के नीचले हिस्से से लेकर ऊपर चोटी तक बहुत से गोलाकार बुर्ज है। रामपोळ में सभी कक्ष दरवाजे के भीतरी हिस्से में बने हुये है एवं सभी कक्ष आज भी सुरक्षित हैं।

सत्तापोळ : सत्तापोळ उत्तरी अक्षांश 24°34'52.38'' एवं पूर्वी देशान्तर 73°40'54.01'' पर स्थित है। सत्तापोळ के दरवाजे की लम्बाई 8.40 मीटर है तथा चौड़ाई 3.9 मीटर है। दरवाजे की ऊँचाई 6.90 मीटर हैं। सत्तापोळ के बुर्ज का व्यास 9.55 मीटर हैं। सत्तापोळ में बहुत अच्छी शिल्पकारी की गयी है। पत्थरों को समान आकृति में तराश कर *पोळ* को बनाया गया है एवं

सत्तापोळ का दृश्य

ISSN 2278-4632

बीच में चूने का मिश्रण भरा गया है। दरवाजे के दोनों तरफ कक्ष बनाये गये हैं। दूसरे *पोळों* के मुकाबले में यह छोटा *पोळ* है। दरवाजे के दोनों तरफ गोलाकार बुर्ज है। दरवाजे का ऊपरी हिस्सा हाथियों की मूर्तियों से सुसज्जित हैं।

किसी कालखण्ड में उदयपुर शहर के रक्षक रहे इन दरवाजों की वर्तमान स्थिति आज खुद सुरक्षा की मोहताज है। समय के साथ यह सभी द्वार प्रायः जर्जर हो चुके हैं तथा इन्हें विशेष रख-रखाव की आवश्यकता है। कई *पोळों* का जीर्णोद्धार नगर निगम ने कुछ समय पहले ही कराया है। वर्तमान में इनमें कई जगहों पर पुलिस चौकियां चल रही हैं। शहरकोट पर कई जगहों पर पेड़ उग आये हैं, जो सौन्दर्य को नष्ट करने के साथ ही शहरकोट को नुकसान पहुँचा रहे हैं। कई जगह दीवारों पर दरारें आ चुकी हैं। यहां भी शहरकोट पर लग रहे पेड़-पौधों से विरासत को खतरा हैं। उदयपुर के *पोळ* हमारी समृद्ध विरासत के प्रतीक हैं। जिनकी सुरक्षा हमारा दायित्व हैं।

सन्दर्भ

1. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1999, पृ. 384-385
2. मनोहर सिंह राणावत, 'उदयपुर नगर की स्थापना', शोध पत्रिका, वर्ष-55, अंक-3-4, साहित्य संस्थान, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, 2004, पृ. 16
3. वही, पृ. 7
4. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 653
5. महाराणा संग्रामसिंह का परवाना, कानोड़ रावत सारंगदेव के नाम 1712 ई.

नारायण पालीवाल
साहित्य संस्थान
ज.रा.ना.रा.वि.वि.
उदयपुर

❑❑❑

अनुसूचित जातियों में सामाजिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता

• डॉ. आनन्द श्रीवास्तव

सामाजिक गतिशीलता सामाजिक परिवर्तन से सम्बद्ध है। समय के दो बिन्दुओं में सामाजिक घटनाओं की तुलना के बाद आने वाले अन्तर को हम परिवर्तन कहते है, ठीक इसी प्रकार समय के दो बिन्दुओं में सामाजिक स्थिति की तुलना करके सामाजिक गतिशीलता को जाना जा सकता है।

विभिन्न सामाजिक स्तरों के व्यक्ति किस सामाजिक प्रस्थिति की ओर गतिमान हो रहे है। यह तभी जाना जा सकता है जब हम पेशों की गतिशीलता (व्यावसायिक गतिशीलता) पर भी ध्यान दें। विकासोन्मुख पेशों में लगे हुए लोगों का अध्ययन कर हम बता सकते हैं कि इनकी पुरानी पीढ़ी किस व्यावसायिक एवं सामाजिक प्रस्थिति में थी और इनकी नयी पीढ़ी का आरम्भ किस सामाजिक प्रस्थिति से हुआ है। भिन्न-भिन्न वर्ग या प्रस्थितियों में जन्म लेने वाले किस प्रस्थिति में पहुंच पाते है उन्हें किस प्रकार के अवसर आदि मिले हैं इत्यादि का अध्ययन करके ही सामाजिक गतिशीलता का पता लगाया जा सकता है।

सामाजिक आर्थिक गतिशीलता आधुनिक भारतीय समाज की विशेषता है, विशेष रूप से भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद परिवर्तन की नवीन शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। इस नई आर्थिक गतिशीलता के फलस्परूप जाति के वंशानुगत पेशों को छोड़ना शुरू हो गया।

वर्तमान अध्ययन से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जातियों की सामाजिक चेतना में अभूतपूर्व वृद्धि (जागृति) हुई है। सदियों से शोषित इस वर्ग में अब शोषण का प्रतिकार करने की क्षमता एवं कुछ शक्ति आ गयी है और ये लोग अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक दिखायी दे रहे है। उसके मूल में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। संवैधानिक सुरक्षा एवं सरकारी नौकरियों में

आरक्षण का आकर्षण भी इन लोगों को शैक्षिक उन्नति के लिए प्रेरित करता है। ये जातियां अब शिक्षित होकर अपने परम्परागत व्यवसाय को छोड़कर नये-नये व्यवसायों को अपना रही हैं, जिसके कारण इन जातियों में व्यावसायिक गतिशीलता बढ़ती जा रही है जो कि सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि का एक मुख्य कारण है।

वर्तमान अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अनूसूचित जातियों के परिवारों की मासिक आय में वृद्धि हुई है जिससे कि उनकी आर्थिक स्थिति निम्न से मध्यम स्तर की ओर बढ़ती हुई प्रतीत हो रही है जो कि इनकी उर्ध्वगामी सामाजिक गतिशीलता को स्पष्ट करती है।

ग्रीन (1956) के अनुसार, 'जाति संस्तरीकरण की एक ऐसी पद्धति है जिसमें स्थिति की सीढ़ी का ऊपर या नीचे की ओर गतिशीलता नहीं पायी जाती। इस पद्धति के अनुसार एक व्यक्ति की स्थिति जीवन पर्यन्त वही रहती है, जन्म के आधार पर उसका पेशा निवास-स्थान, रहन-सहन का ढंग, संगी-साथियों का सम्पर्क इत्यादि का निर्माण होता हैं।'[1]

के. चन्द्रशेखरिया (1962) के अनुसार, 'जाति और व्यवसाय की परम्परागत निकट सम्बद्धता भारतीय समाज में सामाजिक आर्थिक गतिशीलता के अवरूद्ध होने का प्रमुख कारण रहा है। जाति की सीमाओं में व्यवसाय के बंधे होने के कारण व्यावसायिक गतिशीलता के अवसर परम्परागत भरतीय समाज में नगण्य रहें है। एक ही व्यवसाय एक ही परिवार के सदस्य के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी किया जाता रहा है तथा अपने पीढ़ीगत वयवसाय के परित्याग की कल्पना करना लगभग नगण्य रहा है।' एसे प्रतिबंधित समाज में शताब्दियों तक सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता नाममात्र की ही पायी जाती रही है। सामाजिक आर्थिक जीवन अपेक्षाकृत स्थिर रहा है।[2]

सामाजिक आर्थिक गतिशीलता आधुनिक भारतीय समाज की विशेषता है विशेष रूप से भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद परिवर्तन की नवीन शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। इस नई आर्थिक गतिशीलता के फलस्परूप जाति के वंशानुगत पेशों को छोड़ना शुरू हो गया। अंग्रेजों के साथ ही पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता का प्रवेश हुआ। इनके साथ ही औद्योगीकरण नगरीकरण, यातायात एवं आवागमन के साधनों में वृद्धि, न्याय व्यवस्था में परिवर्तन वैज्ञानिक आविष्कार, शिक्षा के प्रसार, राजनीतिक आन्दोलन, समाज सुधारकों के प्रयत्नों इत्यादि ने मिलकर जाति प्रणाली के पूर्व स्वरूप और कठोरता में बहुत परिवर्तन ला दिया।

सामाजिक गतिशीलता की अवधारणा

पोटर (1956) के अनुसार, 'समाज के सदस्यों के सामाजिक जीवन में हाने वाले स्थिति पद, पेशा और निवास स्थान सम्बन्धी परिवर्तनों को सामाजिक गतिशीलता कहते है।'[3]

लिपसेट और बेण्डिक्स (1966) के अनुसार, 'व्यावसायिक गतिशीलता के कारण सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि होती है। सामाजिक गतिशीलता का तात्पर्य सामाजिक जीवन में पाये जाने वाले उस स्थानान्तरण की प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत समाज के एक सदस्य एक पद से दूसरे पद अथवा एक स्थान या पेशे से दूसरे स्थान या पेशे की ओर चलायमान होते हैं।' संक्षेप में, सामाजिक गतिशीलता समाज के सदस्यों की सामाजिक स्थिति के पद या पेशे में होने वाले हेर-फेर का परिचायक है।[4]

सोराकिन (1927) के अनुसार, 'एक व्यक्ति या सामाजिक वस्तु अथवा मूल्य अर्थात मानव क्रिया-कलाप द्वारा बनायी या रूपान्तरित किसी भी चीज में एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति को होने वाले परिवर्तन को सामाजिक गतिशीलता कहते है।' इस अर्थ में यदि एक व्यक्ति निम्न आर्थिक वर्ग से उच्च आर्थिक वर्ग का सदस्य बन जाता है तो उस व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में होने वाला यह परिवर्तन सामाजिक गतिशीलता है।[5]

सामाजिक गतिशीलता के कारक

सामाजिक गतिशीलता के प्रमुख कारकों को संक्षेप में निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है —

(1) व्यक्तियों में व्याप्त महत्वाकांक्षाएं।

(2) अवसर संरचना।

(3) शिक्षा एवं संचार के साधनों में वृद्धि।

(4) औद्योगीकरण एवं नगरीकरण।

(5) आर्थिक अवसर एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का असमान वितरण।

(6) जननांकिकी प्रक्रियाएं।

व्यावसायिक गतिशीलता की अवधारणा

व्यवसाय मानव का ऐसा नियमित क्रियाकलाप है जिससे वेतन या धन

की प्राप्ति होती है। सोराकिन (1959) के अनुसार—'व्यावसायिक गतिशीलता सामाजिक परिवर्तन की एक अभिव्यक्ति है। आधुनिक समाज मे परिवर्तन की तीव्रता के साथ-साथ गतिशीलता की नवीन प्रवृत्तियों को उदय हुआ है उसका एक प्रमुख स्वरूप व्यावसायिक गतिशीलता है।'[6] व्यावसायिक गतिशीलता का प्रत्यय मुख्यत: आर्थिक विकास एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया से सम्बंधित है। परम्परागत समाजों में कृषि एवं कृषि से सम्बंधित व्यवसाय आर्थिक विभेदीकरण के प्रमुख स्वरूप है। ऐसे समाजों में व्यवसाय की प्रकृति सामान्यत: आनुवांशिक थी। पीढ़ियों के अन्तर के पश्चात ही व्यवसाय में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन होता था परन्तु औद्योगिक क्रांति के पश्चात समाज की आर्थिक संरचना में क्रांतिकारी परिवर्तन होने प्रारम्भ हुए। व्यवसाय या रोजगार के नवीन अवसरों का उदय होना प्रारम्भ हो गया। अनेक प्रकार की नवीन सेवाओं का प्रादुर्भाव होने लगा। कृषि व्यवसायों की तुलना में गैर कृषि व्यवसायों की संख्या में वृद्धि होने लगी। व्यवसाय में प्रवेश का आधार आनुवांशिक न होकर व्यक्तिगत कुशलता, दक्षता एवं प्रशिक्षण बन गया। परिणामत: औद्योगिक समाज में व्यावसायिक गतिशीलता की प्रक्रिया तीव्र हुई। लोग परम्परागत व्यवसायों को छोड़कर नवीन व्यवसायों को ग्रहण करने लगे। इस सामान्य प्रक्रिया को 'व्यावसायिक गतिशीलता' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

लैण्डिस के अनुसार, 'व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन संगठन ही उसके व्यवसाय पर आधारित होता हैं।'

बोगार्डस (1954) के अनुसार, 'एक व्यवसाय क्रियाकलाप का वह प्रकार है जिसे कई व्यक्ति नियमित आय के नियमित रूप से संपादित करते है। एक पेशा विशेषीकृत प्रकृति का व्यवसाय है जिसमें प्रवेश के लिए एक निश्चित प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।'[7]

पारसन्स के अनुसार, 'पेशा एक ऐसी व्यावसायिक भूमिका है जो एक विशिष्ट प्रकार के पारस्परिक विश्वासपूर्ण उत्तरदायित्वों पर आधारित है तथा समाज के सांस्कृतिक परम्पराओं का संचयन करते हुए अपनी निरन्तरता एवं भावी विकास को बनाए रखती है। पेशे में व्यावहारिक समाजों को सुलझाने के लिए ज्ञान के उपयोग का उत्तरदायित्व भी निहित है। व्यावसायिक विभेदीकरण एवं श्रेणीबद्धता के द्वारा समाज में श्रम विभाजन एवं स्तरीकरण की प्रक्रिया सुदृढ़ होती है।'

बेण्डिक्स एवं लिपसेट (1959) के अनुसार,'व्यावसायिक गतिशीलता

एक प्रक्रिया है जिसके कारण लोग समाज में एक पेशा से दूसरे पेशा को स्वीकार करते है। यह स्थिति एक विशिष्ट सोपानात्मक मूल्य को व्यक्त करती है जिसे सामान्यतया सभी स्वीकार करते है।'[8]

हैरी (1956) का मत है कि व्यावसायिक गतिशीलता के कारण सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि होना स्वाभाविक है। सामाजिक गतिशीलता एक प्रक्रिया है जिसके कारण लोग समाज में एक प्रस्थिति से दूसरी प्रस्थिति को प्राप्त करते हैं।[9]

लिपसेट (1955) ने दो प्रकार की व्यावसायिक गतिशीलता का उल्लेख किया है—[10]

1. अन्तः पीढ़ीगत व्यावसायिक गतिशीलता
2. अन्तर पीढ़ीगत व्यावसायिक गतिशीलता

व्यावसायिक गतिशीलता के कारक

1. परम्परागत व्यवसाय के विचारों में परिवर्तन
2. रूढ़िवादी मनोवृत्तियों में परिवर्तन
3. नगरीकरण
4. उच्च पद पाने की इच्छा
5. उच्च पद दिलाने की प्रेरणा
6. श्रमिकों का शोषण
7. अर्जित गुणों में वृद्धि
8. प्रौद्योगिक विकास एवं वैज्ञानिक आविष्कार
9. आर्थिक कारक
10. सामाजिक कारक
    1. अस्पृश्यता
    2. सामाजिक प्रस्थिति में विजातीयता
    3. खान-पान सम्बन्धी निषेधों में शिथिलता
11. शैक्षिक कारक

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अध्ययन में सम्मिलित अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों की सामाजिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता का विश्लेषण किया जा रहा है।

सारणी संख्या 1.1

दादा (पितामह) के परम्परागत व्यवसाय के आधार पर उतरदाताओं का वर्गीकरण

व्यवसाय	मजदूरी	कृषि	नौकरी	व्यापार	योग
आवृति	270	162	12	06	450
प्रतिशत	60.0	36.0	20.67	1.33	100.00

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि उतरदाताओं के दादा का परम्परागत व्यवसाय प्रमुख रूप से मजदूरी रहा है जो कि कुल संख्या का 60 प्रतिशत है और दूसरा मुख्य व्यवसाय कृषि रहा है जो कि 36 प्रतिशत की संख्या में है। नौकरी करने वाले लोगों की संख्या 2.67 प्रतिशत है और सबसे कम व्यापार व्यवसाय करने वाले लोगों की संख्या है जो मात्र 1.33 प्रतिशत है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि उतरदाताओं के दादा का परम्परागत व्यवसाय मुख्य रूप से मजदूरी एवं कृषि है।

सारणी संख्या 1.2

उतरदाताओं शैक्षणिक स्तर एवं दादा के परम्परागत व्यवसाय के आधार पर वर्गीकरण

	निरक्षर	प्राइमरी	मिडिल	हाईस्कूल	इण्टर	स्नातक	उच्चतर	योग
मजदूरी	(120) 44.44	(33) 12.22	(39) 14.45	(48) 17.78	(18) 6.67	(09) 3.33	(03) 1.11	(270) 100.00
कृषि	(36) 2.22	(12) 7.41	(33) 20.37	(27) 16.67	(21) 12.96	(3) 18.52	(03) 1.85	(162) 100.00
नौकरी	(03) 25.2	(0) –	(0) –	(0) –	(06) –	(03) –	(0) –	(12) 100.00
व्यापार	(03) 50.0	(03) 50.0	(0) –	(0) –	(0) –	(0) –	(0) –	(6) 100.00

उपर्युक्त तालिका को देखने से यह स्पष्ट होता है कि जिन उतरदाताओं के दादा का परम्परागत व्यवसाय मजदूरी था उससे उतदाताओं के शैक्षणिक स्तर के सम्बंध स्थापित करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि परम्परागत रूप से मजदूरी व्यवसाय करने वाले दाताओं के परिवार में वर्तमान समय में निरक्षरों की संख्या सर्वाधिक है जो कि 44.44 प्रतिशत है। उसी प्रकार प्राइमरी तक शिक्षित लोग 12.22 प्रतिशत मिडिल तक 14.45 प्रतिशत हाईस्कूल तक शिक्षित 17.78 प्रतिशत, इण्टर तक शिक्षित 6.67 प्रतिशत स्नातक तक शिक्षित 3.33 प्रतिशत तथा उच्चतर शिक्षा प्राप्त मात्र 1.11 प्रतिशत है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि परम्परागत व्यवसाय का प्रभाव वृहद स्तर तक अभी तक बना हुआ है फिर भी कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो कि शिक्षित होने की और अग्रसर है और यह भी देखने को मिल रहा है कि जिन परिवारों को व्यवसाय मजदूरी था, वे भी अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने का प्रयास कर रहे है। इसी प्रकार कृषि कार्य करने वाले दादाओं के परिवार में 22.22 प्रतिशत, निरक्षर तथा 7.41 प्रतिशत प्राइमरी 20.37 प्रतिशत मिडिल 16.67 प्रतिशत, हाई स्कूल 12.96 प्रतिशत इण्टर 18.52 प्रतिशत स्नातक तथा 1.85 प्रतिशत उच्चतर शिक्षित उतरदाता हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में लोगों के विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन उत्पन्न हुए है और लोग शिक्षित हो रहे है तथा प्राचीन कालीन मान्यताओं का प्रभाव कम हुआ है। अगर हम इस तथ्य पर गौर करें तो स्पष्ट होता है कि लगभग तीन चौथाई शिक्षित है और उनमें भी स्नातक तक शिक्षित लोगों का प्रतिशत 18.52 मिल रहा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अब लोगों में शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ता जा रहा है जो कि उनकी सामाजिक स्थिति को ऊंचा कर रही है। उसी प्रकार यदि हम देखें तो नौकरी व्यवसाय करने वाले दशाओं के परिवार में 75 प्रतिशत लोग शिक्षित है और परम्परागत रूप से व्यापार करने वाले दाताओं के परिवार में 50 प्रतिशत शिक्षित तथा 50 प्रतिशत निरक्षर है इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट हो रहा है कि वर्तमान समय में अनुसूचित जातियों के परम्परागत व्यवसाय अब परिवर्तनशील हैं, लोग शिक्षित होकर अपने व्यवसाय को बदलने में लगे हुए हैं जिससे उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हो रहा है।

सारणी संख्या 1.3

उतरदाताओं की मासिक आय एवं दादा के परम्परागत व्यवसाय के आधार पर वर्गीकरण

मासिक आय	5000 से कम	5001-10000 तक	10000 से अधिक	योग
मजदूरी	(228) 84.44	(39) 14.45	(03) 1.11	(270) 100.00
कृषि	(81) 50.00	(75) 46.30	(06) 3.70	(162) 100.00
नौकरी	(09) 75.0	(03) 25.0	(0) —	(12) 100.00
व्यापार	(0) —	(06) 100.00	(0) —	(06) 100.00

उपर्युक्त सारणी में उतरदाताओं के दादा के परम्परागत व्यवसाय एवं उतरदाताओं की मासिक आय में संबंध स्थापित करने पर यह स्पष्ट होता है कि जिन उतरदाताओं के दादा का परम्परागत व्यवसाय मजदूरी था उनमें सर्वाधिक संख्या उन परिवारों की है जिनकी मासिक आय 5000 रूपए से कम है जो कि कुल संख्या का लगभग 84.44 प्रतिशत है तथा 14.45 प्रतिशत उन परिवारों की संख्या है जिनकी मासिक आय 5001-10000 बीच है जबकि 10000 से अधिक मासिक आय वाले परिवारों की संख्या मात्र 1.11 प्रतिशत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि परम्परागत रूप से मजदूरी व्यवसाय करने वाले अधिकांश परिवारों की वर्तमान समय में मासिक आय 5000 से कम है लेकिन उल्लेखनीय यह भी है कि मजदूरी व्यवसाय करने वाले कुछ परिवारों की मासिक आय 5001-10000 के बीच है जो कि स्पष्ट करता है कि परम्परागत रूप से मजदूरी व्यवसाय करने वाले लोगों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आया है। इसी प्रकार कृषि व्यवसाय करने वाले परिवारों में 5000 से कम आय वाले परिवारों की संख्या 50 प्रतिशत है तथा 5001-10000 तक मासिक आय

वाले 46.3 प्रतिशत परिवार तथा 10000 से अधिक आय वाले परिवारों की संख्या का प्रतिशत मात्र 3.7 है। इस प्रकार स्पष्ट है कि परम्परागत रूप से कृषि व्यवसाय करने वाले परिवारों की संख्या का आधा भाग निम्न मासिक आय अर्जित करता है जबकि आधे परिवार मध्यम स्तर की मासिक आय अर्जित करते है। नौकरी व्यवसाय करने वाले दादाओं के परिवार की संख्या 12 हैं जिसमें 75 प्रतिशत परिवार 5000 से कम आय वाले है और 25 प्रतिशत परिवार 5001-10000 तक मासिक आय अर्जित करते है तथा व्यापार करने वाले परिवारों की संख्या मात्र 6 हैं, जिसमें सभी परिवार 5001-10000 तक मासिक आय अर्जित करते है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि परम्परागत रूप से नौकरी व्यवसाय करने वाले अधिकांश परिवारों की मासिक आय निम्न स्तर की है, जबकि व्यापार करने वाले परिवारों की मासिक आय मध्यम स्तर की है। इस प्रकार सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जातियों के परिवारों की मासिक आय में कुछ वृद्धि हुई है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति निम्न से मध्यम स्तर की ओर बढ़ती हुई प्रतीत हो रही है जो कि इन लोगों की सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति को ऊंचा उठाने में सहायक हो रही है। अत: कहा जा सकता है कि इन जातियों की सामाजिक गतिशीलता का स्वरूप उर्ध्वगामी है।

निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन से यह तथ्य भी प्रकट होता है कि अनुसूचित जातियों की सामाजिक चेतना में अभूतपूर्व वृद्धि (जागृति) हुई है। सदियों से शोषित इस वर्ग में अब शोषण का प्रतिकार करने की क्षमता एवं कुछ शक्ति आ गयी है और ये लोग अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक दिखायी दे रहे है। उसके मूल में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। संवैधानिक सुरक्षा एवं सरकारी नौकरियों में आरक्षण का आकर्षण भी इन लोगों को शैक्षिक उन्नति के लिए प्रेरित करता है। ये जातियां अब शिक्षित होकर अपने परम्परागत व्यवसाय को छोड़कर नये-नये व्यवसायों को अपना रही है जिसके कारण इन जातियों में व्यावसायिक गतिशीलता बढ़ती जा रही है जो कि सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि का एक मुख्य कारण है। प्रतिष्ठित एवं उच्च व्यवसायों में लगने के कारण स्वभावत: इनकी सामाजिक स्थिति उच्च होती जा रही है और प्रस्थिति में उत्थान इन जातियों की परम्परागत स्थिति को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

वर्तमान अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं के दादा (पितामह) का परम्परागत व्यवसाय प्रमुख रूप से मजदूरी एवं कृषि कार्य रहा है। वर्तमान समय में अनूसुचित जातियों के परम्परागत व्यवसाय में परिवर्तन हुआ है लोग

शिक्षित होकर अपने व्यवसाय को बदलने में लगे हुए है जिससे उनकी सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति परिवर्तित हो रही है जो कि उनकी सामाजिक गतिशीलता को स्पष्ट करता है।

वर्तमान अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अनूसूचित जातियों के परिवारों की मासिक आय में वृद्धि हुई है जिससे कि उनकी आर्थिक स्थिति निम्न से मध्यम स्तर की ओर बढ़ती हुई प्रतीत हो रही है जो कि इनकी उर्ध्वगामी सामाजिक गतिशीलता को स्पष्ट करता है।

सन्दर्भ

1. डब्ल्यू. ग्रीन अरनॉल्ड, *सोशियोलॉजी*, न्यूयार्क, 1956, पृ. 202
2. के. चन्द्रशेखरिया, 'मोबिलिटी पैटर्न विद्इन द कास्ट', *सोशियोलॉजिकल बुलेटिन*, वॉल्यूम सेकंड मार्च-सितम्बर, 1962, पृ. 66-68
3. ब्लाऊ पोटर, 'ऑक्यूपेशनल मोबिलिटी एण्ड इन्टरनेशनल रिलेशनशिप', *अमेरिकन सोशियोलॉजी रिव्यू* 21, 1956, पृ. 290-91
4. आर. वेण्डिक्स एण्ड एस.एम. लिपसेट, *क्लास स्टेटस एण्ड पावर*, ए रीडर इन सोशल स्ट्रेडीफिकेशन सेकेण्ड एडिशन द फ्री पेस, बोस्टन, 1966, पृ. 13-15
5. पी.ए. सोराकिन, *कन्टम्परेरी सोशियालॉजी थ्योरी*, हारपर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयॉर्क, 1927, पृ. 27
6. पी.ए. सोराकिन, *सोशल एण्ड कलचरल मोबिलिटी*, द फ्री प्रेस, बोस्टन, 1959, पृ. 11
7. बोगार्डस, *सोशीयोलॉजी*, द मैकमिलन कॉ., न्यूयॉर्क, 1954, पृ. 164
8. आर. बेण्डिक्स एण्ड एस.एम. लिपसेट, *सोशल मोबिलिटी इन इण्डस्ट्रियल सोसायटी*, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1959, पृ. 1-2
9. हैरी ब्रोइलेन, 'द पैटर्न आफ रिसपांसबिलिटी एण्ड इट्स रिलेशन ऑफ सोशल क्लास मोबिलिटी' *जर्नल ऑफ सोशल सायकोलॉजी*, 1956
10. एस.एम. लिपसेट, 'सोशल मोबिलिटी एण्ड अर्बनाइजेशन', *रूरल सोशियोलॉजी*, वोल्यूम 25, सितम्बर 1955, पृ. 220-228

डॉ. आनन्द श्रीवास्तव

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

शिक्षा संकाय, आई.ए.एस.ई. मानित विश्वविद्यालय

गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर

❑❑❑

डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचार

• कुसुम लता

शिक्षा वह सीढ़ी है जिस पर चढकर मानव सभ्य और सुसंस्कृत बनता है और अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त करता है। शिक्षा में वे सभी गुण हैं जो मानव सभ्यता एवं संस्कृति की बुनियाद को संरक्षित रखने के साथ-साथ उसे पुनर्जीवित एवं पुर्नस्थापित करते हैं। भारत में तथा शेष विश्व में आज शैक्षिक संरचना की आधारभूत धारणाओं के प्रति संदेह किया जा रहा है, सभी स्तरों पर उत्तरोत्तर यह अनुभव किया जा रहा है कि प्रचलित शैक्षिक प्रारूप असफल हो गए हैं। मानव जीवन एक वैज्ञानिक जीवन बन गया है तथा इतना जटिल हो गया है कि मनुष्य और सामाजिक जीवन के बीच कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं रह गया है। परिवेश सम्बन्धी संकट तथा निरंतर बढती हुई निर्धनता, भूख, हिंसा और बेरोजगारी मनुष्य को बाध्य कर रही है कि वह इस मानव जीवन की सुख एवं शांति जो मानव जीवन की वास्तविक आवश्यकता है, का साक्षात्कार करे। ऐसे समय में शिक्षा की आधारभूत धारणाओं के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण आवश्यक है। ब्रह्माण्ड को जानने की जिज्ञासा के साथ-साथ हमें अपने आप को जानने का प्रयास करना होगा तभी हम अपने जीवन का लक्ष्य जान पायेंगे तथा सम्पूर्ण मानव जाति का भला कर सकेंगे। इसके लिए आवश्यक है हम विज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिकता के विकास को भी महत्व दें। ऐसे में शिक्षा की आधारभूत धारणाओं के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण आवश्यक है और इस कार्य के लिए अनेक विद्वान, मनीषी, दार्शनिक, समाज सुधारक आगे आये, उन मनीषियों में एक नाम है– डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, जिनका विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी अनुकरणीय योगदान रहा है।

डॉ. कलाम भारत को एक समृद्ध राष्ट्र बनाने के लिए शैक्षिक एवं वैज्ञानिक व्यक्तित्व के समन्वय पर बल देते थे। कलाम साहब का मानना था कि हमें ऐसी

शिक्षा प्रणाली बनानी होगी जिसमें आध्यात्म एवं विज्ञान साथ मिलकर काम करें। कलाम साहब मानते थे कि कठिनाईयों एवं संकटों के माध्यम से ईश्वर हमें आगे बढने का अवसर प्रदान करता है। राष्ट्र की युवा शक्ति और बच्चों को प्रेरित करते हुए भारत को महान राष्ट्र बनाने का स्वप्न संजोए हुए उन्होंने देश कार्य में ही अपना संपूर्ण जीवन समर्पित किया था। अनेक मार्मिक प्रसंगो के अलावा डॉ. कलाम के जीवन में आए उतार चढाव, सफलता असफलता एवं विपरीत परिस्थितियों में अपना तथा अपने सहयोगियों का मनोबल बढ़ाना तथा कार्य के प्रति अटूट निष्ठा एवं राष्ट्र के लिए कुछ कर दिखाने की प्रेरणा उनके सहज स्वाभाविक गुण थे। डॉ. कलाम का जीवन ईश्वरीय लीला, सही सोच, कर्म शक्ति और नैतिक मूल्यों की सार्थकता की मिसाल था।

डॉ. कलाम का जीवन परिचय

स्वप्न, स्वप्न, स्वप्न, स्वप्नों में छिपा है सृजन।
स्वप्नों की मूर्त छवि होते विचार है
जिनसे जन्मा कर्म करता है निर्माण है।
विचारों से पैदा होते हैं कर्म।[1]

एक स्वप्नदृष्टा और स्वप्न को हकीकत में बदलने का विश्वास रखने वाले प्रबल पुरुषार्थी जिन्हें बच्चे 'कलाम अंकल' के रूप में जानते थे और हम भारत रत्न डॉ. अब्दुल कलाम के रूप में तथा दुनिया जिन्हें भारत के मिसाइल मैन के रूप में पहचानती है। इस भारी-भरकम परिचय के पीछे छिपा है एक कोमल हृदय इंसान जिसने आसमान की ऊँचाइयों को छुआ है लेकिन फिर भी वह जमीन से जुड़ा है, जिसकी दूरदर्शी वैज्ञानिक सोच है और शांत, आध्यात्मिक स्वरूप। भारत के यशस्वी वैज्ञानिकों में से एक डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम एक विकसित भारत का स्वप्न संजोए हुए थे और इसे साकार करने की प्रक्रिया में स्वयं एक कार्यकर्ता एवं हमारे मार्गदर्शक के रूप में सक्रिय रहे थे।

डॉ. कलाम कहते थे—''जन्मजात हमारे भीतर एक पवित्र अग्नि होती है, हमारी कोशिश इस अग्नि को पंख लगाने की होनी चाहिए। इनके अनुसार दृढ़ इच्छाशक्ति एवं संकल्प से हम वह सब प्राप्त कर सकते हैं जो हम चाहते हैं इस उत्कृष्ट एवं कल्पनाशील वैज्ञानिक मस्तिष्क के पीछे एक आध्यात्मिक शक्ति काम करती है।''[2]

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का जन्म 15 अक्टूबर, 1931 को तत्कालीन मद्रास(वर्तमान तमिलनाडू) के धनुषकोड़ी कस्बे के गांव रामेश्वरम् में

हुआ था। इनके पिता का नाम जैनुलाबद्दीन था जो कि मस्जिद के इमाम थे तथा नाव द्वारा यात्रियों को तट तक लाने ले जाने का कार्य करते थे। वे आध्यात्मिक तथा उदार स्वभाव के व्यक्ति थे। सभी धर्मों के लोग उनके पास जीवन की विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु एवं आध्यात्मिक परामर्श लेने आते थे। इनकी माता आशियम्मा भी उदारमना स्त्री थी। धर्मपरायण, संवेदनशील तथा सादगीपूर्ण जीवन जीने वाली अपनी माता का डॉ. कलाम के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। डॉ. कलाम का शून्य अहम् एवं सादगीपूर्ण जीवन उनकी माता की ही देन था। इस प्रारम्भिक मौलिक प्रशिक्षण ने ही उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का निर्माण किया एवं जीवनभर उनका मार्गदर्शन भी किया।

डॉ. कलाम की प्रारम्भिक शिक्षा रामेश्वरम् में ही हुई। इस छोटे से स्थान पर उनको अपनी शिक्षा दीक्षा को बढाने में कठिनाई थी क्योंकि उनके पास वांछित पुस्तकों का अभाव था। प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने के पश्चात् विज्ञान का अध्ययन करने के लिए उन्होंने जिला मुख्यालय रामनाथपुरम् के श्वार्ट्ज हाई स्कूल में प्रवेश लिया। इस विद्यालय में उन पर अपने विज्ञान के अध्यापक एयादुरे सोलोमन का गहरा प्रभाव पड़ा। वे कलाम साहब के प्रेरणास्रोत बने। इन्हीं के प्रभाव से डॉ. कलाम के मन में आकाश में उड़ने की प्रबल इच्छा शक्ति जाग्रत हुई और आत्मविश्वास बढा।

सन् 1954 में डॉ. कलाम ने तिरुचिरापल्ली के सेंट जोसेफ कॉलेज से विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलोजी में एयरोनॉटिक्स इंजीनियरिंग के अध्ययन हेतु प्रवेश लिया तथा कठोर परिश्रम करके संस्थान से छात्रवृत्ति प्राप्त कर अध्ययन को पूर्ण किया।

डॉ. कलाम का वैज्ञानिक के रूप में कैरियर सन् 1960 से शुरू हुआ जब वे रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन में हॉवरक्राफ्ट परियोजना पर काम करने हेतु वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक के रूप में नियुक्त हुए। यहां पर इन्होंने प्रथम स्वदेशी हॉवरक्राफ्ट नन्दी का निर्माण करके विज्ञान जगत में हलचल मचा दी। इस हॉवरक्राफ्ट की डिजाइन व क्रियाक्षमता का तत्कालीन रक्षामंत्री प्रो. एम.जी.के. मेनन की उपस्थिति में परीक्षण किया गया। फलस्वरूप 1969 में प्रो. मेनन कलाम की लगन एवं मेहनत से प्रभावित होकर उन्हें भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन में ले गये। डॉ. कलाम को S.L.V.-3 का परियोजना निदेशक बनाया गया। भारत के प्रथम स्वदेशी उपग्रह प्रक्षेपणयान S.L.V.-3 के द्वारा जुलाई, 1980 में रोहिणी उपग्रह सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किया गया। इस प्रकार सन् 1969-1982 तक उन्होंने भरतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन

में रहकर प्रक्षेपणयान के डिजाइन विकास और प्रबंधन पर काम किया। सन् 1981 में कलाम को 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया। सन् 1982 में उन्हें भारतीय रक्षा एवं विकास संस्थान का निदेशक बनाया गया। यहां उन्होंने अपना सारा ध्यान एकीकृत मार्गदर्शित मिसाइल विकास कार्यक्रम पर केन्द्रित किया। यहीं पर उन्होंने अपने नेत्तृत्व में स्वदेशी तकनीक पर आधारित पाँच मिसाइलों—अग्नि, पृथ्वी, नाग, त्रिशूल एवं आकाश के सफल परीक्षण किये। इन मिसाइलों के कारण ही भारत आत्म रक्षा के मजबूत साधनों से सुसज्जित हुआ। इन मिसाइलों को विकसित कर उन्होंने भारत को सामरिक क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाया। 'अग्नि' के सफल प्रक्षेपण पर उन्होंने अपने भावों को इस कविता के माध्यम से व्यक्त किया था—

'अग्नि में मत ढूंढो, शत्रु को भयग्रस्त करता शक्ति का स्तम्भ कोई,
यह तो है एक आग दिल में जो सुलगती, हर भारतीय के
सभ्यता के स्रोत सी, एक छोटी सी प्रतिमा है यह,
भारत के गौरव की, आभा से प्रदीप्त जो।'[3]

इस प्रकार वैज्ञानिक के रूप में देश के लिए उनका सबसे बड़ा योगदान भारत को प्रक्षेपास्त्र तकनीक में स्थापित करना रहा। मिसाइलों के अतिरिक्त इन्होंने अर्जुन टैंक व हल्के लड़ाकू विमान तैयार करने की परियोजनाओं को भी निर्देशित किया। जुलाई, 1992 में डॉ. कलाम भारतीय रक्षा मंत्रालय में रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक एवं तकनीकी सलाहकार नियुक्त हुए। वे रक्षा अनुसंधान एवं विकास विभाग के सचिव भी रहे। उनकी देखरेख में ही वर्ष 1998 में पोकरण में भारत ने अपना दूसरा सफल परामाणु परीक्षण किया। इस परीक्षण के पश्चात् भारत परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों की सूची में शामिल हो गया।[4]

भारत सरकार ने डॉ. कलाम को सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से अलंकृत किया। 25 जुलाई, 2002 को डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को सर्वसम्मति से समूचे देश ने भारत के प्रथम नागरिक के रूप में राष्ट्रपति के पद पर आसीन किया। राष्ट्रपति बनने के पश्चात् भारत को समृद्ध बनाने के साथ-साथ उनका एक प्रमुख उद्देश्य देश को परम् शक्तिशाली राष्ट्र बनाना था। अपने राष्ट्रपति बनने के सफर में डॉ. कलाम ने बड़े स्पष्ट शब्दों में स्वयं अपने तथा संपूर्ण देश के लिए एक मिशन सुनिश्चित कर लिया था।

डॉ. कलाम का शिक्षा दर्शन—डॉ. कलाम के अनुसार शिक्षा ज्ञान और बुद्धि के रास्ते से गुजरने वाली एक अनन्त यात्रा है। ऐसी यात्रा से मानवता के

विकास के नये दरवाजे खुलने लगते हैं तथा जहां संकीर्णता, कलह, ईर्ष्या, घृणा और शत्रुता का कोई स्थान नहीं है इससे मानव का व्यक्तित्व संपूर्ण, विनम्र और संसार के लिए उपयोगी बनता है। सही शिक्षा से मानवीय गरिमा, स्वाभिमान और विश्व बंधुत्व में बढोतरी होती है, ये गुण शिक्षा के आधार होते हैं।[5]

कलाम साहब केवल किताबें पढना, स्कूल जाना या ज्ञान प्राप्ति को ही शिक्षा नहीं मानते थे। वे कहते थे कि शिक्षा का वास्तविक अर्थ एक जाग्रत समाज की रचना करना है। जाग्रत समाज के मुख्य तीन अंग है - प्रथम, ऐसी शिक्षा जिसके निश्चित मूल्य हो, द्वितीय, धर्म का आध्यात्मिक शक्ति में परिवर्तन और तृतीय, आर्थिक विकास। उनका मानना था कि कोई भी काम छोटा या घटिया नहीं होता। शिक्षा प्राप्त व्यक्ति प्रत्येक कार्य ज्यादा अच्छा, कम समय में एवं कम कीमत पर कर सकता है। नागरिकों की अज्ञानता एक जनतांत्रिक देश को मजबूत नहीं बना सकती है। राष्ट्र की प्रगति एवं सर्वसमाज की उन्नति हेतु शिक्षा एक आवश्यक अंग के रूप में जरूरी है। कलाम जी की दृष्टि से शिक्षा सफलता की कुंजी है, क्योंकि इससे बेहतर जीविका, स्वास्थ्य, सुखी परिवार तथा शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली में भागीदारी संबंधी जानकारी होती है। डॉ. कलाम शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विकास की प्रक्रिया मानते थे। वे शिक्षा को ऐसा साधन मानते थे जो व्यक्ति तथा समाज के विकास को गति प्रदान करता है। शिक्षा के लिए केवल शिक्षक और शिक्षार्थी ही नहीं वरन् पाठ्यक्रम की भी आवश्यकता होती है। उनके अनुसार इन तीनों के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया को ही शिक्षा कहते हैं।

डॉ. कलाम के अनुसार शिक्षा की उपयोगिता व्यक्ति एवं समाज दोनों के संदर्भ में है। व्यक्ति के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते हुए उनका विचार था कि शिक्षा से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है, अतः शिक्षा प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति के आचरण, विचार तथा व्यवहार सुसंस्कृत हो जाते हैं तथा उसका जीवन उत्तरोत्तर उत्कृष्ट हो जाता है और श्रेष्ठ समाज के निर्माण को बल मिलता है। श्रेष्ठ मानव समाज में ही एक उन्नत राष्ट्र एवं समृद्ध तथा शान्तिमय विश्व की कल्पना निहित है।

कलाम साहब शिक्षा को शाश्वत् जीवन प्राप्ति का माध्यम एवं बालक के व्यक्तित्व विकास का साधन मानते थे। वे प्रायः कहते थे कि शिक्षा छात्रों की अन्तर्निहित सृजनात्मकता का विकास करती है तथा उसे बाहर की ओर प्रकट करती है। शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति विशेष में छिपी उसकी सृजनात्मकता को

बाहर निकालना एवं उसको निखारना है। कलाम के अनुसार शिक्षा के दो मुख्य कार्य है पहला यह है कि एक व्यक्ति को स्वतंत्र व्यक्ति की तरह शिक्षित करो जिससे कि वह गहनता से सोच सके और उन तरीकों को पहचान सके जो उसके लिए सत्य है। दूसरा यह कि वह समाज का अंग है। हमने समाज और वातावरण से बहुत कुछ सीखा है उसे वापस देने की जिम्मेदारी भी हमारी है।

डॉ. कलाम का वर्तमान संदर्भ में शैक्षिक चिन्तन—तमिल ग्रन्थ 'तिरूक्कुरल' में लिखा है—'ज्ञान एक ऐसा हथियार है जो विनाश से बचाता है, यह एक ऐसा आंतरिक किला है जिसे दुश्मन भी नहीं भेद सकता।' ज्ञान के कई रूप होते हैं जिन्हें शिक्षा, सूचना, बुद्धिमानी तथा अनुभव के जरिए प्राप्त किया जा सकता है। यह शैक्षिक संस्थानों में अध्यापकों के पास, पुस्तकालयों में, शोध पत्रों में, गोष्ठियों में, तथा विभिन्न प्रकार के संगठनों में यहाँ तक कि दुकानों में भी होता है। यह कलाकारों, दस्तकारों, हकीमों, वैद्यों, दार्शनिकों और संतो यहाँ तक की हमारी गृहणियों के पास मौजूद कौशलों से भी प्राप्त किया जा सकता है। हमारे वातावरण में, महासागरों में, जैव संरक्षण और रेगिस्तानों में तथा पेड़ पौधों और पशु जीवन तक में ज्ञान के भण्डार छिपे हैं। कलाम के अनुसार शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है ज्ञान प्रदान करना। मूल रूप से यह लक्ष्य ज्ञान की प्रकृति, उत्पति तथा विस्तार के बारे में बात करता है। लेकिन ज्ञान की प्रकृति एवं विविधता का विश्लेषण, सत्य एवं आस्था जैसी धारणओं का संबंध ज्ञान से उतना ही महत्वपूर्ण है। भारतीय समाज ज्ञान पर आधारित रहा है। भारतीय परम्पराओं ने शिक्षा की लक्ष्य साधना के साथ-साथ शिक्षा प्राप्ति के तरीकों व विचारों को विस्तृत रूप में समेटा है। अतः कलाम शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ऐसे प्रबुद्ध ज्ञानवर्धक नागरिकों का निर्माण करना मानते थे जो कि सम्पन्न, खुशहाल व शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण कर सके। इस संबंध में उन्होंने लिखा है—

जब ज्ञान प्राप्ति का मकसद तय होता है तो सृजनशीलता पनपती है,
सृजनशीलता के फलने फूलने से, सोचने समझने के रास्ते खुलते हैं,
सोचने समझने के माहौल में ज्ञान का प्रकाश फैलता है,
जब ज्ञान का प्रकाश का फैलता है तब अर्थ व्यवस्था फलती फूलती है।[6]

डॉ. कलाम के अनुसार हमारी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के भीतर इन पाँच प्रकार के मस्तिष्क के विकास पर केन्द्रित होना चाहिए—अनुशासित मस्तिष्क, सहयोगी मस्तिष्क, रचनात्मक मस्तिष्क, श्रद्धेय मस्तिष्क और नैतिक मस्तिष्क। उनका मानना था कि शिक्षा एक शक्तिशाली तथा विकसित राष्ट्र का स्तम्भ है। बौद्धिक समाज में बौद्धिक क्षमता प्रभावी होगी। शिक्षा के क्षेत्र में शत

प्रतिशत ध्यान देना चाहिए साथ ही हमें महान भारत के साथ साक्षर भारत का सपना भी देखना चाहिए।

कलाम साहब शिक्षा के स्तर को कुछ इस प्रकार मानते थे कि प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य बच्चों की रचना शक्ति में बढोतरी होना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य बच्चों में आत्मविश्वास उत्पन्न करना जिससे वे स्वयं का कोई छोटा उद्योग खड़ा कर सके। उच्च शिक्षा के संस्थान विश्व स्तर के होने चाहिए जो उद्योग जगत के साथ मिलकर कार्य करें। डॉ. कलाम मानते थे कि बच्चों को शिक्षा इस प्रकार दी जाये जिससे उनका सर्वांगीण विकास हो सके। वे चाहते थे कि आज की शिक्षा प्रणाली में सुधार हो और ऐसी शिक्षा पद्धति लागू हो जिससे विद्यार्थी में आत्मविश्वास की भावना का विकास हो। इन्हीं बातों के आधार पर उन्होंने शिक्षा के कुछ प्रमुख उद्देश्य बताए हैं।

1. विद्यार्थी का चरित्र निर्माण करना और उनमें नैतिक मूल्य उत्पन्न करना।
2. सृजनात्मकता विकसित करना एवं आध्यात्मिक के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना।
3. प्रौद्योगिकी के जरिये अधिगम क्षमता को और बढाना।
4. बालकों में भविष्य का सामना करने हेतु आत्मविश्वास, अदम्य साहस व बाधाओं पर विजय पाने की क्षमता पैदा करना।
5. ऐसे प्रबुद्ध व ज्ञानवर्धक नागरिकों का निर्माण करना जो कि राष्ट्र को सम्पन्न, खुशहाल एवं शक्तिशाली बना सकें।
6. छात्रों में अनुसंधान व खोज की क्षमता का विकास करना।
7. नव निर्माण एवं सृजनशीलता के गुणों को बाहर प्रकट करना।
8. जाति, धर्म, वर्ण, लिंग, रंग या आर्थिक असमानता पर आधारित सामाजिक भेदभावों को दूर करना।
9. विद्यार्थियों में प्रतिष्ठा, आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता आदि गुणों का विकास करना।
10. शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सत्य की खोज करना।
11. रोजगार प्रदान करना।
12. शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों की ज्ञान प्राप्ति की तीव्र जिज्ञासा को शांत करना है।
13. शिक्षा का उद्देश्य छात्रों में पाँच क्षमताओं जिज्ञासा, सृजनशीलता, प्रौद्योगिकी, उद्यमशीलता व नैतिक नेत्तृत्व का विकास तथा एकीकरण करना है।

शिक्षकों के प्रति डॉ. कलाम के विचार—डॉ. कलाम स्वयं एक शिक्षक थे वे मानते थे कि एक आदर्श शिक्षक वह है जो अपने छात्रों तथा शिक्षण कार्य दोनों से प्रेम करे। किसी भी शिक्षक का लक्ष्य अपने छात्रों को सीखने के लिए प्रेरित करना तथा उनमें रचनात्मकता के दीप प्रज्जवलित करना होना चाहिए। अध्यापक ऐसा हो जो अपने छात्रों को स्वतंत्र शिक्षार्थी में बदल दें। उसे औसत विद्यार्थियों को अपना प्रदर्शन सुधारने में मदद करनी चाहिए। अध्यापक का कार्य न केवल बालकों को पढ़ाना है बल्कि एक समझदार नागरिक तैयार करना होता है जो कि भविष्य में देश में परिवर्तन लाने वाला हो। शिक्षक समाज को उत्तम बौद्धिक वर्ग माना है। अपनी बुद्धि व नैतिक मूल्यों द्वारा अच्छे शिक्षक विद्यार्थियों को अनुसंधान के लिए आकर्षित करते हैं और उन्हें अच्छे गुण प्रदान करते हैं। शिक्षक को सदैव सत्य के मार्ग पर चलना चाहिए। योग्य शिक्षक ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दे सकता है। शिक्षक को उन सभी बातों की जानकारी होनी चाहिए जो प्रभावी शिक्षण के लिए उपयोगी एवं आवश्यक हो।

डॉ. कलाम मानते थे कि अध्यापक का केवल यही कर्त्तव्य नहीं होता कि वह बालक को तात्कालिक परीक्षा में सफल होने की शिक्षा ही दे वरन् उसका यह कर्त्तव्य भी होता है कि वह बालक का नैतिक व चारित्रक निर्माण भी करें ताकि उससे बालक को अपने जीवन में स्थायी सफलता मिल सके। बच्चों में रचनात्मकता का विकास भी करना होगा इसके लिए अध्यापक को उनका आदर्श बनना होगा क्योंकि अध्यापक ही बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करते हैं। एक अध्यापक के मार्गदर्शन से ही विद्यार्थी में कुछ कर दिखाने की तीव्र इच्छा और सफल होने की आकांक्षा उत्पन्न होती है। डॉ. कलाम मानते थे कि सीखने की प्रक्रिया को मजबूत बनाने के लिए नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए। तकनीक के माध्यम से सर्वश्रेष्ठ शिक्षक देश के हर कोने में पहुँच जाएगा और ज्ञान का प्रकाश फैलाएगा। कलाम साहब कहते थे कि जब मैं स्कूलों में जाता हूं तो निश्चित रूप से सोचता हूं कि स्कूल का बड़ा या छोटा होना मायने नहीं रखता। स्कूल की सुविधाओं व विज्ञापन का स्कूल की शिक्षा के स्तर पर अधिक असर नहीं पड़ता। महत्वपूर्ण बात यह है कि स्कूल में शिक्षा देने वाले अध्यापकों के क्या गुण हैं तथा उनका शिक्षा प्रदान करने का क्या स्तर है। आज के इस प्रतियोगिता के युग में कलाम साहब के ये शब्द उन विद्यालयों के लिए एक सीख है जो अपनी शिक्षा को केवल आधुनिक सुख सुविधाओं से सज्जित करने पर अधिक घ्यान देते हैं, न कि गुणवत्ता पर।

खलील जिब्रान कहते हैं कि—बिना स्नेह के बनाया गया भोजन उस अन्न के समान है जिसे व्यक्ति खा तो लेता है लेकिन वह भोजन उसकी आधी भूख

ही शांत कर पाता है। ठीक उसी प्रकार जो लोग किसी कार्य को दिल लगाकर नहीं करते उन्हें आधी अधूरी सफलता ही मिलती है। वे अप्रसन्न रहने लगते हैं। कलाम साहब मानते थे कि आप जिस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं उस क्षेत्र में आपको विषय विशेषज्ञ होना ही पड़ेगा अन्यथा आपकी सफलता अधूरी रहेगी। डॉ. कलाम का कहना था कि शिक्षा का अंतिम उद्देश्य—सत्य की खोज करना है एवं खोज का केन्द्र अध्यापक होता है जो अपने विद्यार्थियों को शिक्षा के माध्यम से जीवन में और व्यवहार में सच्चाई की शिक्षा देता है। छात्र जीवन में जो भी कठिनाइयां आती है, जो भी जिज्ञासा होती है, जो वे जानना चाहते हैं उसके लिए उनका अध्यापक एक तरह से एनसाइक्लोपीडिया है जिसके पास उन सभी प्रश्नों के उत्तर होते हैं और शिक्षक के मार्गदर्शन में प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा को उसके वास्तविक अर्थ में ग्रहण कर मानवीय गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में उसका प्रसार कर पाता है।

डॉ. कलाम का विद्यार्थियों के प्रति दृष्टिकोण—डॉ. कलाम छात्रों को देश की बहुत बड़ी सम्पदा मानते थे अतः वे कहते थे कि प्रत्येक बालक को खिलने व विकसित होने के अवसर मिलने चाहिए। वे जब बच्चों से मिलते थे तब उनका मुख्य ध्येय यही रहता था कि वे उनके सपनों को जाने तथा उनके साथ अपने अनुभवों को बांट सके। साथ ही उनकी कल्पनाओं को ऊंचाईयाँ प्रदान करते हुए एक विकसित राष्ट्र के निर्माण हेतु उन्हें तैयार कर सके। छात्रों को विकसित राष्ट्र के निर्माण हेतु प्रोत्साहित करने के लिए वे हमेशा यह कविता दोहराते थे—

जब छूना चाहो आकाश मत सोचो कौन हो तुम
इच्छा जो भी होगी दिल में हो जायेगी वो पूरी [7]

इस प्रकार उनका मानना था कि अगर प्रत्येक युवा छात्र महान् लक्ष्य बनाए तो हम जरूर विकसित राष्ट्र के लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे। प्रत्येक छात्र को अपने निर्धारित लक्ष्य के प्रति एकाग्र होकर विभिन्न कठिनाइयों का सामना करते हुए उसे प्राप्त करना ही चाहिए। लक्ष्य निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि लक्ष्य छोटा न हो क्योंकि छोटा लक्ष्य एक अपराध है। वे चाहते थे कि भरतीय छात्रों के सामने बड़े लक्ष्य हों। छोटी-छोटी आशाओं के पीछे भागना गुनाह है। दृढता, अडिगता, संकल्पबद्ध एवं कठिन कार्य के द्वारा हमेशा ऊंचाइयों पर पहुँचना और अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना प्रत्येक छात्र का लक्ष्य होना चाहिए।

लाखों विद्यार्थियों के सम्पर्क में रहने तथा उनके दृष्टिकोणों, जिज्ञासाओं और समस्याओं से जुड़ने के पर्याप्त अवसर डॉ. कलाम को मिले। युवाओं की

संगति उन्हें हमेशा सुखद अहसास कराती थी। विशेषकर विद्यार्थियों से मिलना उन्हें एक अच्छी अनुभूति देता था। किसी भी छात्र के जीवन में सफलतापूर्वक परिणामों की प्राप्ति के लिए इन चार बुनियादी पहलुओं का होना जरूरी है— लक्ष्य निर्धारण, सकारात्मक सोच, मन में स्पष्ट कल्पना, और उस पर विश्वास करना। राष्ट्र के जिम्मेदार विद्यार्थी होने की भूमिका समझाते हुए डॉ. कलाम कहते थे कि माता पिता, अध्यापकगण एवं मार्गदर्शकों का आदर करना ये तीनों बातें सफलता की नींव रखती है। जीवन में सफल होने और परिणाम प्राप्त करने के लिए आपको तीन प्रभावकारी शक्तियों को समझना चाहिए और उनमें दक्षता हासिल करनी चाहिए। ये तीन है—इच्छा, विश्वास तथा अपेक्षा करना। विद्यार्थी को स्वयं को पहचानने में मदद करने की जरुरत है न कि शिक्षक द्वारा हर किसी को एक सांचे में ढालने की। उनके अनुसार कोई भी अच्छा विद्यार्थी तब बनता है जब उसकी शिक्षण प्रक्रिया द्वारा ज्ञान की प्राप्ति के साथ अच्छे मूल्यों की भी प्राप्ति हो।

वर्तमान शिक्षा पद्धति से संबंधित डॉ. कलाम के विचारह्हमारे प्राचीन शिक्षकों के पास गूढ और गुप्त सिद्धान्तो का भण्डार था। वे विद्यार्थियों की हर समस्या का समाधान सरल तरीके से कर देते थे। वे उन्हें ऐसे तरीकों से मार्गदर्शित करते थे कि विद्यार्थी ज्ञान एवं ऊर्जा से परिपूर्ण हो जाता था।

डॉ. कलाम का भी यही कहना था कि वर्तमान समय में भारत वैश्विक मानक कार्यबल और दुनिया के अग्रणी अनुसंधान कार्यक्षेत्रों का निर्माण करने के लिए अपने शिक्षकों, अपनी शिक्षा और शोध प्रणाली का पुनर्शोधन करे जिसके लिए देश की जनता पात्र है जो ओजस्विता प्रदान करती है और निराशा दूर करती है। कलाम साहब मानते थे कि भारतीय शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता का मुद्दा हमारे लिए महत्वपूर्ण है। एक अच्छी संतुलित शिक्षा प्रणाली से प्रशिक्षित युवाओं का निर्माण होता है। कलाम साहब का मानना था कि ज्ञान बाँटने के लिए देश में शिक्षकों का स्थान सर्वोपरि है इसलिए प्रत्येक शिक्षक को आगे बढकर इस कार्य को पूरी ईमानदारी एवं लगन से करने की आवश्यकता है।[8]

नवीन शिक्षा तंत्र की संरचना पर बल देते हुए डॉ. कलाम चाहते थे कि शिक्षा की गुणवत्ता के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाये—

- स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता
- ज्ञान के संसाधन विकसित करना
- युवाओं की रोजगार क्षमता

- वैश्विक मानव संसाधन संवर्ग
- राष्ट्रीय मुक्त स्रोत क्लाउड

डॉ. कलाम ने निम्नलिखित पाँच पहलुओं पर जोर दिया है जो राष्ट्र निर्माण हेतु भावी शिक्षकों पर लागू होते हैं।

1. अनुसंधान एवं जिज्ञासा
2. सृजनशीलता एवं नवीनता
3. तकनीक के उपयोग की क्षमता
4. उद्यमशीलता
5. नैतिक नेत्तृत्व

डॉ. कलाम ने भावी शिक्षकों या अध्यापन करवाने वाले शिक्षकों के कई आयाम बताए हैं जिन्हें हम सार रूप में निम्नलिखित बिन्दुओं में बाँट सकते हैं—

- शिक्षा ऐसी दी जाये जो रोजमर्रा के लिए जरुरी हो।
- गम्भीर विषयों पर भी शिक्षा दी जानी चाहिए।
- किताबी शिक्षा के साथ-साथ जीवन के लिए उपयोगी शिक्षा दी जानी चाहिए।
- एकाग्रता का गुण होना चाहिए।
- पूर्ण व्यवहार होना चाहिए।
- करके सीखने एवं सीखाने पर बल देना चाहिए।
- शिक्षक का आत्मसम्मान ऊँचा होना चाहिए तथा बच्चों का आदर्श बनने का गुण भी होना चाहिए।
- छात्रों का चरित्र निर्माण कर सके।
- बच्चों की बुद्धि, समझ के स्तर व जरूरत के हिसाब से शिक्षा दें।
- विद्यार्थी को अच्छी तरह समझना चाहिए एवं उनकी समस्याओं को सुनना व उन्हें दूर करने या उन्हें सुलझाने में भी उनकी सहायता करें।
- प्रभावी व्यक्तित्व व रचनात्मकता का गुण भी हो।
- नवीनतम तकनीकी ज्ञान से परिचित हो।
- किसी भी कार्य को बोझ न समझे।
- जिज्ञासु प्रवृति होनी चाहिए।
- सिर्फ किताबी ज्ञान ही न दें अपितु प्रत्येक विद्यार्थी को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक बातें भी पढ़ानी चाहिए।

डॉ. कलाम शिक्षक छात्र के बीच मधुर संबंधो पर सर्वाधिक बल देते थे क्योंकि एक शिक्षक ही बालक के मनोवैज्ञानिक विचारों को सही तरीके से समझ लेता है। एक शिक्षक की नज़र में विद्यार्थी ही भावी राष्ट्र का निर्माता होता है। कलाम साहब जब विद्यार्थियों से मिलते तब वे बच्चों के मन की कल्पना, उनके सपनों को जानने का प्रयत्न करते थे और उनकी समस्याओं का समाधान भी करते थे। डॉ. कलाम युवा छात्र वर्ग को ही देश के लिए महत्वपूर्ण होने का अहसास नहीं कराते थे बल्कि वे बाल मन विद्यार्थियों को भी इस बात के लिए प्रेरित करते थे कि विद्यार्थी वर्ग के द्वारा ही एक शिक्षित एवं विकसित राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। उनका मानना था कि युवा वर्ग द्वारा जो कुछ भी किया जाये वह उनके हृदय से किया गया हो और आत्मा की अभिव्यक्ति को प्रकट करने वाला हो। इसके लिए आवश्यक है कि युवा वर्ग सपने देखे व उन्हें पूरा करें क्योंकि सपनों के प्रति संकल्पबद्ध होने से बढ़कर कोई भी ताकत धरती पर तो क्या स्वर्ग में भी नहीं है। जब तक हमारे देश के शिक्षक एवं युवा वर्ग विकसित राष्ट्र का सपना नहीं देखेंगे तथा उसे पूरा करने के लिए प्रेरित नहीं होंगे तब तक इस लक्ष्य को प्राप्त करना संभव नहीं है। उन्होंने युवाओं तथा भावी शिक्षकों को स्वप्न देखने की प्रेरणा के संबंध में कहा है कि—

सितारों को न छू पाना
कतई शर्म की बात नहीं
किन्तु सितारों को छू पाने का सपना ही न होना
वाकई शर्म की बात है।

इस प्रकार एक शिक्षक रूप में डॉ. कलाम सदैव छात्रों को प्रोत्साहित करते रहते थे।

उपसंहार—डॉ. कलाम के अनुसार 21वीं सदी में हमें शिक्षा, स्कूल, पाठ्यक्रम, शिक्षक और विद्यार्थी इन सभी को नये सिरे से परिभाषित करना पड़ेगा। हमें शिक्षा के माध्यम से यह सुनिश्चित करना होगा हम विद्यार्थियों को सफलता के लिए शिक्षित करें। हमें शिक्षण प्रक्रिया को सीधे-सीधे पढ़ाने के बजाए प्रशिक्षण पर जोर देना होगा। डॉ. कलाम जीवन को सीखने की एक प्रक्रिया के रूप में देखते थे। कलाम का मानना था कि ज्ञान प्राप्त करना एक धीमी प्रक्रिया है। कलाम साहब के अनुसार शिक्षा का अर्थ है—सीखने और पढ़ने के विशेष गुण, कुछ कम परन्तु बहुत महत्वपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता, विवेक और समझदारी। इन सबसे बढ़कर शिक्षा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संस्कृति का बोध कराती है। शिक्षा प्रणाली को सांस्कृतिक धरोहर, उनके

संसाधन, उसकी स्थिति व उसमें बदलाव एवं गिरावट का आंकलन करना चाहिए। वर्तमान में शिक्षा जगत से जुड़ी प्रमुख समस्याओं में शिक्षकों की कमी, विद्यालयों की कमी, शिक्षा सुधार कार्यक्रमों का सफल न हो पाना, ग्रामीण शिक्षा की गुणवत्ता में कमी का होना, उच्च शिक्षा में प्रोफेसर की जवाबदेही व प्रदर्शन का फार्मूला निर्धारित न होना तथा विश्व के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों की लिस्ट में कम संख्या में भारतीय विश्वविद्यालयों का शामिल होना यह सब कारण है जो शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़े परिवर्तन की गुंजाइश को दर्शाते हैं इसलिए 21वीं सदी में विश्व में भारत को प्रमुख महाशक्ति बनने की दिशा में शिक्षक वर्ग द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. APJ Abdul Kalam, Ignited minds
2. APJ Abdul Kalam, Wings of fire
3. डॉ.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, अग्नि की उड़ान
4. अब्दुल कलाम प्रोफाइल-http://www.abdulkalam.nic.in
5. इचर स्कूल, फरीदाबाद के छात्रों के साथ, राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली
6. http://essayonquotes.com/essay-on-dr.apjabdul.kalam
7. स्कूल शिक्षकों के साथ मुलाकात, भुवनेश्वर
8. dr-a-p-j.abdul-kalam-contribution.towards-education

कुसुम लता
शोधार्थी (शिक्षा)
सिंघानिया विश्वविद्यालय
पचेरी (झुंझुनूं)

❑❑❑

Sl.No.	Journal No.	Title	Publisher	ISSN
169		JUNI KHYAT		2278-4632

UGC Journal Details

Name of the Journal : **JUNI KHYAT**

ISSN Number : 2278-4632

e-ISSN Number : NA

Source : **UGC**

Discipline : **Social Science**

Subject : **Social Sciences (all)**

Focus Subject : Cultural Studies

Publisher : Marubhumi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh (Bikaner)

महत्त्वपूर्ण जानकारी

पाठकों से निवेदन है कि **जूनी ख्यात** में प्रकाशन हेतु शोध पत्र की एक प्रति Word तथा एक प्रति PDF फाइल में अवश्य भेजें। यदि शोध पत्र हिन्दी में है तो Kruti Dev 010 तथा अंग्रेजी में है तो Times New Roman नामक फोन्ट का प्रयोग करें।

शोध पत्र से सम्बन्धित छाया चित्रों को कम से कम 300 डीपीआई में सुरक्षित कर जे पी जी फाइल बनाकर अलग से अनुशीर्षक सहित भेजें।

शोध पत्र को इस पते पर e-mail करें bbhadani.amu@gmail.com अथवा डाक से सीडी बनाकर सम्पादक, **जूनी ख्यात**, रांगड़ी चौक, बीकानेर (राज.) 334001 के पते पर भिजवाएँ।

सम्पादक

देश की
धड़कन
राजस्थान
की शान

राजस्थली

की यही पहचान

- हम जीवन में बीसियों तरह के व्यसन–शौक पालते हैं परन्तु पढ़ने की आदत नहीं डालते। यही कारण है कि हम अपनी सांस्कृतिक पहचान, शख्सियत और वजूद को संरक्षित नहीं रख पा रहे हैं।
- राजस्थानी ही वह भाषा है जिसकी लोरियों तले हमारा बचपन खेला, कूदा और बड़ा हुआ है। अपने पांवों पर खड़ा होने के बाद ममत्व और वात्सल्य को भुलाना तो हमारी परम्परा नहीं रही है। तो फिर हम क्यों भूल रहे हैं हमारी बाल–सुलभ जिज्ञासाओं को अनथक शांत करने वाली इस मायड़ को ?
- आईये ! हम भी बंगाल की तरह हमारे घरेलू बजट में पत्र–पत्रिकाओं को शामिल कर अपने बच्चों को एक सद्–संस्कार दें। परिवार को अपना वाजिब हक दें। अपने गैर–जरूरी खर्चों में कटौती कर पीढ़ियों को संस्कारित करने के इस अनुष्ठान में सहयोगी बनें।
- आज ही **राजस्थली** के सदस्य बनें और बनायें। पत्र–पत्रिकाओं को सहयोग और उनका संरक्षण हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

आओ ! **राजस्थली** को स्वावलम्बी बनाएं और
पुस्तक प्रेम की हमारी सांस्कृतिक परम्परा का परिचय दें।

सदस्यता शुल्क विवरण

पाँच वर्ष के लिए	500 रुपये
आजीवन	1500 रुपये
संरक्षक सदस्यता	5100 रुपये

राजस्थली लेन-देन सारु :
खाता नांव : RAJASTHALI
बैंक : बैंक ऑफ इंडिया, श्रीडूँगरगढ़
खाता सं. : 746210110001995
IFSC : BKID 0007462

महावीर प्रसाद माली मरुभूमि शोध संस्थान,
श्रीडूँगरगढ़ के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

मुद्रक : महर्षि प्रिंटर्स, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.

जूनी ख्यात बैंक विवरण :
Account Name : Marubhumi Shodh Sansthan
Bank : Punjab National Bank, Sridungargarh
Account No. : 3604000100174114
IFSC : PUNB0360400